अक्तूबर - दिसम्बर, 2012 [संयुक्तांक]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक
जुगल किशोर

महत्वपूर्ण निर्णय

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 32 – विधि का प्रवर्तन – विधि के प्रवर्तन से किसी को असुविधा कारित होना – विधि के प्रवर्तन से किसी को कोई असुविधा कारित होना कानून के किसी उपबंध को अप्रवर्तनीय बनाए जाने का आधार नहीं होता है, विधायी कृत्य को चुनौती बहुत ही सीमित आधारों पर दी जा सकती है ।

अविषेक गोयनका बनाम **भारत संघ** 21

संसद् के अधिनियम

राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (10)

पृष्ठ संख्या 1 – 172 **[2012] 4 उम. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – अक्तूबर - दिसम्बर, 2012 [संयुक्तांक] [पृष्ठ संख्या 1 – 172]

संपादक-मंडल

श्री ब्रह्म अवतार अग्रवाल,
सचिव, विधायी विभाग

श्री एन. एल. मीना,
अपर सचिव (प्रशा.), विधायी विभाग

श्रीमती शारदा जैन, संयुक्त सचिव
एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि, अधिवक्ता,
(पूर्व संपादक) वि.सा.प्र.

डा. प्रीती सक्सेना, प्रोफेसर,
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ

डा. वैभव गोयल, संकायाध्यक्ष
विधि संकाय, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ

श्री सुरेन्द्र शर्मा, प्राचार्य,
विधि विभाग, गुरू गोविद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय, दिल्ली

डा. आर. पी. सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव,
राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री के. जी. अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली खां,
संपादक

श्री जुगल किशोर,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पाण्डेय,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, गोबिन्द लाल बतरा, एम. पी. सिंह, जसवन्त सिंह और बी. के. भटनागर

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 57

वार्षिक : ₹ 225

© 2012 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

अक्तूबर - दिसम्बर, 2012

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
अविषेक गोयनका **बनाम** भारत संघ	21
कुनाल मजूमदार **बनाम** राजस्थान राज्य	113
देविन्दर सिंह नरूला **बनाम** मीनाक्षी नांगिया	105
बृजेश मावी **बनाम** राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र, दिल्ली	1
भारतीय विधिज्ञ परिषद् **बनाम** भारत संघ	36
भोपाल गैस पीड़ित महिला उद्योग संगठन और अन्य **बनाम** भारत संघ और अन्य	70
मुस्तफा शाहदल शेख **बनाम** महाराष्ट्र राज्य	127
सुनील क्लीफोर्ड डेनियल **बनाम** पंजाब राज्य	143

संसद् के अधिनियम

राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	(1) – (10)

पृष्ठ संख्या

कानूनों का निर्वचन

– सिद्धांत – निर्वचनात्मक विधिशास्त्र का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि विधि का निर्वचन किसी एक परिस्थिति के आधार पर, विशिष्टतया जब वह परिस्थिति व्यक्तिपरक हो, नहीं किया जा सकता है और कुछ लोगों को असुविधा किसी कानून की विधिमान्यता का अवधारण किए जाने का आधार नहीं हो सकती है ।

अविषेक गोयनका बनाम **भारत संघ** 21

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 300 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 तथा 3 और आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25] – हत्या – अभियुक्त के बताए जाने पर अपराध में प्रयुक्त हथियार की बरामदगी – घटना के दो वर्ष पश्चात् हत्या में प्रयुक्त रिवाल्वर की बरामदगी – शव से निकाली गई गोलियों को हथियार के साथ न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला न भेजा जाना – घटनास्थल से बरामद गोली का बरामद किए गए हथियार से न चलाया जाना – हथियार की बरामदगी मात्र के आधार पर अभियुक्त को हत्या का दोषी ठहराया नहीं जा सकता – अभियुक्त आयुध अधिनियम की धारा 25 के अधीन ही दोषी है ।

बृजेश मावी बनाम **राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र, दिल्ली** 1

– धारा 302 और 201 – हत्या – अपीलार्थी-पति द्वारा अपनी पत्नी से तनावपूर्ण संबंध होने के कारण उसकी हत्या किया जाना – अपीलार्थी के प्रकटन कथन के आधार पर मृतका की रक्त से सनी चूड़ियां, डम्बेल, टाई इत्यादि की बरामदगी होना – अपीलार्थी की दोषिता संदेह के परे साबित होने पर निचले न्यायालयों द्वारा की गई उसकी दोषसिद्धि मान्य ठहराई गई ।

सुनील क्लीफोर्ड डेनियल बनाम **पंजाब राज्य** 143

पृष्ठ संख्या

– धारा 304-ख और 498-क – दहेज मृत्यु और क्रूरता – अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा अपनी पत्नी से क्रूरता करना और दहेज की मांग करते हुए तंग करना – विवाह के सात वर्ष के भीतर मृतका पत्नी की विष खाने के कारण मृत्यु होना क्योंकि साक्ष्य से दर्शित होना कि उस समय केवल अपीलार्थी और उसके माता-पिता ही घर में उपस्थिति थे – अपीलार्थी की दोषसिद्धि मान्य ठहराई गई ।

मुस्तफा शाहदल शेख बनाम **महाराष्ट्र राज्य** 127

– धारा 376 और 302 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 366(1)] – बलात्संग और हत्या – मृतका छोटी आयु की घरेलू नौकरानी की अभियुक्त-अपीलार्थी उसके मालिक द्वारा बलात्संग करने के उपरांत गला घोंटकर हत्या करना – विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त अपीलार्थी को मृत्युदंड दिया गया जो उच्च न्यायालय में अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा अपील किए जाने पर आजीवन कारावास में परिवर्तित किया गया – मृत्युदंड की पुष्टि के लिए किए गए निर्देश पर उच्च न्यायालय द्वारा सही रीति में निपटारा नहीं किया गया – उच्च न्यायालय का दंडादेश लघुकृत करने के निर्णय को अपास्त करते हुए तीन माह के भीतर, मृत्युदंड पुष्टि निर्देश और अपीलों का निपटारा करने के लिए उच्च न्यायालय को निर्देश दिया गया ।

कुनाल मजूमदार बनाम **राजस्थान राज्य** 113

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 109 [सपठित मोटर यान नियम, 1989 का नियम 100] – मोटर यान – विंड स्क्रीन और पार्श्व खिड़कियां – सुरक्षा शीशों पर चिपकाई जाने वाली रंगदार फिल्मों का प्रयोग – इन फिल्मों के प्रयोग को प्रतिषिद्ध किया जाना – इस संबंध में जारी निदेशों का अनुपालन – नियम 100 में

पृष्ठ संख्या

प्रयुक्त "बनाए रखा जाना" शब्दों का अर्थान्वयन – "बनाए रखा जाना" शब्दों का अर्थान्वयन इस रूप में नहीं किया जा सकता जिससे कि नियमों का उल्लंघन करके मोटर यान के रूप में परिवर्तन किया जा सके ।

अविषेक गोयनका बनाम **भारत संघ** 21

राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010 (2010 का 19)

– धारा 14, धारा 29, धारा 30 और धारा 38 [सपठित पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा 3] – भोपाल गैस विभीषिका से संबंधित मामले, जिनमें कि पर्यावरणीय मुद्दे अंतर्वलित हों, चाहे वे राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010 के पूर्व फाइल किए गए हों या उसके पश्चात् फाइल किए गए हों वे हरित अधिकरण को अंतरित हो जाएंगे ।

भोपाल गैस पीड़ित महिला उद्योग संगठन और अन्य बनाम **भारत संघ और अन्य** 70

विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (1987 का 39)

– धारा 22ग(8) और धारा 22क(ख) [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 14] – स्थायी लोक अदालत – लोक उपयोगिता से संबंधित विवादों का गुणागुण के आधार पर न्यायनिर्णयन करने की शक्ति – संसद् द्वारा ऐसे विवादों के लिए आनुकल्पिक संस्थागत तंत्र की स्थापना किया जाना – संसद् द्वारा लोक उपयोगिता से संबंधित विवादों का गुणागुण के आधार पर न्यायनिर्णयन किए जाने के लिए प्रभावी आनुकल्पिक संस्थागत तंत्र की स्थापना कर सकती है और इसे सांविधानिक स्कीम के प्रतिकूल या विधि के नियम के विरुद्ध नहीं कहा जा सकता है, अतः

पृष्ठ संख्या

धारा 22ग(8) के अधीन लोक उपयोगिता सेवा के उपयोगकर्ता की किसी सिविल न्यायालय या विशेष न्यायालय के माध्यम से राहत पाने की शक्ति को छीना नहीं गया है ।

भारतीय विधिज्ञ परिषद् बनाम **भारत संघ** 36

– धारा 22घ [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 50] – न्यायनिर्णयन प्राधिकारी – स्थायी लोक अदालत का सृजन कानून के अंतर्गत होना चाहिए – न्यायनिर्णयन की प्रक्रिया – सिविल प्रक्रिया संहिता तथा साक्ष्य अधिनियम के उपबंधों के लागू होने का अपवर्जन – इस बाबत सिविल प्रक्रिया संहिता तथा साक्ष्य अधिनियम के उपबंधों के लागू किए जाने का अपवर्जन किए जाने से अवधारणा की गुणता कम नहीं होती है क्योंकि इस प्रकार स्थापित स्थायी लोक अदालतों द्वारा भी विवाद का विनिश्चय निष्पक्ष रूप से और ऋजुतापूर्वक किया जाना होता है और उसमें नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुसरण भी किया जाना होता है ।

भारतीय विधिज्ञ परिषद् बनाम **भारत संघ** 36

– धारा 22घ [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 50, अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 21] – स्थायी लोक अदालत – संरचना – तीन सदस्यीय संरचना में दो सदस्यों का न्यायिकेतर सदस्य होना – तीन सदस्यीय संरचना में दो गैर-न्यायिक सदस्यों के रखे जाने का आशय यह है कि सुलह और न्यायनिर्णयन संबंधी कार्यवाहियों में विधिक तकनीकियां सर्वोपरि न हो जाएं, अतः इससे ऋजुता और न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन नहीं होता है ।

भारतीय विधिज्ञ परिषद् बनाम **भारत संघ** 36

पृष्ठ संख्या

– धारा 22ङ – स्थायी लोक अदालत – स्थायी लोक अदालत का अधिनिर्णय – स्थायी लोक अदालत के अधिनिर्णय के विरुद्ध अपील किए जाने के अधिकार का उपबंध न होना – अपील किए जाने का अधिकार कोई अंतर्निहित अधिकार नहीं है इसका सृजन कानून द्वारा किया जाता है, अतः यदि किसी विशिष्ट कानून में अपील के अधिकार का उपबंध नहीं किया जाता है तो उससे कानून स्वतः ही असांविधानिक नहीं बन जाता है ।

भारतीय विधिज्ञ परिषद् बनाम **भारत संघ** 36

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 21, अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 139क – भोपाल गैस विभीषिका – भोपाल गैस विभीषिका के पीड़ितों की बेहतर चिकित्सा देखरेख किए जाने के लिए याचिका – इस न्यायालय द्वारा पूर्व में ऐसे विभिन्न निदेश जारी किए गए थे जिससे गैस पीड़ितों के लिए बेहतर चिकित्सीय देखरेख सुनिश्चित हो सके तथापि, इस संबंध में अधिकारिता प्राप्त उच्च न्यायालय गैस पीड़ितों की अपेक्षाओं का और दिन-प्रतिदिन निदेश जारी करने तथा गैस पीड़ितों के लिए राहत और उनके पुनर्वास संबंधी कार्यक्रमों की समुचित प्रगति और क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने की बेहतर स्थिति में होगा ।

भोपाल गैस पीड़ित महिला उद्योग संगठन और अन्य बनाम **भारत संघ और अन्य** 70

– अनुच्छेद 32 – विधि का प्रवर्तन – विधि के प्रवर्तन से किसी को असुविधा कारित होना – विधि के प्रवर्तन से किसी को कोई असुविधा कारित होना कानून के किसी उपबंध को अप्रवर्तनीय बनाए जाने का आधार नहीं होता है, विधायी कृत्य को चुनौती बहुत ही सीमित आधारों पर दी जा सकती है ।

अविषेक गोयनका बनाम **भारत संघ** 21

पृष्ठ संख्या

– अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 14 – लोक हित याचिका – लोक हित याचिका में पारित आदेश का सर्वबंधी रूप से प्रवर्तित होना – लोक हित याचिका में पारित आदेश को सर्वबंधी रूप से प्रवर्तित किए जाने और न्यायालय के लिए उस आदेश से प्रभावित किए जाने की अपेक्षा के कारण न्यायालय के लिए उस आदेश से प्रभावित होने वाले सभी संबद्ध व्यक्तियों आदि को सूचना जारी किया जाना आवश्यक नहीं है ।

अविषेक गोयनका बनाम **भारत संघ** 21

– अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 21 – भोपाल गैस विभीषिका – जीवन का अधिकार – भोपाल गैस पीड़ितों की चिकित्सीय देखरेख – चिकित्सीय देखरेख आदि से संबंधित अनुसंधान कार्यों का भारतीय अयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् और उसके द्वारा स्थापित किसी इकाई द्वारा किया जाना – इस अनुसंधान कार्य का निजीकरण किए जाने तथा प्राइवेट अस्पतालों को मानीटरी समिति के नियंत्रणाधीन लाए जाने का अभिवाक् किया जाना – अनुसंधान कार्य का निजीकरण तथा प्राइवेट अस्पतालों को मानीटरी समिति के नियंत्रणाधीन लाना न्याय तथा गैस पीड़ितों के हित में नहीं होगा और इससे बहु-अंतरीय अनुसंधान कार्य आरंभ हो जाएगा जिसका कोई सारभूत परिणाम नहीं होगा अतः ऐसा किए जाने का कोई औचित्य और जरूरत नहीं है ।

भोपाल गैस पीड़ित महिला उद्योग संगठन और अन्य बनाम **भारत संघ और अन्य** 70

– अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 21 – भोपाल गैस विभीषिका – लोक हित याचिका – गैस पीड़ितों की चिकित्सीय देखरेख उनके लिए राहत और उनके पुनर्वास संबंधी कार्यक्रमों की समुचित प्रगति और कार्यान्वयन को

पृष्ठ संख्या

सुनिश्चित करने के लिए मानीटरी समिति को स्थान, अवसंरचना, मानदेय आदि प्रदान किया जाना अपेक्षित है जिससे अनुसंधान आदि कार्य परिणामोन्मुख हो और यथार्थ रूप में जारी रहे इसके लिए समुचित निदेश दिए जाते हैं जिनका कार्यान्वयन मानीटरी समिति द्वारा सुनिश्चित किया जाएगा ।

भोपाल गैस पीड़ित महिला उद्योग संगठन और अन्य बनाम **भारत संघ और अन्य** 70

– अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 141 – पूर्व न्याय – याचिका को आरंभतः खारिज किया जाना – किसी याचिका को आरंभ में ही खारिज कर दिए जाने के बाद उन्हीं समान मुद्दों को उठाते हुए रिट याचिका फाइल किए जाने पर कोई रोक नहीं लगाई जा सकती है, तथापि, यह न्यायालय उन रिट याचिकाओं को, जिनमें उन्हीं मुद्दों को पुनः उठाया गया हो और पूर्व में जिनकी सुनवाई की जा चुकी है और उन्हें खारिज किया जा चुका है, सामान्यतया ग्रहण नहीं करता है ।

भारतीय विधिज्ञ परिषद् बनाम **भारत संघ** 36

– अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 211 – लोक हित याचिका – भोपाल गैस विभीषिका – गैस पीड़ितों की चिकित्सीय देखरेख और पुनर्वास के लिए मानीटरी समिति – मानीटरी समिति की शक्तियां – समिति का भोपाल मेडिकल कालेज तथा प्राइवेट अस्पतालों को छोड़कर सभी सरकारी अस्पतालों पर पूर्ण नियंत्रण होना – समिति को शिकायतों को सुनने, अभिलेख मंगाने आदि की शक्ति होना – समिति की सिफारिशों का अनुशंसाकारी और सुधारात्मक प्रकृति के होने तथा राज्य द्वारा उसकी सिफारिशों पर कार्रवाई न किए जाने की दशा में समिति को दंड देने की अधिकारिता प्राप्त नहीं है किंतु उसे इस बाबत उच्च न्यायालय के समक्ष जाने की अधिकारिता प्राप्त है ।

भोपाल गैस पीड़ित महिला उद्योग संगठन और अन्य बनाम **भारत संघ और अन्य** 70

पृष्ठ संख्या

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 13ख [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 142] – परस्पर सहमति द्वारा विवाह-विच्छेद – प्रतीक्षा की अवधि – न्याय पूरा करने की दृष्टि से प्रतीक्षा अवधि को कम किया जाना – पति द्वारा विवाह के तीन मास के पश्चात् ही अकृतता की डिक्री के लिए अर्जी फाइल किया जाना – पक्षकारों का उसके पश्चात् एक वर्ष से भी अधिक अवधि तक अलग-अलग रहना – अर्जी के लंबित रहते माध्यस्थता संबंधी कार्यवाहियों के दौरान पक्षकारों के बीच विवाह का विघटन परस्पर सहमति के आधार पर कराए जाने के लिए सहमत होना – पति और पत्नी के बीच कोई वैवाहिक संबंध न रहने तथा केवल धारा 13ख में उपबंधित प्रतीक्षा अवधि के पूरा किए जाने के लिए औपचारिक संबंध बनाए रखने के तथ्य को तथा मामले की परिस्थितियों और इस तथ्य को देखते हुए कि धारा 13ख में वर्णित शर्तों में से एक शर्त अर्थात् परस्पर सहमति द्वारा विवाह विघटन किए जाने की शर्त पूरी होती है, पूर्ण न्याय किए जाने की दृष्टि से संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए प्रतीक्षा की अवधि को कम करके परस्पर सहमति के आधार पर विवाह विघटन किया जाना न्यायोचित होगा ।

देविन्दर सिंह नरूला बनाम **मीनाक्षी नांगिया** 105

———

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमश: चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ को पाठकों की सुविधा के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वाशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

तुलनात्मक सारणी

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

[2012] 4 उम. नि. प.

अक्तूबर – दिसम्बर, 2012

क्र. सं.	निर्णय का नाम व तारीख	उम. नि. प.		ए. आई. आर. (एस. सी.)		एस. सी. सी.	
1	2	3		4		5	
1.	बृजेश मावी **बनाम** राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र, दिल्ली (3 जुलाई, 2012)	[2012] 4	1	2012	2657	(2012) 7	45
2.	अविषेक गोयनका **बनाम** भारत संघ (3 अगस्त, 2012)		21		3230	8	441
3.	भारतीय विधिज्ञ परिषद् **बनाम** भारत संघ (3 अगस्त, 2012)		36		3246	8	243
4.	भोपाल गैस पीड़ित महिला उद्योग संगठन और अन्य **बनाम** भारत संघ और अन्य (9 अगस्त, 2012)		70		3081	8	326
5.	देविन्दर सिंह नरूला **बनाम** मीनाक्षी नांगिया (22 अगस्त, 2012)		105		2890	8	580

1	2	3			4		5	
6.	कुनाल मजूमदार **बनाम** राजस्थान राज्य (12 सितम्बर, 2012)	[2012] 4	113	2012	-		(2012) 9	320
7.	मुस्तफा शाहदल शेख **बनाम** महाराष्ट्र राज्य (14 सितम्बर, 2012)		127		-		11	397
8.	सुनील क्लीफोर्ड डेनियल **बनाम** पंजाब राज्य (14 सितम्बर, 2012)		143		-		11	205

[2012] 4 उम. नि. प. 1

बृजेश मावी

बनाम

राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र, दिल्ली

3 जुलाई, 2012

न्यायमूर्ति स्वतंत्र कुमार और न्यायमूर्ति रंजन गोगोई

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 300 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 तथा 3 और आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25] – हत्या – अभियुक्त के बताए जाने पर अपराध में प्रयुक्त हथियार की बरामदगी – घटना के दो वर्ष पश्चात् हत्या में प्रयुक्त रिवाल्वर की बरामदगी – शव से निकाली गई गोलियों को हथियार के साथ न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला न भेजा जाना – घटनास्थल से बरामद गोली का बरामद किए गए हथियार से न चलाया जाना – हथियार की बरामदगी मात्र के आधार पर अभियुक्त को हत्या का दोषी नहीं ठहराया जा सकता – अभियुक्त आयुध अधिनियम की धारा 25 के अधीन ही दोषी है ।

प्रस्तुत मामले में, ये अपीलें दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए तारीख 10 अगस्त, 2009 के उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई हैं जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और 460 तथा आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 के अधीन अपीलार्थियों की दोषसिद्धि की पुष्टि की गई है । अपीलों का तदनुसार निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – ऊपर उल्लिखित तथ्यों के संक्षिप्त सार से यह दर्शित होता है कि अभियुक्त अपीलार्थी को उस घटना से संबद्ध करने के लिए कोई भी प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है जिसमें मृतक की मृत्यु हुई है । अभि. सा. 1 ऐसा एक मात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है जिसकी अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षा की गई है और जिसने स्पष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृजेश घटना के दिन घटनास्थल पर मौजूद नहीं था और वास्तव में, उसने

अभियुक्त अपीलार्थी को पहली बार न्यायालय में देखा है । अतः, दूसरे व्यक्ति अर्थात् अभियुक्त सतीश की जो मृतक के साथ एस. टी. डी. बूथ की ओर अग्न्यायुध लिए जा रहा था, शनाख्त नहीं की गई है । अभियोजन पक्ष ने किसी भी प्रत्यक्ष साक्षी के अभाव में, पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर अपना पक्षकथन साबित करने की ईप्सा की है । पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर लगाए गए आरोप को साबित करने से संबंधित विधि के सिद्धांत को दोहराने की आवश्यकता नहीं है । इस मुद्दे से संबंधित इस न्यायालय के अनेक विनिश्चयों से उक्त सिद्धांत को इस प्रकार संक्षिप्त किया जा सकता है कि केवल अभियोजन पक्ष को ही अभियुक्त के विरुद्ध संदेह के परे अपराध में फंसाने वाली परिस्थितियों को साबित और सिद्ध नहीं करना चाहिए अपितु उक्त परिस्थितियों से अन्य व्यक्तियों के अपवर्जित किए जाने का ही निष्कर्ष निकलना चाहिए अर्थात् किसी अन्य व्यक्ति ने नहीं अपितु अभियुक्त ने ही अपराध कारित किया है । (पैरा 14 और 15)

न्यायालय द्वारा विचार किए जाने के लिए अगला प्रश्न यह है कि वर्तमान मामले में वे कौन सी परिस्थितियां हैं जिन्हें साबित करने में अभियोजन पक्ष सफल रहा है और यदि परिस्थितियां साबित की गई हैं तब साबित की गई परिस्थितियों के आधार पर ऊपर उपदर्शित विधि के सिद्धांतों को दृष्टिगत करते हुए क्या निष्कर्ष निकाला गया है । अभियोजन पक्ष ने यह प्रकथन किया है कि तारीख 12 अगस्त, 2003 को अभियुक्त-अपीलार्थी एक अन्य मामले के संबंध में गिरफ्तार किए जाने पर उसने वर्तमान मामले में अपना आलिप्त होना स्वीकार किया है । पुलिस उपनिरीक्षक सतीश कुमार (अभि. सा. 1), सहायक उपनिरीक्षक रवीन्द्र और कांस्टेबल राजीव (अभि. सा. 3) के समक्ष उसके द्वारा दिए गए कथन के आधार पर .380 कैलिबर वाला रिवाल्वर अपार्टमेंट सं. एफ-4/64, सेक्टर 16, रोहिणी, दिल्ली के द्वितीय तल से बरामद किया गया है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 456/03 के संबंध में परीक्षा किए गए अभि. सा. 1, 2 और 3 के साक्ष्य और हैड कांस्टेबल राजीव (अभि. सा. 3) जिसकी परीक्षा वर्तमान मामले में अभि. सा. 19 के रूप में की गई है, के साक्ष्य से बिना किसी संदेह और असंदिग्धता के विस्तृत रूप से ऐसे तथ्य उपदर्शित होते हैं जिनके आधार पर बरामदगी की गई थी । तीनों साक्षियों की प्रतिपरीक्षा से कोई भी ऐसा तथ्य सामने नहीं आता है जो अभियुक्त के पक्ष में जाए । हमारी सुविचारित राय में परीक्षा किए गए प्रतिरक्षा साक्षी-1 और प्रतिरक्षा साक्षी-2 अभियोजन पक्ष कथन को निष्प्रभावी करने में सफल नहीं रहे हैं

क्योंकि विजय गुप्ता (प्रतिरक्षा साक्षी-1) से स्वीकृत रूप से पुलिस थाने में बरामदगी किए जाने वाले दिन पूछताछ की गई थी । इसके प्रतिकूल राजीव चौहान (प्रतिरक्षा साक्षी-2) यह साबित करने में असफल रहा है कि सुसंगत समय के दौरान प्रश्नगत अपार्टमेंट के द्वितीय तल के संबंध में वह प्रतिरक्षा साक्षी-1 का किराएदार है । इन परिस्थितियों में न्यायालय को इस आधार पर कार्यवाही करनी होगी कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य द्वारा बरामदगी साबित की गई है जैसाकि अभियोजन पक्ष द्वारा दावा किया गया है । (पैरा 16 और 17)

न्यायालय के उपरोक्त निष्कर्ष से आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 के अधीन अभियुक्त-अपीलार्थी की दोषसिद्धि पूर्णतया न्यायोचित हो जाती है । तथापि, जहां तक दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और 460 का संबंध है कुछ अन्य सुसंगत तथ्य और परिस्थितियां भी हैं जो अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य द्वारा साबित की गई हैं और जिन पर हमें विचार करना चाहिए ताकि ऐसे निष्कर्ष निकाले जा सकें जिनका संबंध अभियुक्तों से प्रश्नगत हथियारों की बरामदगी से हो । बरामदगी दो वर्षों से अधिक समय के पश्चात् की गई है । यह घटना 6 जून, 2001 को घटित हुई थी और बरामदगी 12 अगस्त, 2003 को की गई है । अभियोजन पक्ष ने यह साबित नहीं किया है कि इस समयांतराल के दौरान इन हथियारों के साथ छेड़छाड़ नहीं की गई है और निरंतर रूप से अभियुक्त-अपीलार्थी बृजेश के कब्जे में रहे हैं । घटनास्थल से बरामद किए गए जिन्दा और चलाए गए कारतूस तथा शवपरीक्षण के दौरान शवों से निकाली गई गोलियां न्यायालयिक प्रयोगशाला, रोहिणी को भेजी गई थीं । रिपोर्ट प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 21/ए है । उक्त रिपोर्ट पर वह तारीख 28 फरवरी, 2002 डली हुई है जो .380 कैलिबर वाले रिवाल्वर की बरामदगी के पूर्व की तारीख है । हथियारों की बरामदगी के पश्चात् उन्हें जिन्दा और खाली कारतूसों तथा घटनास्थल से बरामद की गई गोलियों के साथ केंद्रीय न्यायालयिक प्रयोगशाला चंडीगढ़ भेज दिया गया और अभि. सा. 20 द्वारा तैयार की गई तारीख 28 नवंबर, 2003 की रिपोर्ट (प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 20/बी) संलग्न कर दी गई । तथापि, आश्चर्य की बात है, शवपरीक्षण के समय शव से निकाली गई गोलियां केंद्रीय न्यायालयिक प्रयोगशाला, चंडीगढ़ को नहीं भेजी गईं । यह बात उपनिरीक्षक संजीव शर्मा (अभि. सा. 25) के साक्ष्य से स्पष्ट है । हमें यह प्रतीत होता है कि इस संबंध में किसी भी स्पष्टीकरण के न दिए जाने से अभियोजन के पक्षकथन में गंभीर कमी आती है । इसके

अतिरिक्त प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 20/बी में यह अभिलिखित किया गया है कि 4 में से 3 गोलियां (जो घटनास्थल से बरामद की गई थीं) बरामद किए गए हथियारों से चलाई गई थी । उक्त गोलियों को सीरम परीक्षण के लिए नहीं भेजा गया था ताकि यह सिद्ध हो पाता कि बरामद किए गए हथियारों से चलाई गई गोलियां मृतक के शरीर में प्रविष्ट और निष्कासित हुई थीं या नहीं । ऐसी परिस्थिति में संदेह बना रहता है कि वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष सभी युक्तियुक्त संदेहों के परे अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप साबित करने में सफल हुआ है या नहीं । इसके अतिरिक्त, प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 20/बी से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक गोली (जिसे विज्ञानी द्वारा बी. 2 से चिह्नांकित किया गया है) अपीलार्थी के कहने पर बरामद किए गए .380 कैलिबर वाले अग्न्यायुध से चलाई गई थी या नहीं न्यायालयिक प्रयोगशाला, रोहिणी, दिल्ली की प्रथम रिपोर्ट प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 21/ए से भी यह उपदर्शित होता है कि .380 कैलिबर वाली एक गोली पर कोई भी टकराने का चिह्न नहीं है अभियोजन पक्ष मामले के उपर्युक्त पहलू को स्पष्ट नहीं कर सका है, यद्यपि दो रिपोर्टों के आधार पर इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि .380 कैलिबर वाले एक अन्य अग्न्यायुध का प्रयोग किया गया है । यद्यपि उपरोक्त चर्चा से न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष अभियुक्त अपीलार्थी के विरुद्ध अपराध में फंसाने वाली अत्यंत ठोस परिस्थिति को साबित करने में सफल रहा है, फिर भी हमारा यह विचार नहीं है कि यह अभिनिर्धारित करना पूर्णतया उचित होगा कि उपर्युक्त साबित की गई परिस्थिति से मात्र यह निष्कर्ष निकलता है कि अभियुक्त बृजेश मृतक की हत्या के लिए जिम्मेदार है जो तारीख 6 जून, 2001 को हुई थी । हमने यह भी विचार किया है कि उच्च न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 तथा 460 के अधीन दोषसिद्ध किया है । ऐसी परिस्थिति में जहां सह-अभियुक्त सतीश की मृत्यु विचारण के दौरान हो गई हो और सह-अभियुक्त मेद सिंह को उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया हो, तब वर्तमान अभियुक्त-अपीलार्थी की धारा 34 के अधीन अपराधिता गंभीर रूप से संदिग्ध हो जाती है । ऐसी अपराधिता को अभियुक्त-अपीलार्थी के वैयक्तिक प्रत्यक्ष कार्य के आधार पर विनिश्चित करना होगा जिसके संबंध में हमें अभिलेख पर कोई भी तर्कसम्मत और विश्वसनीय सामग्री दिखाई नहीं देती है । परिणामतः, न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि आयुध अधिनियम, 1959 की

धारा 25 के अधीन अभियुक्त-अपीलार्थी की दोषसिद्धि और अधिरोपित दंडादेश न्यायोचित है, अभियुक्त-अपीलार्थी दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और 460 के अधीन अपराध के बाबत हमारे संदेह का लाभ पाने के हकदार हैं । अतः, जहां तक दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और 460 का संबंध है, हम उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त करते हैं । आयुध अधिनियम की धारा 25 के अधीन अभियुक्त-अपीलार्थी की दोषसिद्धि और अधिरोपित दंडादेश कायम रखा जाता है । (पैरा 18, 20 और 21)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2011]	(2011) 13 एस. सी. सी. 621 : **मुहम्मद आरिफ** उर्फ **अशफाक** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली)** ;	15
[2010]	(2010) 8 एस. सी. सी. 249 : **सनातन नस्कर और एक अन्य** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** ;	15
[2010]	(2010) 3 एस. सी. सी. 56 : **विक्रम सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ;	15
[2010]	(2010) 2 एस. सी. सी. 748 : **मुशीर खां** उर्फ **बादशाह खां और एक अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	12
[2010]	(2010) 2 एस. सी. सी. 583 : **आफताब अहमद अंसारी** बनाम **उत्तरांचल राज्य** ;	15
[2009]	(2009) 1 एस. सी. सी. 625 : **अब्दुलवहाब अब्दुलमजीद बलोच** बनाम **गुजरात राज्य** ;	12, 19
[1997]	(1997) 7 एस. सी. सी. 156 : **तनवीबेन पंकजकुमार दिवेतिया** बनाम **गुजरात राज्य** ;	15
[1984]	(1984) 4 एस. सी. सी. 116 : **शरद बिरधीचन्द शारदा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ।	15

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2011 की दांडिक अपील सं. 824 - 825.

2008 की दांडिक अपील सं. 662 और 646 में दिल्ली उच्च न्यायालय के तारीख 10 अगस्त, 2009 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री ए. शरण (वरिष्ठ अधिवक्ता), एस. चंद्र शेखर, नीरज वालिया, संचित गुरु, मनोज कुमार, सूरज राठी

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री जे. एस. अत्री (वरिष्ठ अधिवक्ता), एन. के. श्रीवास्तव, (सुश्री) प्रियंका भरिहोक, के. के. त्यागी, (सुश्री) अनील कटियार, बी. वी. बलराम दास

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति रंजन गोगोई ने दिया ।

न्या. गोगोई – ये अपीलें दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए तारीख 10 अगस्त, 2009 के उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई हैं जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और 460 तथा आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 के अधीन अपीलार्थियों की दोषसिद्धि की पुष्टि की गई है । अपीलार्थियों को दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराध के लिए कठोर आजीवन कारावास भोगने और धारा 34 के साथ पठित धारा 460 के अधीन सात वर्ष के कठोर कारावास का दंड अधिरोपित किया गया है । जहां तक आयुध अधिनियम, 1959 के अधीन अपराध किए जाने का संबंध है, अभियुक्त-अपीलार्थी को एक वर्ष का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया है । सभी दंडादेशों के साथ-साथ चलाए जाने का निदेश दिया गया है ।

2. संक्षेप में अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि तारीख 6 जून, 2001 को पुलिस हैड कांस्टेबल बृजपाल (अभि. सा. 11) जो पी. सी. आर. (पुलिस नियंत्रण कक्ष) में तैनात था, को लगभग 10.35 बजे अपराह्न में सूचना प्राप्त हुई कि सावित्री नगर में मिठाई की दुकान के निकट गोली

चल रही है । तदनुसार, अभि. सा. 11 अन्य पुलिस कार्मिकों के साथ उक्त स्थान पर पहुंचा और उसने देखा कि एस. टी. डी. बूथ के निकट भीड़ जमा है और वहां पर रक्त पड़ा हुआ था और टूटा हुआ कुछ सामान भी पड़ा हुआ था । वह एस. टी. डी. बूथ मलिक कम्युनिकेशन्स के स्वामी ओमियो दास का था जिसे गोली चलाई जाने की घटना में क्षति पहुंची थी और उसे पहले ही अस्पताल भेज दिया गया था ।

उक्त सूचना स्थानीय पुलिस थाने को भेजी गई जिसे पुलिस थाने के रोजनामचे में सम्यक् रूप से अभिलिखित किया गया और वह पुलिस उप निरीक्षक सुधीर शर्मा (अभि. सा. 24) को सौंप दी गई जो कांस्टेबल बजरंग बहादुर के साथ घटनास्थल पर पहुंचा । उक्त स्थान पर पहुंचने पर पुलिस दल को यह पता चला कि आहत ओमियो दास को पहले ही अस्पताल पहुंचा दिया गया है जिसे वहां पर मृत अवस्था में लाया गया घोषित किया गया है ।

इसके अतिरिक्त अभियोजन पक्ष के अनुसार, विक्की मलिक (अभि. सा. 1) इस घटना का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है । तद्नुसार, उसका कथन (प्रदर्श अभि. सा. 1/ए.) अभिलिखित किया गया जिसमें उसने यह उल्लेख किया कि तारीख 6 जून, 2001 को लगभग 10.20 बजे अपराह्न में जब वह अपने एस. टी. डी. बूथ और जे-196, सावित्री नगर स्थित मिठाई की दुकान के बाहर बैठा हुआ था, उसने सड़क के दूसरी ओर आकर रुकी हुई सफेद रंग की मारुति कार देखी । पुलिस द्वारा अभिलिखित कथन में अभि. सा. 1 ने यह उल्लेख किया कि दो व्यक्ति उस वाहन में से उतरे और एस. टी. डी. बूथ में आ गए जिसके पश्चात् वे उसके मामा ओमियो दास पर गोलियां चलाने लगे । अभि. सा. 1 के अनुसार उसने हस्तक्षेप करने का प्रयास किया और वास्तव में वह निकट की मिठाई की दुकान से एक पलटा ले आया और अपनी जान बचाई । अभि. सा. 1 ने यह भी कथन किया है कि उसके मामा की क्षतियों से रक्त बह रहा था और वह अपने मकान सं. 86बी की ओर मदद के लिए चिल्लाता हुआ दौड़ा था । इसके पश्चात् अभि. सा. 1 के अनुसार हमलावर भाग गए और उसने अपने छोटे भाई राजकुमार मलिक (अभि. सा. 3) और एक अन्य मामा रवि कुमार दास (अभि. सा. 4) की सहायता से आहत को अस्पताल पहुंचाया । अभि. सा. 1 ने अपने कथन में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया कि सतीश कुमार नाम के व्यक्ति, जिसने उसके पिता की हत्या की है और जो उक्त घटना

से उद्भूत एक मामले में लगभग एक मास पूर्व दोषमुक्त हुआ है, हमलावरों में से एक हमलावर है जबकि दूसरा हमलावर लगभग 25-26 वर्ष का एक व्यक्ति है जिसकी मजबूत कदकाठी है । विक्की मलिक (अभि. सा. 1) द्वारा दिए गए उपर्युक्त कथन के आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 6/1) दर्ज कराई गई और मामला सं. 438/2006 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "वर्तमान मामला" कहा गया है) पुलिस थाना मालवीय नगर में रजिस्ट्रीकृत किया गया । .380 बोर वाले तीन जिन्दा कारतूस, .380 बोर वाला एक खाली कारतूस और चलाई गई गोलियों के रांग के चार टुकड़े घटनास्थल से सुधीर शर्मा (अभि. सा. 24) द्वारा अभिगृहीत किए गए । अभि. सा. 3 का रक्तरंजित बनियान, रक्तरंजित मिट्टी आदि भी अन्वेषण दल द्वारा घटनास्थल से अभिगृहीत किए गए ।

3. अभियोजन का पक्षकथन आगे इस प्रकार है कि अगले दिन अर्थात् 7 जून, 2001 को डा. टी. माइलो (अभि. सा. 9) ने मृतक के शव का शव परीक्षण किया जिसके दौरान गोलियों से पहुंचाई गई मृत्युपूर्व की नौ क्षतियां पाई गईं और शव से चार गोलियां निकाली गईं और एक सूती जांघिया, बनियान और एक पैंट (पतलून) भी बरामद की गई और इन सभी वस्तुओं को उप निरीक्षक सुधीर शर्मा (अभि. सा. 24) को सौंप दिया गया । मृत्यु का कारण कौमा की स्थिति में आना पाया गया जो मृतक के सिर में अग्न्यायुध से कारित हुई क्षति के कारण हुआ था ।

4. अभियोजन पक्ष के अनुसार तारीख 16 नवंबर, 2001 को अन्वेषक अधिकारी उप निरीक्षक सुधीर शर्मा (अभि. सा. 24) ने अभियुक्त सतीश कुमार को गिरफ्तार किया जो पहले ही फरीदाबाद पुलिस द्वारा पुलिस थाना जी. आर. पी. फरीदाबाद के अंतर्गत आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 के अधीन गिरफ्तार किया जा चुका था । अभियोजन पक्ष ने यह अभिकथन किया है कि सतीश कुमार ने वर्तमान मामले में प्रकटीकरण कथन (प्रदर्श पी. डब्ल्यू 24/डी.) दिया है और दो व्यक्तियों अर्थात् मेद सिंह और वर्तमान अपीलार्थी बृजेश के आलिप्त होने के बारे में कहा है । अभियुक्त सतीश द्वारा दिए गए उक्त प्रकटीकरण कथन के आधार पर .30 बोर वाले तीन जिन्दा कारतूसों के साथ .30 बोर वाला एक पिस्तौल बरामद किया गया । इसके पश्चात् तारीख 9 जनवरी, 2002 को उप निरीक्षक संजीव कुमार (अभि. सा. 25) ने मेद सिंह को गिरफ्तार किया जो आयुध अधिनियम के अधीन एक अन्य मामले में पहले ही तारीख 5 जनवरी, 2002 को गिरफ्तार

हो चुका था । तीन मुहरबंद पार्सल भी अभियुक्त सतीश के कहने पर बरामद किए गए जिनमें एक .30 बोर वाली पिस्तौल और तीन 7.62 मिमी. वाले जिन्दा कारतूस थे, तीन .380 बोर वाले कारतूस, एक .380 बोर वाला कारतूस का खोल, दो गोलियां और दो निष्क्रिय गोलियां घटनास्थल से बरामद की गई और चार गोलियां शव परीक्षण के दौरान शव से निकाली गई, ये सभी वस्तुएं तारीख 3 दिसंबर, 2001 को न्यायालयिक प्रयोगशाला रोहिणी, दिल्ली भेज दी गईं । इसके पश्चात्, श्री के. सी. वार्ष्णेय, वरिष्ठ विज्ञान अधिकारी न्यायालयिक प्रयोगशाला, रोहिणी, दिल्ली द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट (प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 21/ए) प्राप्त की गई जो इस संबंध में थी कि जिन गोलियों को ई.बी. 1, ई.बी. 3 से ई. बी. 8 (जिनकी संख्या 7 है) के रूप में चिह्नांकित किया गया है वे .380 बोर वाले अग्न्यायुध से चलाई गई हैं । इन तथ्यों के आधार पर गिरफ्तार किए गए दो अभियुक्त सतीश और मेद सिंह को विचारण के लिए भेजा गया । चूंकि दो अभियुक्त व्यक्तियों ने उन पर लगाए गए आरोपों से इनकार किया है, इसलिए उनका विचारण किया गया । उस प्रक्रम तक तीसरे अभियुक्त की शनाख्त नहीं हो सकी थी न ही उसका कहीं पता चल सका था ।

5. जब मामले का विचारण किया जा रहा था तब वर्तमान अपीलार्थी बृजेश पुलिस थाना मालवीय नगर में दर्ज प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 575/2003 के अंतर्गत एक अन्य मामले में तारीख 12 अगस्त, 2003 को गिरफ्तार किया गया था । अभियोजन पक्ष के अनुसार, परिप्रश्न किए जाने पर अभियुक्त अपीलार्थी ने वर्तमान मामले में अपने अंतर्वलित होने के संबंध में प्रकटीकरण कथन दिया और स्वीकार किया और साथ ही एक कथन दिया जिसके आधार पर .380 कैलिबर वाले तीन जिन्दा कारतूसों के साथ .380 कैलिबर वाली रिवाल्वर अपार्टमेंट संख्या एफ-4/64, सेक्टर 16, रोहिणी, दिल्ली के द्वितीय तल से बरामद की गई । इस घटना के संबंध में अलग से 2003 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट संख्या 456 आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 के अधीन पुलिस थाना प्रशांत विहार में रजिस्ट्रीकृत की गई । इस प्रक्रम पर यह विचार किया जा सकता है कि हथियार की उपर्युक्त बरामदगी उप निरीक्षक सतीश कुमार, सहायक उप निरीक्षक रवीन्द्र और हैड कांस्टेबल राजीव मोहन की मौजूदगी में की गई थी जिनकी परीक्षा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 456/2003 से उद्भूत मामले में अभि. सा. 1, अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 के रूप में की गई है । यह भी विचारणीय है कि हैड कांस्टेबल राजीव जिसकी परीक्षा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट

सं. 456/2003 वाले मामले में अभि. सा. 3 के रूप में की गई थी, उसकी परीक्षा वर्तमान मामले में पुनः अभि. सा. 19 के रूप में भी की गई है । दोनों मामले अर्थात् वर्तमान मामला तथा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 456/2003 से उद्भूत मामले की सुनवाई विद्वान् अपर जिला और सेशन न्यायाधीश के तारीख 10 मार्च, 2005 के आदेश द्वारा एक साथ की गई और वर्तमान मामले में अभियुक्त अपीलार्थियों के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और 460 के अधीन आरोप विरचित किए गए । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 456/2003 से संबंधित मामले में अपीलार्थी के विरुद्ध आयुध अधिनियम की धारा 25 के अधीन भी अलग से आरोप विरचित किया गया ।

विक्की मलिक (अभि. सा. 1) जिसकी परीक्षा पहले ही कराई जा चुकी थी, वर्तमान अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप विरचित किए जाने के पश्चात् पुनः परीक्षा के लिए बुलाया गया । जब दोनों मामलों का विचारण किया जा रहा था, अभियुक्त सतीश की मृत्यु हो गई और उसके प्रति कार्यवाहियां उपशमित कर दी गई । वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा कुल मिलाकर 25 साक्षियों की परीक्षा की गई और बड़ी संख्या में दस्तावेज भी प्रदर्शित किए गए । प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा दो साक्षियों की परीक्षा की गई । विजय गुप्ता (प्रतिरक्षा साक्षी-1) ने अपार्टमेंट सं. एफ-4/64, सेक्टर 16, रोहिणी, दिल्ली का स्वामी होने का दावा किया है । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि जब इस अपार्टमेंट का भूतल उसके अधिभोग में था तब प्रथम तल मरम्मत के कार्य के लिए रिक्त पड़ा हुआ था । इस अपार्टमेंट का द्वितीय तल राजीव चौहान नाम के एक किराएदार के पास था । प्रतिरक्षा साक्षी- 1 के अनुसार, जैसाकि पुलिस ने दावा किया है, तारीख 12 अगस्त, 2003 को कोई भी बरामदगी नहीं की गई थी । किराएदार राजीव चौहान (प्रतिरक्षा साक्षी-2) ने प्रतिरक्षा साक्षी 1 के उपर्युक्त वृत्तांत की पूर्णतया संपुष्टि की है । दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन दोनों अभियुक्तों अर्थात् मेद सिंह और अपीलार्थी बृजेश की परीक्षा कराई गई । विचारण पूरा किए जाने पर दोनों अभियुक्तों अर्थात् मेद सिंह और वर्तमान अपीलार्थी बृजेश को उन अपराधों के लिए दोषी पाया गया जिनके आरोप उन पर लगाए गए थे । उच्च न्यायालय के समक्ष दोनों अभियुक्त द्वारा अलग- अलग अपीलें फाइल की गई हैं । तारीख 10 अगस्त, 2009 के आक्षेपित निर्णय द्वारा दोनों मामलों में अभियुक्त मेद सिंह को दोषमुक्त किया गया है, वर्तमान अपीलार्थी को विरचित आरोपों के लिए

दोषसिद्ध किया गया है और उपर्युक्त रूप में दंडादिष्ट किया गया है और इसी आदेश के विरुद्ध वर्तमान अपील की गई है ।

6. अपीलार्थी की ओर से दी गई दलीलों पर विचार करने के पूर्व, अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य द्वारा साबित और सिद्ध तथ्यों पर विचार किया जाना अपेक्षित होगा जो निम्न प्रकार हैं ।

7. विक्की मलिक (अभि. सा. 1) द्वारा न्यायालय में दिए गए आरंभिक अभिसाक्ष्य में स्पष्ट रूप से यह कथन किया गया है कि वह उस दूसरे हमलावर को नहीं जानता है जो अभियुक्त सतीश के साथ था । तारीख 11 अगस्त, 2003 को वर्तमान अभियुक्त-अपीलार्थी की गिरफ्तारी के पश्चात् अभि. सा. 1 को पुनः तारीख 21 अक्तूबर, 2005 को परीक्षा के लिए बुलाया गया । इस प्रक्रम पर अभि. सा. 1 ने स्पष्ट रूप से यह इनकार किया है कि उसने पुलिस को दिए गए अपने कथन में यह उल्लेख किया था कि उसने अभियुक्त-अपीलार्थी बृजेश को नामित किया था या यह कि उसने पुलिस के समक्ष वर्तमान अभियुक्त अपीलार्थी की शनाख्त की थी । वास्तव में, अभि. सा. 1 ने अपनी परीक्षा में स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि "न्यायालय में मौजूद अभियुक्त-अपीलार्थी बृजेश मावी घटना के दिन वहां मौजूद नहीं था" और यह भी कथन किया था कि "न्यायालय में मौजूद अभियुक्त बृजेश मावी वह व्यक्ति नहीं है जिसने मेरे मामा की हत्या की थी । मैंने बृजेश मावी को पहली बार न्यायालय में देखा है" । अभि. सा. 1 को पक्षद्रोही घोषित नहीं किया गया ।

8. इस मामले के अन्वेषण अधिकारी सुधीर कुमार (अभि. सा. 24) ने अपने साक्ष्य में, जैसाकि पहले ही उल्लेख किया गया है, तीन जिन्दा कारतूसों, एक खाली कारतूस और चार गोलियों (सभी गोलियां 0.380 कैलिबर वाली हैं) की घटनास्थल से की गई बरामदगी के बारे में अभिसाक्ष्य दिया है । इस साक्षी ने उन चार गोलियों की रसीद के बारे में भी अभिसाक्ष्य दिया है जो शवपरीक्षण के समय मृतक के शव से निकाली गई थीं । अभि. सा. 24 के अनुसार घटनास्थल से बरामद किए गए कारतूस और गोलियों को एस. के. की मुहर से मुहरबंद किया गया और शव से निकाली गई गोलियों को अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान अस्पताल की न्यायालयिक प्रयोगशाला की मुहर से मुहरबंद किया गया था । अभि. सा. 24 ने भी अभियुक्त सतीश की गिरफ्तारी ; उसके द्वारा दिए गए प्रकटीकरण कथन और तीन जिन्दा कारतूसों के साथ .30 कैलिबर वाली

पिस्तौल की बरामदगी के संबंध में भी अभिसाक्ष्य दिया है । इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि परिप्रश्न के दौरान यह सामने आया कि .380 कैलिबर वाला रिवाल्वर अभियुक्त सतीश के पास था और .30 कैलिबर वाली पिस्तौल अभियुक्त बृजेश के पास थी ।

9. वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी श्री के. सी. वार्ष्णेय (अभि. सा. 21) के साक्ष्य और उसकी रिपोर्ट प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 21/ए से यह स्पष्ट हो जाता है कि .30 कैलिबर वाली पिस्तौल और .30 कैलिबर वाले तीन जिन्दा कारतूसों, .380 वाले तीन कारतूसों, एक .380 वाले कारतूस का खोल चार गोलियों के साथ घटनास्थल से बरामद किए गए और मृतक के शव से चार गोलियां बरामद की गईं जिन्हें परीक्षण के लिए भेज दिया गया और इस संबंध में यह रिपोर्ट है कि ई. बी. 1, ई. बी. 3 से ई. बी. 8 के रूप में चिह्नांकित 7 गोलियां .380 कैलिबर वाले अग्न्यायुध से चलाई गई हैं ।

10. उप निरीक्षक संजीव शर्मा (अभि. सा. 25) के साक्ष्य से यह भी प्रतीत होता है कि अपार्टमेंट सं. एफ-4/64, सेक्टर 16, रोहिणी, दिल्ली से .380 कैलिबर वाले रिवाल्वर की बरामदगी के पश्चात् उक्त रिवाल्वर और .380 कैलिबर वाले खाली और जिन्दा कारतूस और घटनास्थल से बरामद की गई चार गोलियां परीक्षण और रिपोर्ट के लिए केंद्रीय न्यायालयिक प्रयोगशाला, चण्डीगढ़ भेजी गईं कि कारतूसों और गोलियों का कोई संबंध बरामद किए गए अग्न्यायुधों से है या नहीं । डा. पी. सिद्दम्बरी कनिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी (प्राक्षेपिकी), केंद्रीय न्यायालयिक प्रयोगशाला, चण्डीगढ़ (अभि. सा. 20) द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट (प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 20/बी) इस संबंध में है कि .380 वाला रिवाल्वर (जिसका नम्बर 25502 है) चालू हालत में था और अपराध में चलाई गई गोलियां जिन्हें बी/1, बी/3 और बी/4 के रूप में चिह्नांकित किया गया है, उक्त .380 वाला रिवाल्वर (जिसका नम्बर 25502 है) से चलाई गई हैं और यह भी उल्लेख किया है कि उक्त गोलियां अन्य किसी अग्न्यायुध से नहीं चलाई जा सकती हैं । जहां तक जिन्दा कारतूसों का संबंध है अभि. सा. 20 की रिपोर्ट में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है और जहां तक कारतूस के खोल (प्राक्षेपिकी विज्ञानी द्वारा ई. सी. 1 के रूप में चिह्नांकित) का संबंध है, प्राक्षेपिकी विज्ञानी की राय से निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है । उपरोक्त बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि केंद्रीय न्यायालयिक प्रयोगशाला, चण्डीगढ़ को भेजी गई चार गोलियां जिनका परीक्षण अभि. सा. 20 द्वारा किया गया था, वही गोलियां हैं जो घटनास्थल से बरामद की गई थीं । शव से निकाली गई

गोलियां न्यायालयिक प्रयोगशाला, रोहिणी को तो अवश्य भेजी गई थी और उनका अभि. सा. 21 द्वारा परीक्षण भी किया गया था परंतु अभियोजन पक्ष द्वारा उन्हें केंद्रीय न्यायालयिक प्रयोगशाला, चण्डीगढ़ नहीं भेजा गया था और वह अभि. सा. 20 द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट (प्रदर्श 20/बी) का भाग नहीं है ।

11. एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य जिस पर विचार किया जाना चाहिए, यह है कि केंद्रीय न्यायालयिक प्रयोगशाला, चण्डीगढ़ की रिपोर्ट (प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 20/बी) में यह उल्लेख नहीं किया गया है कि घटनास्थल से बरामद की गई गोलियों में से एक गोली जिसे प्राक्षेपिकी विज्ञानी द्वारा बी 2 के रूप में चिह्नांकित किया गया है, रिवाल्वर सं. 25502 से चलाई गई थी यद्यपि दोनों रिपोर्टों अर्थात् प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 21/ए और प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 20/बी के अनुसार उक्त गोली .380 कैलिबर वाली है ।

12. अपीलार्थी के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री ए. शरण ने यह दलील दी है कि एक मात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अर्थात् विक्की मलिक (अभि. सा. 1) के साक्ष्य से यह स्पष्ट और प्रत्यक्ष हो जाता है कि उसने अभियुक्त-अपीलार्थी बृजेश को पहचानकर यह नहीं बताया था कि यह वही व्यक्ति है जो अभियुक्त सतीश के साथ एस. टी. डी. बूथ की ओर जा रहा था जहां पर गोली चली थी । वास्तव में, विद्वान् काउंसेल के अनुसार अभि. सा. 1 ने स्पष्ट रूप से न्यायालय में यह कथन किया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृजेश घटनास्थल पर मौजूद नहीं था और उसने अभियुक्त-अपीलार्थी को न्यायालय में पहली बार देखा है । अतः विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि कोई भी ऐसा प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है जो अभियुक्त-अपीलार्थी को उस अपराध से संबद्ध कर सके जिससे उसे आरोपित किया गया है । यह दलील दी गई है कि अभियुक्त-अपीलार्थी की शनाख्त न किए जाने पर जो दोषसिद्धि की गई है वह पूर्णतया निराधार है । श्री शरण ने यह भी दलील दी है कि अपार्टमेंट सं. एफ-4/64, सेक्टर 16, रोहिणी, दिल्ली से की गई रिवाल्वर की बरामदगी, जैसाकि अभियोजन पक्ष द्वारा दावा किया गया है, किसी भी प्रकार से साबित नहीं की गई है क्योंकि इस बात को साबित करने के लिए किसी भी स्वतंत्र साक्षी की परीक्षा नहीं की गई है । इसके अतिरिक्त, प्रतिरक्षा साक्षी 1 और प्रतिरक्षा साक्षी 2 ने स्पष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि तारीख 12 अगस्त, 2003 को कोई भी पुलिस दल अपार्टमेंट में नहीं आया था और न ही कोई भी बरामदगी उक्त तारीख को की गई थी । श्री शरण ने यह भी दलील दी है कि प्रतिरक्षा साक्षियों द्वारा

दिए गए साक्ष्य की संवीक्षा से यह दर्शित होता है कि इसे स्वीकार न करने का कोई भी आधार नहीं है ।

दलील के दौरान श्री शरण ने यह भी तर्क दिया है कि मृतक के शव से निकाली गई गोलियों को स्वीकृत रूप से प्राक्षेपिकी विज्ञानी के पास परीक्षण के लिए नहीं भेजा गया था ताकि यह साबित हो पाता कि ये गोलियां अभिकथित रूप से अपार्टमेंट सं. एफ-4/64, सेक्टर 16, रोहिणी, दिल्ली से बरामद किए गए रिवाल्वर सं. 25502 से चलाई गई थीं । अतः, विद्वान् काउंसेल के अनुसार यदि रिवाल्वर की बरामदगी उपधारित कर ली जाए तब भी इस बात का कोई सबूत नहीं है कि गोलियां क्षतियां कारित करने के लिए चलाई गई थीं जिनके कारण मृतक की मृत्यु हुई । जहां तक इस बात का संबंध है कि प्रदर्श पी. डब्ल्यू 20/बी द्वारा यह साबित हो गया है कि गोलियां बरामद किए गए हथियार से चलाई गई हैं, श्री शरण ने यह दलील दी है कि गोलियों को सीरम विज्ञानी की रिपोर्ट के लिए नहीं भेजा गया था ताकि उन पर मानव रक्त का पाया जाना साबित हो पाता और यह सिद्ध हो जाता कि उक्त गोलियां मृतक के शरीर में प्रविष्ट हुई थीं और शरीर से बाहर निकली थीं । यह भी दलील दी गई है कि न्यायालयिक प्रयोगशाला, रोहिणी, दिल्ली की रिपोर्ट (प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 21/ए) सहित केंद्रीय न्यायालयिक प्रयोगशाला चण्डीगढ़ की रिपोर्ट (प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 20/बी) से यह दर्शित होता है कि केंद्रीय न्यायालयिक प्रयोगशाला, चण्डीगढ़ की रिपोर्ट (प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 20/बी) में उल्लिखित गोली जिसे प्रदर्श बी. 2 के रूप में चिह्नांकित किया गया है, बरामद किए गए हथियार से नहीं चलाई गई थी । फिर भी, अभियोजन पक्ष के अनुसार वह गोली .380 कैलिबर वाली थी जो घटनास्थल से बरामद की गई थी जिससे यह संभावना सामने आती है कि इस घटना में .380 वाले एक अन्य रिवाल्वर का भी प्रयोग किया गया था । उपर्युक्त संबंध में कोई भी साक्ष्य सामने नहीं आया है । इन परिस्थितियों में श्री शरण ने यह दलील दी है कि अभियुक्त-अपीलार्थी की दोषसिद्धि का अनुमोदन नहीं किया जा सकता है । इसके समर्थन में **अब्दुलवहाब अब्दुलमजीद बलोच** बनाम **गुजरात राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया गया है । श्री शरण ने उक्त निर्णय को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करते हुए यह दलील दी है कि वर्तमान मामले में यदि यह मान भी लिया जाए

---

[1] (2009) 1 एस. सी. सी. 625.

कि अपराध में प्रयोग किए गए हथियार की बरामदगी अभियोजन पक्ष द्वारा साबित कर दी गई है तब केवल यही एक ऐसा तथ्य है जो अपीलार्थी के विरुद्ध है । मात्र इस तथ्य से घटनाओं और परिस्थितियों की शृंखला पूर्ण नहीं होती है जिससे केवल अभियुक्त की अपराधिता का निष्कर्ष निकाला जा सके । श्री शरण ने हमारा ध्यान हाल ही में दिए गए एक निर्णय अर्थात् **मुशीर खां** उर्फ **बादशाह खां और एक अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1]**,** की ओर दिलाया है और यह दलील दी है कि यदि हथियार की अभिकथित बरामदगी उपधारित कर ली जाए, तब भी ऐसा निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है जिसके आधार पर अभियुक्त-अपीलार्थी की दोषसिद्धि को न्यायोचित ठहराया जा सके ।

13. राज्य की ओर से विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री जे. एस. अत्री ने उत्तर देते हुए यह दलील दी है कि अभि. सा. 1 का घटनास्थल पर मौजूद होने के बावजूद अभियुक्त-अपीलार्थी की शनाख्त न कर पाना अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं होगा क्योंकि वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष ने सभी संदेहों के परे यह साबित कर दिया है कि अभियुक्त-अपीलार्थियों के कहने पर अपार्टमेंट सं. एफ-4/64, सेक्टर 16, रोहिणी, दिल्ली से बरामद किया गया हथियार मृतक पर गोली चलाने के लिए प्रयोग किया गया था । यह दलील दी गई है कि घटनास्थल से बरामद की गई तीन गोलियां उक्त हथियार (प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 20/बी) से चलाई गई हैं । राज्य के विद्वान् काउंसेल के अनुसार उक्त परिस्थितियों से यह मुद्दा सभी संदेहों के परे साबित हो जाता है । यह दलील दी गई है कि अभियुक्त की अपराधिता के संबंध में उपर्युक्त उन परिस्थितियों से युक्तियुक्त रूप से दृढ़ निष्कर्ष निकाला जा सकता है जो वर्तमान मामले में साबित की गई हैं ।

14. ऊपर उल्लिखित तथ्यों के संक्षिप्त सार से यह दर्शित होता है कि अभियुक्त-अपीलार्थी को उस घटना से संबद्ध करने के लिए कोई भी प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है जिसमें मृतक की मृत्यु हुई है । अभि. सा. 1 ऐसा एक मात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है जिसकी अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षा की गई है और जिसने स्पष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृजेश घटना के दिन घटनास्थल पर मौजूद नहीं था और वास्तव में, उसने अभियुक्त-अपीलार्थी को पहली बार न्यायालय में देखा है । अतः, दूसरे व्यक्ति अर्थात् अभियुक्त सतीश की जो मृतक के साथ एस. टी. डी. बूथ

---

[1] (2010) 2 एस. सी. सी. 748.

की ओर अग्न्यायुध लिए जा रहा था, शनाख्त नहीं की गई है । अभियोजन पक्ष ने किसी भी प्रत्यक्ष साक्षी के अभाव में, पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर अपना पक्षकथन साबित करने की ईप्सा की है ।

15. पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर लगाए गए आरोप को साबित करने से संबंधित विधि के सिद्धांत को दोहराने की आवश्यकता नहीं है । इस मुद्दे से संबंधित इस न्यायालय के अनेक विनिश्चयों से उक्त सिद्धांत को इस प्रकार संक्षिप्त किया जा सकता है कि केवल अभियोजन पक्ष को ही अभियुक्त के विरुद्ध संदेह के परे अपराध में फंसाने वाली परिस्थितियों को साबित और सिद्ध नहीं करना चाहिए अपितु उक्त परिस्थितियों से अन्य व्यक्तियों के अपवर्जित किए जाने का ही निष्कर्ष निकलना चाहिए अर्थात् किसी अन्य व्यक्ति ने नहीं अपितु अभियुक्त ने ही अपराध कारित किया है । उपर्युक्त सिद्धांत **शरद बिरधीचन्द शारदा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले के पैरा 153 में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित पांच प्रतिपादनाओं में से निगमित किया गया है जिनका अनुसरण **तनवीबेन पंकजकुमार दिवेतिया** बनाम **गुजरात राज्य**[2], **विक्रम सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[3], **आफताब अहमद अंसारी** बनाम **उत्तरांचल राज्य**[4], **सनातन नस्कर और एक अन्य** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[5] और **मुहम्मद आरिफ** उर्फ **अशफाक** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली)**[6] वाले मामले में किया गया है ।

16. न्यायालय द्वारा विचार किए जाने के लिए अगला प्रश्न यह है कि वर्तमान मामले में वे कौन सी परिस्थितियां हैं जिन्हें साबित करने में अभियोजन पक्ष सफल रहा है और यदि परिस्थितियां साबित की गई हैं तब साबित की गई परिस्थितियों के आधार पर ऊपर उपदर्शित विधि के सिद्धांतों को दृष्टिगत करते हुए क्या निष्कर्ष निकाला गया है ।

17. अभियोजन पक्ष ने यह प्रकथन किया है कि तारीख 12 अगस्त, 2003 को अभियुक्त-अपीलार्थी एक अन्य मामले के संबंध में गिरफ्तार किए जाने पर उसने वर्तमान मामले में अपना आलिप्त होना स्वीकार किया है ।

---

[1] (1984) 4 एस. सी. सी. 116.
[2] (1997) 7 एस. सी. सी. 156.
[3] (2010) 3 एस. सी. सी. 56.
[4] (2010) 2 एस. सी. सी. 583.
[5] (2010) 8 एस. सी. सी. 249.
[6] (2011) 13 एस. सी. सी. 621.

पुलिस उपनिरीक्षक सतीश कुमार (अभि. सा. 1), सहायक उपनिरीक्षक रवीन्द्र और कांस्टेबल राजीव (अभि. सा. 3) के समक्ष उसके द्वारा दिए गए कथन के आधार पर .380 कैलिबर वाला रिवाल्वर अपार्टमेंट सं. एफ-4/64, सेक्टर 16, रोहिणी, दिल्ली के द्वितीय तल से बरामद किया गया है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 456/03 के संबंध में परीक्षा किए गए अभि. सा. 1, 2 और 3 के साक्ष्य और हेड कांस्टेबल राजीव (अभि. सा. 3) जिसकी परीक्षा वर्तमान मामले में अभि. सा. 19 के रूप में की गई है, के साक्ष्य से बिना किसी संदेह और असंदिग्धता के विस्तृत रूप से ऐसे तथ्य उपदर्शित होते हैं जिनके आधार पर बरामदगी की गई थी । तीनों साक्षियों की प्रतिपरीक्षा से कोई भी ऐसा तथ्य सामने नहीं आता है जो अभियुक्त के पक्ष में जाए । हमारी सुविचारित राय में परीक्षा किए गए प्रतिरक्षा साक्षी-1 और प्रतिरक्षा साक्षी-2 अभियोजन पक्षकथन को निष्प्रभावी करने में सफल नहीं रहे हैं क्योंकि विजय गुप्ता (प्रतिरक्षा साक्षी-1) से स्वीकृत रूप से पुलिस थाने में बरामदगी किए जाने वाले दिन पूछताछ की गई थी । इसके प्रतिकूल राजीव चौहान (प्रतिरक्षा साक्षी-2) यह साबित करने में असफल रहा है कि सुसंगत समय के दौरान प्रश्नगत अपार्टमेंट के द्वितीय तल के संबंध में वह प्रतिरक्षा साक्षी-1 का किराएदार है । इन परिस्थितियों में न्यायालय को इस आधार पर कार्यवाही करनी होगी कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य द्वारा बरामदगी साबित की गई है जैसाकि अभियोजन पक्ष द्वारा दावा किया गया है ।

18. हमारे उपरोक्त निष्कर्ष से आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 के अधीन अभियुक्त-अपीलार्थी की दोषसिद्धि पूर्णतया न्यायोचित हो जाती है । तथापि, जहां तक दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और 460 का संबंध है कुछ अन्य सुसंगत तथ्य और परिस्थितियां भी हैं जो अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य द्वारा साबित की गई हैं और जिन पर हमें विचार करना चाहिए ताकि ऐसे निष्कर्ष निकाले जा सकें जिनका संबंध अभियुक्तों से प्रश्नगत हथियारों की बरामदगी से हो । बरामदगी दो वर्षों से अधिक समय के पश्चात् की गई है । यह घटना 6 जून, 2001 को घटित हुई थी और बरामदगी 12 अगस्त, 2003 को की गई है । अभियोजन पक्ष ने यह साबित नहीं किया है कि इस समयांतराल के दौरान इन हथियारों के साथ छेड़छाड़ नहीं की गई है और निरंतर रूप से अभियुक्त-अपीलार्थी बृजेश के कब्जे में रहे हैं । घटनास्थल से बरामद किए गए जिन्दा और चलाए गए कारतूस तथा शवपरीक्षण के दौरान शवों से निकाली गई गोलियां

न्यायालयिक प्रयोगशाला, रोहिणी को भेजी गई थीं । रिपोर्ट प्रदर्श पी. डब्ल्यू. - 21/ए है । उक्त रिपोर्ट पर वह तारीख 28 फरवरी, 2002 डली हुई है जो .380 कैलिबर वाले रिवाल्वर की बरामदगी के पूर्व की तारीख है । हथियारों की बरामदगी के पश्चात् उन्हें जिन्दा और खाली कारतूसों तथा घटनास्थल से बरामद की गई गोलियों के साथ केंद्रीय न्यायालयिक प्रयोगशाला चण्डीगढ़ भेज दिया गया और अभि. सा. 20 द्वारा तैयार की गई तारीख 28 नवंबर, 2003 की रिपोर्ट (प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 20/बी) संलग्न कर दी गई । तथापि, आश्चर्य की बात है, शवपरीक्षण के समय शव से निकाली गई गोलियां केंद्रीय न्यायालयिक प्रयोगशाला, चंडीगढ़ को नहीं भेजी गईं । यह बात उपनिरीक्षक संजीव शर्मा (अभि. सा. 25) के साक्ष्य से स्पष्ट है । हमें यह प्रतीत होता है कि इस संबंध में किसी भी स्पष्टीकरण के न दिए जाने से अभियोजन के पक्षकथन में गंभीर कमी आती है । इसके अतिरिक्त प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 20/बी में यह अभिलिखित किया गया है कि 4 में से 3 गोलियां (जो घटनास्थल से बरामद की गई थीं) बरामद किए गए हथियारों से चलाई गई थीं । उक्त गोलियों को सीरम परीक्षण के लिए नहीं भेजा गया था ताकि यह सिद्ध हो पाता कि बरामद किए गए हथियारों से चलाई गई गोलियां मृतक के शरीर में प्रविष्ट और निष्कासित हुई थीं या नहीं । ऐसी परिस्थिति में संदेह बना रहता है कि वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष सभी युक्तियुक्त संदेहों के परे अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप साबित करने में सफल हुआ है या नहीं । इसके अतिरिक्त, प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 20/बी से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक गोली (जिसे विज्ञानी द्वारा बी 2 से चिह्नांकित किया गया है) अपीलार्थी के कहने पर बरामद किए गए .380 कैलिबर वाले अग्न्यायुध से चलाई गई थी या नहीं न्यायालयिक प्रयोगशाला, रोहिणी, दिल्ली की प्रथम रिपोर्ट प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 21/ए से भी यह उपदर्शित होता है कि .380 कैलिबर वाली एक गोली पर कोई भी टकराने का चिह्न नहीं है अभियोजन पक्ष मामले के उपर्युक्त पहलू को स्पष्ट नहीं कर सका है, यद्यपि दो रिपोर्टों के आधार पर इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि .380 कैलिबर वाले एक अन्य अग्न्यायुध का प्रयोग किया गया है ।

19. उपरोक्त संदर्भ में **अब्दुलवहाब अब्दुलमजीद बलोच** बनाम **गुजरात राज्य** (उपरोक्त) वाले मामले में किया गया विनिश्चय का एक विशिष्ट महत्व है । यद्यपि इस निर्णय के पैरा 37 और 38 में अंतर्विष्ट मताभिव्यक्तियों को इस प्रकार समझना चाहिए कि ये मताभिव्यक्तियां

मामले के तथ्यों के संदर्भ में ही दी गई हैं जिन पर हमारा यह निष्कर्ष है कि उक्त मताभिव्यक्तियां वर्तमान मामले को पूरी तरह लागू होती हैं । परिणामतः उपर्युक्त दोनों पैरा निम्न रूप में उद्धृत किए जा रहे हैं :–

> "37. कैसी भी स्थिति हो, हमारा यह निष्कर्ष है कि मात्र यह तथ्य कि हथियार की बरामदगी की गई है और प्राक्षेपिकी विज्ञानी ने राय दी है कि मृतक के शव में पाई गई गोली अभिगृहीत किए गए हथियारों में से किसी एक हथियार से चलाई गई है, ऐसा एक मात्र आधार नहीं हो सकता है जिस पर दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि का निर्णय अभिलिखित किया जा सके । कोई भी प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है । अभियुक्त को जैसाकि इसमें इसके पूर्व देखा गया है, न केवल दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन आरोपित किया गया है अपितु उसे दंड संहिता की धारा 120-ख के साथ पठित धारा 302 के अधीन भी आरोपित किया गया है । मृतक की हत्या सभी अभियुक्तों द्वारा षड्यंत्र रचे जाने पर कारित की गई बताई गई है । यह आरोप साबित नहीं किया गया है ।
>
> 38. विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने यह राय दी है कि नौ मास के पश्चात् बरामदगी की गई है इसलिए यह हथियार बहुत से हाथों से होकर गुजरा है । अन्य ऐसे किसी भी साक्ष्य के अभाव में जो अभियुक्त को मृतक की हत्या का अपराध कारित किए जाने से संबद्ध करे, हमारी राय में यह अभिनिर्धारित करना संभव नहीं होगा कि ऐसे कमजोर साक्ष्य के आधार पर अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध कारित किए जाने के लिए दोषी ठहराया जाए ।"

20. यद्यपि उपरोक्त चर्चा से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध अपराध में फंसाने वाली अत्यंत ठोस परिस्थिति को साबित करने में सफल रहा है, फिर भी हमारा यह विचार नहीं है कि यह अभिनिर्धारित करना पूर्णतया उचित होगा कि उपर्युक्त साबित की गई परिस्थिति से मात्र यह निष्कर्ष निकलता है कि अभियुक्त बृजेश मृतक की हत्या के लिए जिम्मेदार है जो तारीख 6 जून, 2001 को हुई थी । हमने यह भी विचार किया है कि उच्च न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 तथा 460 के अधीन दोषसिद्ध किया है । ऐसी परिस्थिति

में जहां सह-अभियुक्त सतीश की मृत्यु विचारण के दौरान हो गई हो और सह-अभियुक्त मेद सिंह को उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया हो, तब वर्तमान अभियुक्त-अपीलार्थी की धारा 34 के अधीन अपराधिता गंभीर रूप से संदिग्ध हो जाती है । ऐसी अपराधिता को अभियुक्त-अपीलार्थी के वैयक्तिक प्रत्यक्ष कार्य के आधार पर विनिश्चित करना होगा जिसके संबंध में हमें अभिलेख पर कोई भी तर्कसम्मत और विश्वसनीय सामग्री दिखाई नहीं देती है ।

21. परिणामतः, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 के अधीन अभियुक्त-अपीलार्थी की दोषसिद्धि और अधिरोपित दंडादेश न्यायोचित है, अभियुक्त-अपीलार्थी दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और 460 के अधीन अपराध की बाबत हमारे संदेह का लाभ पाने के हकदार हैं । अतः, जहां तक दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और 460 का संबंध है, हम उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त करते हैं । आयुध अधिनियम की धारा 25 के अधीन अभियुक्त-अपीलार्थी की दोषसिद्धि और अधिरोपित दंडादेश कायम रखा जाता है । यदि अपीलार्थी वर्तमान रूप से अभिरक्षा में है और वह आयुध अधिनियम की धारा 25 के अधीन अधिरोपित दंडादेश की अवधि भुगत चुका है और वह अन्य किसी मामले में वांछित नहीं है तो उसे तत्काल उन्मुक्त किया जाए ।

उपर्युक्त निबंधनों में अपीलों का निपटारा किया जाता है ।

अपीलों का तदनुसार निपटारा किया गया ।

अस./अनू.

[2012] 4 उम. नि. प. 21

अविषेक गोयनका

बनाम

भारत संघ

3 अगस्त, 2012

न्यायमूर्ति ए. के. पटनायक और न्यायमूर्ति स्वतंत्र कुमार

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 32 – विधि का प्रवर्तन – विधि के प्रवर्तन से किसी को असुविधा कारित होना – विधि के प्रवर्तन से किसी को कोई असुविधा कारित होना कानून के किसी उपबंध को अप्रवर्तनीय बनाए जाने का आधार नहीं होता है, विधायी कृत्य को चुनौती बहुत ही सीमित आधारों पर दी जा सकती है ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 14 – लोक हित याचिका – लोक हित याचिका में पारित आदेश का सर्वबंधी रूप से प्रवर्तित होना – लोक हित याचिका में पारित आदेश को सर्वबंधी रूप से प्रवर्तित किए जाने और न्यायालय के लिए उस आदेश से प्रभावित किए जाने की अपेक्षा के कारण न्यायालय के लिए उस आदेश से प्रभावित होने वाले सभी संबद्ध व्यक्तियों आदि को सूचना जारी किया जाना आवश्यक नहीं है ।

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 109 [सपठित मोटर यान नियम, 1989 का नियम 100] – मोटर यान – विंड स्क्रीन और पार्श्व खिड़कियां – सुरक्षा शीशों पर चिपकाई जाने वाली रंगदार फिल्मों का प्रयोग – इन फिल्मों के प्रयोग को प्रतिषिद्ध किया जाना – इस संबंध में जारी निदेशों का अनुपालन – नियम 100 में प्रयुक्त "बनाए रखा जाना" शब्दों का अर्थान्वयन – "बनाए रखा जाना" शब्दों का अर्थान्वयन इस रूप में नहीं किया जा सकता जिससे कि नियमों का उल्लंघन करके मोटर यान के रूप में परिवर्तन किया जा सके ।

कानूनों का निर्वचन – सिद्धांत – निर्वाचनात्मक विधिशास्त्र का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि विधि का निर्वचन किसी एक परिस्थिति के आधार पर, विशिष्टतया जब वह परिस्थिति व्यक्तिपरक हो, नहीं किया जा सकता है और कुछ लोगों को असुविधा किसी कानून की विधिमान्यता का अवधारण किए जाने का आधार नहीं हो सकती है ।

इस मामले के तथ्यों के अनुसार 2011 की रिट याचिका (सिविल) सं. 265 में विभिन्न आवेदकों द्वारा भिन्न-भिन्न अंतरिम आवेदन उनमें इस न्यायालय के तारीख 27 अप्रैल, 2012 के निर्णय के संबंध में मुख्यतया निम्नलिखित आधारों पर बल देते हुए उपांतरण किए जाने में स्पष्टीकरण दिए जाने की ईप्सा की है : (1) यह कि आवेदक रिट याचिका में पक्षकार नहीं थे और इस न्यायालय के समक्ष की कार्यवाहियों से अवगत नहीं थे । अतः उनकी दलीलों पर न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया जा सका, अतः न्यायालय के निर्णय में उपांतरण किया जाना अपेक्षित है । (2) आवेदकों ने अभिलेख पर यह तथ्य सामग्री ओर रिपोर्टें प्रस्तुत की हैं कि फिल्मों का यहां तक कि काली फिल्मों का प्रयोग किया जाना वैज्ञानिक रूप से और विधि की दृष्टि से अनुज्ञेय है । (3) यह दलील दी गई है कि नियम 100(2) में "बनाए रखा जाना" पद का प्रयोग किया गया है जिससे यह विवक्षित होता है कि सुरक्षा शीशों को, जिनके अंतर्गत विंड स्क्रीन भी है, अपेक्षित वी. एल. टी. प्रतिशतता के साथ, यहां तक कि काली फिल्मों का प्रयोग करके, बनाए रखा जा सकता है । (4) अंत में यह दलील दी गई है कि निर्णय के पैरा 27 का किसी वी. एल. टी. प्रतिशतता की "काली फिल्मों का प्रयोग" शब्दों के स्थान पर "अननुज्ञेय वी. एल. टी. प्रतिशतता की काली फिल्मों का प्रयोग" शब्द रखकर उपांतरण किए जाने की आवश्यकता है । उच्चतम न्यायालय द्वारा उक्त अंतरिम आवेदनों का तदनुसार निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय के समक्ष जो आवेदन हैं उनमें, जैसे कि पहले अवेक्षा की जा चुकी है, कुछ आधारों को यह प्रदर्शित करने के लिए अपनाया गया है कि इस उपबंध का कुछ दूसरा निर्वचन भी संभव था । प्रथमतः, ये आधार विधि के आधार नहीं हैं । ये मुख्यतया असुविधा कारित करने के आधार हैं । विधि के प्रवर्तन से यदि कोई असुविधा कारित होती है तो वह कानून के किसी उपबंध को अप्रवर्तनीय बनाए जाने का कोई आधार नहीं होता है । विधायी कृत्य को चुनौती बहुत ही सीमित आधारों पर दी जा सकती है और निश्चित रूप से उन आधारों पर तो कतई नहीं जो वर्तमान आवेदनों में अपनाए गए हैं । वस्तुतः, विभिन्न आवेदकों की ओर से हाजिर होने वाले सभी विद्वान् काउंसेलों ने यह उचित रूप से स्वीकार किया है कि उनके द्वारा नियमों के नियम 100 को कोई चुनौती नहीं दी गई थी । जब एक बार इस स्थिति को स्वीकार कर लिया गया है तो न्यायालय को अपने तारीख 27 अप्रैल, 2012 के निर्णय में उक्त नियम का जो निर्वचन इस न्यायालय द्वारा किया गया है उसमें परिवर्तन करने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता है । वर्तमान निर्णय में ही नहीं बल्कि इस न्यायालय के पूर्ववर्ती

निर्णयों में भी, जिनको तारीख 27 अप्रैल, 2012 के निर्णय में विस्तारपूर्वक निर्दिष्ट किया गया था, टिंटिड शीशों पर फिल्मों का प्रयोग किए जाने को कभी भी अनुज्ञात नहीं किया गया था । न्यायालय द्वारा जिसकी अनुज्ञा दी गई थी वह थी अपेक्षित वी. एल. टी. वाले टिंटिड शीशे । इस प्रकार इस न्यायालय का मत निरंतर यही रहा है और उसमें कोई स्पष्टीकरण दिए जाने या उपांतरण किया जाना अपेक्षित नहीं है । (पैरा 12 और 14)

इस न्यायालय द्वारा तारीख 27 अप्रैल, 2012 का निर्णय एक लोक हित याचिका में पारित किया गया था और इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश सर्वबंधी रूप से प्रवर्तित होंगे । न्यायालय से न तो यह आशयित था और न ही विधि की यह अवेक्षा है कि न्यायालय द्वारा फिल्मों का विक्रय करने वाले प्रत्येक दुकानदार को, फिल्मों का वितरण करने वाले प्रत्येक वितरक को और फिल्मों का विनिर्माण करने वाले प्रत्येक विनिर्माणकर्ता को सूचना की जानी चाहिए थी । बहरहाल, प्रेस द्वारा इस मामले का व्यापक प्रसारण किया गया था । यदि आवेदक इस बारे में उस प्रक्रम पर कुछ कहना चाहते थे तो न्यायालय में आवेदन करने का काम उनका था । रिट याचिका तारीख 6 मई, 2011 को संस्थित की गई थी और उस मामले में निर्णय सभी संबद्ध पक्षकारों को, जिनके अंतर्गत संघ सरकार भी है, दलीलें सुनने के पश्चात् लगभग एक वर्ष पश्चात् तारीख 27 अप्रैल, 2012 को सुनाया गया था । अतः आवेदकों द्वारा जो यह आधार अपनाया गया है उसकी अवेक्षा उसे केवल नामंजूर किए जाने के लिए अपेक्षित है । (पैरा 13)

इस दलील में कोई सार और गुणागुण नहीं है कि नियम 100 में प्रयुक्त "बनाए रखा जाना" पद से यह विवक्षित होता है कि विनिर्माण किए जाने के पश्चात् कार पर क्रमशः अपेक्षित 70 प्रतिशत की वी. एल. टी. वाली और अपेक्षित 50 प्रतिशत वी. एल. टी. वाली फिल्मों का प्रयोग करके उन्हें बनाए रखा जा सकता है । निर्णय में, अधिनियम की स्कीम, उसके अधीन बनाए गए नियमों और 1992 के भारतीय मानक संख्यांक 2553, भाग 2 के साथ पठित नियम 100 पर विचार-विमर्श किए जाने के पश्चात् इस न्यायालय द्वारा यह मत अपनाया गया कि नियम में "विधि की अपेक्षाओं के अनुसार विनिर्मित" सुरक्षा शीशों के सिवाय ऐसी अन्य सामग्री का प्रयोग किए जाने को अनुज्ञात नहीं किया गया है । नियम 100 में सुस्पष्ट रूप से यह उल्लेख है कि "सुरक्षा शीशा" ऐसा शीशा है जो नियम 100(1) के स्पष्टीकरण के विनिर्देशों और अपेक्षाओं के अनुसार विनिर्मित किया जाए । केवल "सुरक्षा शीशों" का ही यान के विनिर्माणकर्ता द्वारा

प्रयोग किया जा सकता है । "बनाए रखा जाना" पद का अर्थान्वयन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि विधि के अनुसार जो विनिर्मित किया जाना अपेक्षित है वह उसी रूप में बनाए रखा जाना जारी रखा जाना चाहिए । "बनाए रखा जाना" पद का अर्थान्वयन विनिर्माण के रूप में ही किया जाना चाहिए और उसका ऐसी किसी रीति में निर्वचन नहीं किया जा सकता कि विनिर्दिष्ट नियमों का उल्लंघन करके मोटर यानों में बदलाव किए जाने की स्वयं नियम में ही विवक्षित रूप से अनुज्ञा प्रदान की गई है । सुरक्षा शीशे के मूलभूत रूप और अपेक्षाओं में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता । यदि आवेदकों द्वारा किए गए निर्वचन को स्वीकार कर लिया जाता है तो इससे नियम 100 को अधिनियमित करने का प्रयोजन ही निष्फल हो जाएगा और अधिनियम के अधीन किसी मोटर यान की यथा अपेक्षित सुरक्षा अपेक्षाएं भी निरर्थक हो जाएंगी । आवेदक के अनुसार, "हम *** सुरक्षा शीशों *** पर किसी भी वी. एल. टी. प्रतिशतता वाली काली फिल्मों या किसी अन्य सामग्री का प्रयोग किए जाने को प्रतिषिद्ध करते हैं" शब्दों के स्थान पर "हम *** सुरक्षा शीशों *** पर अननुज्ञेय वी. एल. टी. प्रतिशतता वाली काली फिल्मों या किसी अन्य सामग्री का प्रयोग किए जाने को प्रतिषिद्ध करते हैं" शब्द रखे जाने चाहिए । आवेदकों के इस सुझाव से निर्णय के मुख्य भाग का पूर्णतया उल्लंघन होगा । इस बात की पहले ही अवेक्षा की जा चुकी है कि यह फिल्मों की वी. एल. टी. प्रतिशतता की सीमा नहीं है जोकि इन नियमों के अधीन आक्षेपणीय है बल्कि काली फिल्मों या किसी अन्य सामग्री का प्रयोग किया जाना आक्षेपणीय है, जिनका सुरक्षा शीशों पर प्रयोग किया जाना अननुज्ञेय है । यदि विहित विनिर्देशों में उस सामग्री के सिवाय, जोकि नियम 100(1) के स्पष्टीकरण में विनिर्दिष्ट की गई है, किसी अन्य सामग्री का प्रयोग किया जाना अनुध्यात नहीं है तो विवक्षित तौर पर किसी ऐसी सामग्री का प्रयोग किए जाने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है । यदि न्यायालय द्वारा पैरा 27 की भाषा को बदल दिया जाता है तो इससे संपूर्ण निर्णय निष्प्रभावी और परस्पर विरोधी निबंधनों वाला बन कर रह जाएगा । जैसाकि पहले अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि सुरक्षा शीशों पर किसी भी सामग्री का, जिसके अंतर्गत फिल्में भी हैं, प्रयोग नहीं किया जा सकता, अतः इस दलील को भी स्पष्ट करने की कोई गुंजाइश नहीं है । नियम 100 के निबंधनों के अनुसार, कार के सुरक्षा शीशों पर कोई भी सामग्री, जिसके अंतर्गत किसी भी वी. एल. टी. प्रतिशतता वाली फिल्में भी हैं, नहीं लगाई जा सकती है और इस विधि को बिना किसी आपत्ति और विलंब के प्रवर्तित किया जाना

अपेक्षित है । अतः सभी पुलिस महानिदेशकों/आयुक्तों को एतद्द्वारा पुनः यह निदेश दिया जाता है कि वे इस न्यायालय के निर्णय का उसके सच्चे भाव और तात्पर्य से पूरा अनुपालन सुनिश्चित करें । वे किसी भी यान के सुरक्षा शीशों पर कोई भी सामग्री, जिसके अंतर्गत किसी भी वी. एल. टी. प्रतिशतता वाली फिल्म भी हैं, लगाने की अनुज्ञा नहीं देंगे । यह पुनः कथन किया जाता है कि पुलिस प्राधिकारी न केवल उल्लंघन करने वालों का चालान करेंगे बल्कि यह भी सुनिश्चित करेंगे कि (यान के) सुरक्षा शीशों पर चिपकाई गई काली या कोई अन्य फिल्मों या सामग्री को तुरंत हटा दिया जाए । यह भी स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय द्वारा संबंधित राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों के पुलिस महानिदेशकों/आयुक्तों के विरुद्ध कोई कार्यवाही आरंभ नहीं की जाएगी किंतु यह एक स्पष्ट चेतावनी जारी की जाती है कि इस न्यायालय के निर्णय का अनुपालन न किए जाने की दशा में और इस न्यायालय के ध्यान में यह तथ्य लाए जाने की दशा में, न्यायालय उक्त अधिकारियों को कोई और सूचना (नोटिस) जारी किए बिना न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 के उपबंधों के अधीन समुचित कार्रवाई करने के लिए बाध्य होगा । (पैरा 15, 17 और 24)

विधि का निर्वचन किसी एक परिस्थिति पर, विशिष्टतया जब वह परिस्थिति बहुत ही व्यक्तिपरक हो, आधारित नहीं होता है । न्यायालय से विधि का निर्वचन करते समय व्यष्टिक मामलों पर विचार किए जाने की प्रत्याशा नहीं की जाती है । निर्वाचनात्मक विधिशास्त्र का यह एक सुस्थापित सिद्धांत है कि कुछ लोगों को असुविधा किसी कानून की विधिमान्यता का अवधारण किए जाने का आधार नहीं हो सकती है । विधि का निर्वचन और उसे लागू उसकी सुस्पष्ट भाषा के आधार पर किया जाना चाहिए । (पैरा 21)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2004] ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 361 :
सौरभ चौधरी और अन्य बनाम **भारत संघ और अन्य** ; 21

[2000] (2000) 7 एस. सी. सी. 269 :
दिल्ली प्रशासन बनाम **गुरदीप सिंह उबान और अन्य** । 3

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की रिट याचिका (सिविल) सं. 265 में अंतरिम आवेदन सं. 4, 5, 6-8, 9-11,12,13,14 और 15.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से स्वयं

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री गौरव बनर्जी, अपर महासालिसिटर, सोली जे. सोराबजी, वरिष्ठ अधिवक्ता, राजेश कुमार, आर. के. श्रीवास्तव, टी. ए. खान, डी. एस. माहरा, एस. ए. हसीब, आर. के. राठौर, एस. एस. रावत, (सुश्री) सुनीता शर्मा, देवेश पांडा, नितीश गुप्ता, केदारनाथ त्रिपाठी, ए. एन. हकसर, रंजन कुमार पांडेय, विजय सोंधी, संजय कुमार, वासिम बेग, प्रमोद नायर, मोहित बख्शी, धीरज नायर, पी. पी. हेगड़े, (सुश्री) चारू अम्बवानी, प्रशांत कुमार, ए. पी. एंड जे. चेम्बर्स, मनु नायर, अनुज बेरी, तनुज भूषण, मैसर्स सुरेश ए. शर्राफ एंड कंपनी की ओर से, गोपाल जैन, (सुश्री) नंदिनी गोरे, देवमाल्या बनर्जी, अभिषेक राय, (सुश्री) महक भल्ला, आर. एन. करंजवाला, (श्रीमती) माणिक करंजवाला, एस. नय्यर मैसर्स करंजवाला एंड कंपनी की ओर से

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति स्वतंत्र कुमार ने दिया ।

न्या. कुमार – पक्षकार बनाए जाने और हस्तक्षेप किए जाने संबंधी ये आवेदन न्यायोचित अपवादों के अधीन रहते हुए मंजूर किए जाते हैं । अभिलेख पर दस्तावेज प्रस्तुत किए जाने संबंधी सभी आवेदन भी मंजूर किए जाते हैं ।

2. 2012 का अंतरिम आवेदन सं. 5, 2011 की रिट याचिका (सिविल) सं. 265 में के रंगदार फिल्मों (Tinted films) के व्यौहारियों और वितरकों द्वारा दो अंतरिम आवेदनों को अर्थात् पक्षकार बनाए जाने संबंधी आवेदन तथा इस न्यायालय के रजिस्ट्रार के तारीख 16 मई, 2012 के आदेश द्वारा

उपांतरण किए जाने संबंधी आवेदन फाइल किए जाने की ईप्सा करने संबंधी आवेदनों को, खारिज किए जाने के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 के आदेश 18, नियम 5 के अधीन फाइल किया गया है ।

3. विद्वान् रजिस्ट्रार द्वारा आक्षेपित आदेश द्वारा इस बात की अवेक्षा की गई कि पक्षकार बनाए जाने संबंधी आवेदन संधार्य नहीं था क्योंकि उस रिट याचिका का, जिसमें कि आवेदन फाइल किया गया था, पहले ही निपटारा किया जा चुका है । आवेदकों के अनुसार, उपांतरण किए जाने संबंधी आवेदन में याची द्वारा मामले के विभिन्न पहलुओं को छिपाया गया है और आदेश पारित किए जाने में न्यायालय को गुमराह किया गया है, अतः उक्त आदेश उपांतरित किए जाने योग्य है । इस दलील पर विचार करते हुए विद्वान् रजिस्ट्रार ने इस न्यायालय द्वारा **दिल्ली प्रशासन** बनाम **गुरदीप सिंह उबान और अन्य**[1] वाले मामले में किए गए निर्णय के प्रति निर्देश करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि वास्तव में वह आवेदन पुनर्विलोकन किए जाने संबंधी आवेदन था न कि उपांतरण किए जाने संबंधी आवेदन । अतः, उसने आवेदन को प्राप्त करने से इनकार कर दिया और उसे उच्चतम न्यायालय के नियमों के अनुसार उसे रजिस्टर कर दिया ।

4. हमें रजिस्ट्रार के आदेश में, जिसके विरुद्ध अपील की गई है, विधि की कोई त्रुटि प्रतीत नहीं होती है, बल्कि हम इस मुद्दे पर आगे विस्तृत चर्चा करना पूर्णतया अनावश्यक समझते हैं क्योंकि हम आवेदकों को आवेदन के गुणागुण के आधार पर न्यायालय को बताए जाने की अनुज्ञा प्रदान कर चुके हैं । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि इस न्यायालय के तारीख 27 अप्रैल, 2012 के निर्णय पर स्पष्टीकरण देने तथा उपांतरण किए जाने के संबंध में वर्तमान अपील के गुणागुण पर या अन्यथा टिप्पणी किए बिना कई अन्य आवेदन फाइल किए गए हैं, हम केवल इन आवेदकों द्वारा, अन्यों के साथ-साथ, उपांतरण या स्पष्टीकरण किए जाने के संबंध में फाइल किए गए आवेदन पर ही विचार करेंगे ।

5. अंतरिम आवेदन सं. 15 इंटरनेशनल विंडो फिल्म एसोसिएशन द्वारा फाइल किया गया है । अंतरिम आवेदन सं. 04 विपुल गंभीर की ओर से फाइल किया गया है ।

6. 2012 का एक बिना संख्यांक का अंतरिम आवेदन 3एम इंडिया लिमिटेड द्वारा फाइल किया गया है । एक दूसरा बिना संख्यांक का अंतरिम

---

[1] (2000) 7 एस. सी. सी. 269.

आवेदन रंगदार फिल्मों (टिंटिड फिल्म्स) के व्यौहारियों और वितरकों की ओर से फाइल किया गया है ।

7. 2012 का अंतरिम आवेदन सं. 3, जो याची की ओर से व्यक्तिगत रूप से हाजिर होने के लिए किया गया है, मंजूर किया जाता है ।

8. 2012 का अंतरिम आवेदन सं. 7 मैसर्स गरवारे पोलिएस्टर लिमिटेड की ओर से फाइल किया गया है । 2012 का अंतरिम आवेदन सं. 10 मैसर्स कार आउनर्स एंड कन्ज्यूमर्स एसोसिएशन द्वारा फाइल किया गया आवेदन है ।

9. एक अन्य बिना संख्यांक का अंतरिम आवेदन मैसर्स ग्रास इम्पेक्स प्राइवेट लिमिटेड की ओर से फाइल किया गया है । ये सभी आवेदन इस न्यायालय के तारीख 27 अप्रैल, 2012 के निर्णय के संबंध में विभिन्न आधारों पर स्पष्टीकरण दिए जाने और/या उसका उपांतरण किए जाने की ईप्सा करते हुए विभिन्न आवेदकों द्वारा फाइल किए गए हैं ।

10. याची द्वारा 2012 का अंतरिम आवेदन सं. 11, इन सभी आवेदनों में अपनाए गए आधारों के प्रति एक समान उत्तर के रूप में फाइल किया गया है और अभिलेख पर कतिपय दस्तावेज भी प्रस्तुत किए गए हैं । ऊपर नामित विभिन्न आवेदकों द्वारा इस न्यायालय के तारीख 27 अप्रैल, 2012 के निर्णय के संबंध में मुख्यतया निम्नलिखित आधारों पर बल देते हुए उपांतरण किए जाने/स्पष्टीकरण दिए जाने की ईप्सा की है :–

(1) यह कि आवेदक रिट याचिका में पक्षकार नहीं थे और इस न्यायालय के समक्ष की कार्यवाहियों से अवगत नहीं थे । अतः उनकी दलीलों पर न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया जा सका, अतः न्यायालय के निर्णय में उपांतरण किया जाना अपेक्षित है ।

(2) आवेदकों ने अभिलेख पर यह तथ्य सामग्री ओर रिपोर्टें प्रस्तुत की हैं कि फिल्मों का यहां तक कि काली फिल्मों का प्रयोग किया जाना वैज्ञानिक रूप से और विधि की दृष्टि से अनुज्ञेय है ।

(3) यह दलील दी गई है कि नियम 100(2) में 'बनाए रखा जाना' पद का प्रयोग किया गया है जिससे यह विवक्षित होता है कि सुरक्षा शीशों को, जिनके अंतर्गत विंड स्क्रीन भी है, अपेक्षित वी. एल. टी. प्रतिशतता के साथ, यहां तक कि काली फिल्मों का प्रयोग करके, बनाए रखा जा सकता है ।

(4) अंत में यह दलील दी गई है कि निर्णय के पैरा 27 का किसी वी. एल. टी. प्रतिशतता की 'काली फिल्मों का प्रयोग' शब्दों के स्थान पर 'अननुज्ञेय वी. एल. टी. प्रतिशतता की काली फिल्मों का प्रयोग' शब्द रखकर उपांतरण किए जाने की आवश्यकता है ।

11. आरंभ में ही हमें इस बात की अवश्य ही अवेक्षा करनी चाहिए कि 2011 की मुख्य रिट याचिका सं. 265 में और वर्तमान आवेदनों में भी मोटर यान नियम, 1989 (संक्षेप में 'नियम') के नियम 100 को चुनौती नहीं दी गई है । इस न्यायालय ने 27 अप्रैल, 2012 के अपने निर्णय द्वारा उक्त नियम का निर्वचन अन्य कारकों को पृथक् रखकर किया है । इस न्यायालय द्वारा जब एक बार विधि के किसी उपबंध का निर्वचन कर दिया जाता है तो इस प्रकार वह घोषित विधि भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के निबंधनों के अनुसार देश की विधि बन जाती है । इस प्रकार घोषित विधि सभी प्रकार आबद्धकर होती है और उसे उसके निबंधनों के अनुसार प्रवृत्त किया जाना चाहिए । नियम का निर्वचन इस अर्थ में किए जाने पर कि किसी यान में केवल अपेक्षित वी. एल. टी. के ही सुरक्षा शीशे (ग्लास) लगाए जा सकते हैं, उक्त नियम की भाषा में परिवर्तन करना न्यायालय का काम नहीं है । यह मुख्यतया एक विधायी कृत्य है और इस न्यायालय की इस कार्य में कोई भूमिका नहीं होती है ।

12. हमारे समक्ष जो आवेदन हैं उनमें, जैसे कि पहले अवेक्षा की जा चुकी है, कुछ आधारों को यह प्रदर्शित करने के लिए अपनाया गया है कि इस उपबंध का कुछ दूसरा निर्वचन भी संभव था । प्रथमतः, ये आधार विधि के आधार नहीं हैं । ये मुख्यतया असुविधा कारित करने के आधार हैं । विधि के प्रवर्तन से यदि कोई असुविधा कारित होती है तो वह कानून के किसी उपबंध को अप्रवर्तनीय बनाए जाने का कोई आधार नहीं होता है । विधायी कृत्य को चुनौती बहुत ही सीमित आधारों पर दी जा सकती है और निश्चित रूप से उन आधारों पर तो कतई नहीं जो वर्तमान आवेदनों में अपनाए गए हैं । वस्तुतः, विभिन्न आवेदकों की ओर से हाजिर होने वाले सभी विद्वान् काउंसेलों ने यह उचित रूप से स्वीकार किया है कि उनके द्वारा नियमों के नियम 100 को कोई चुनौती नहीं दी गई थी । जब एक बार इस स्थिति को स्वीकार कर लिया गया है तो हमें अपने तारीख 27 अप्रैल, 2012 के निर्णय में उक्त नियम का जो निर्वचन हमारे द्वारा किया गया है उसमें परिवर्तन करने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता है ।

13. फिर भी, जो दलीलें दी गई हैं हम उन पर विचार-विमर्श करेंगे ।

तारीख 27 अप्रैल, 2012 का निर्णय एक लोक हित याचिका में पारित किया गया था और इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश सर्वबंधी रूप से प्रवर्तित होंगे । न्यायालय से न तो यह आशयित था और न ही विधि की यह अवेक्षा है कि न्यायालय द्वारा फिल्मों का विक्रय करने वाले प्रत्येक दुकानदार को, फिल्मों का वितरण करने वाले प्रत्येक वितरक को और फिल्मों का विनिर्माण करने वाले प्रत्येक विनिर्माणकर्ता को सूचना की जानी चाहिए थी । बहरहाल प्रेस द्वारा इस मामले का व्यापक प्रसारण किया गया था । यदि आवेदक इस बारे में उस प्रक्रम पर कुछ कहना चाहते थे तो न्यायालय में आवेदन करने का काम उनका था । रिट याचिका तारीख 6 मई, 2011 को संस्थित की गई थी और उस मामले में निर्णय सभी संबद्ध पक्षकारों को, जिनके अंतर्गत संघ सरकार भी है, दलीलें सुनने के पश्चात् लगभग एक वर्ष पश्चात् तारीख 27 अप्रैल, 2012 को सुनाया गया था । अतः आवेदकों द्वारा जो यह आधार अपनाया गया है उसकी अवेक्षा उसे केवल नामंजूर किए जाने के लिए अपेक्षित है ।

14. वर्तमान निर्णय में ही नहीं बल्कि इस न्यायालय के पूर्ववर्ती निर्णयों में भी, जिनको तारीख 27 अप्रैल, 2012 के निर्णय में विस्तारपूर्वक निर्दिष्ट किया गया था, टिंटिड शीशों पर फिल्मों का प्रयोग किए जाने को कभी भी अनुज्ञात नहीं किया गया था । न्यायालय द्वारा जिसकी अनुज्ञा दी गई थी वह थी अपेक्षित वी. एल. टी. वाले टिंटिड शीशे । इस प्रकार इस न्यायालय का मत निरंतर यही रहा है और उसमें कोई स्पष्टीकरण दिए जाने या उपांतरण किया जाना अपेक्षित नहीं है ।

15. इसके साथ ही इस दलील में कोई सार और गुणागुण नहीं है कि नियम 100 में प्रयुक्त "बनाए रखा जाना" पद से यह विवक्षित होता है कि विनिर्माण किए जाने के पश्चात् कार पर क्रमशः अपेक्षित 70 प्रतिशत की वी. एल. टी. वाली और अपेक्षित 50 प्रतिशत वी. एल. टी. वाली फिल्मों का प्रयोग करके उन्हें बनाए रखा जा सकता है । निर्णय में, अधिनियम की स्कीम, उसके अधीन बनाए गए नियमों और 1992 के भारतीय मानक संख्यांक 2553, भाग 2 के साथ पठित नियम 100 पर विचार-विमर्श किए जाने के पश्चात् इस न्यायालय द्वारा यह मत अपनाया गया कि नियम में "विधि की अपेक्षाओं के अनुसार विनिर्मित" सुरक्षा शीशे के सिवाय ऐसी अन्य सामग्री का प्रयोग किए जाने को अनुज्ञात नहीं किया गया है । नियम 100 में सुस्पष्ट रूप से यह उल्लेख है कि 'सुरक्षा शीशा' ऐसा शीशा है जो नियम 100(1) के स्पष्टीकरण के विनिर्देशों और

अपेक्षाओं के अनुसार विनिर्मित किया जाए । केवल "सुरक्षा शीशों" का ही यान के विनिर्माणकर्ता द्वारा प्रयोग किया जा सकता है । स्क्रीन और पार्श्व खिड़कियों की अपेक्षित वी. एल. टी. किसी भी प्रकार की सामग्री को, जिसके अंतर्गत सुरक्षा शीशे पर चिपकाई गई फिल्में भी हैं, उपयोग में लाए बिना क्रमशः 70 प्रतिशत और 50 प्रतिशत होनी चाहिए । शीशे पर फिल्म का प्रयोग किए जाने से विधि के अनुसार सुरक्षा शीशे की संकल्पना और अपेक्षाएं ही बदल जाएंगी । "बनाए रखा जाना" पद का अर्थान्वयन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि विधि के अनुसार जो विनिर्मित किया जाना अपेक्षित है वह उसी रूप में बनाए रखा जाना जारी रखा जाना चाहिए । "बनाए रखा जाना" पद का अर्थान्वयन विनिर्माण के रूप में ही किया जाना चाहिए और उसका ऐसी किसी रीति में निर्वचन नहीं किया जा सकता कि विनिर्दिष्ट नियमों का उल्लंघन करके मोटर यानों में बदलाव किए जाने की स्वयं नियम में ही विवक्षित रूप से अनुज्ञा प्रदान की गई है । सुरक्षा शीशे के मूलभूत रूप और अपेक्षाओं में कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता । यदि आवेदकों द्वारा किए गए निर्वचन को स्वीकार कर लिया जाता है तो इससे नियम 100 को अधिनियमित करने का प्रयोजन ही निष्फल हो जाएगा और अधिनियम के अधीन किसी मोटर यान की यथा अपेक्षित सुरक्षा अपेक्षाएं भी निरर्थक हो जाएंगी । तारीख 27 अप्रैल, 2012 के निर्णय में यह दर्शित करने के लिए अनेक नियमों पर विचार किया गया है कि इन नियमों का अर्थान्वयन कड़ाईपूर्वक किया जाना चाहिए अन्यथा इसके अनर्थकारी परिणाम होंगे और ऐसी विधि अधिनियमित किए जाने का प्रयोजन ही निष्फल हो जाएगा ।

16. अब हम इस अंतिम दलील पर कि निर्णय के पैरा 27 में उपांतरण किए जाने की आवश्यकता है, जैसे कि ऊपर अवेक्षा की गई है, विचार करेंगे । निर्णय का पैरा 27 इस प्रकार है :–

> "27. ऊपर कथित कारणों से, हम संपूर्ण देश में सभी यानों पर सुरक्षा शीशों, विंड स्क्रीनों (अगली और पिछली) और पार्श्व शीशों पर किसी भी वी. एल. टी. प्रतिशतता वाली काली फिल्मों या किसी अन्य सामग्री का प्रयोग किए जाने को प्रतिषिद्ध करते हैं । संबंधित राज्यों/केंद्र के गृह सचिव, पुलिस महानिदेशक/आयुक्त इस निदेश का पालन किए जाने को सुनिश्चित करेंगे । इस निर्णय में अंतर्विष्ट निदेश 4 मई, 2012 से प्रभावी और प्रवर्तनीय होंगे ।"

17. आवेदक के अनुसार, 'हम *** सुरक्षा शीशों *** पर किसी भी

वी. एल. टी. प्रतिशतता वाली काली फिल्मों या किसी अन्य सामग्री का प्रयोग किए जाने को प्रतिषिद्ध करते हैं' शब्दों के स्थान पर 'हम *** सुरक्षा शीशों *** पर अननुज्ञेय वी. एल. टी. प्रतिशतता वाली काली फिल्मों या किसी अन्य सामग्री का प्रयोग किए जाने को प्रतिषिद्ध करते हैं' शब्द रखे जाने चाहिए । आवेदकों के इस सुझाव से निर्णय के मुख्य भाग का पूर्णतया उल्लंघन होगा । हम यह पहले ही अवेक्षा कर चुके हैं कि यह फिल्मों की वी. एल. टी. प्रतिशतता की सीमा नहीं है जोकि इन नियमों के अधीन आक्षेपणीय है बल्कि काली फिल्मों या किसी अन्य सामग्री का प्रयोग किया जाना आक्षेपणीय है, जिनका सुरक्षा शीशों पर प्रयोग किया जाना अननुज्ञेय है । यदि विहित विनिर्देशों में उस सामग्री के सिवाय, जो कि नियम 100(1) के स्पष्टीकरण में विनिर्दिष्ट की गई है, किसी अन्य सामग्री का प्रयोग किया जाना अनुध्यात नहीं है तो विवक्षित तौर पर किसी ऐसी सामग्री का प्रयोग किए जाने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है । यदि हम पैरा 27 की स्पष्ट भाषा को बदल देते हैं तो इससे संपूर्ण निर्णय निष्प्रभावी और परस्पर विरोधी निबंधनों वाला बन कर रह जाएगा । जैसाकि पहले अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि सुरक्षा शीशों पर किसी भी सामग्री का, जिसके अंतर्गत फिल्में भी है, प्रयोग नहीं किया जा सकता, अतः हमारे लिए इस दलील को भी स्पष्ट करने की कोई गुंजाइश नहीं है ।

18. विनिर्माताओं और वितरकों ने हमारे समक्ष यह दर्शित करने के लिए कि अधिकतर चिकित्सा का कैंसर परा-बैंगनी किरणों के अत्यधिक अनावरण के कारण कारित होता है कुछ तथ्य सामग्री प्रस्तुत की है, जिसमें कुछ फोटोचित्र और अमेरिकन कैंसर सोसाइटी की रिपोर्ट भी है । इन फोटोचित्रों से यह दर्शित करने का प्रयास किया गया है कि दिन के समय, जब सुरक्षा शीशों पर फिल्में चिपकी हुई भी हों, कार में बैठे व्यक्ति का चेहरा और शरीर बाहर से दिखाई पड़ता है । यह भी कथन किया गया है कि मोटर यानों पर धूप प्रच्छन्न और रंगदार फिल्मों का प्रयोग किए जाने संबंधी कोड आफ विर्जिनिया में कतिपय संशोधनों का प्रस्ताव किया गया था । अमेरिका से संबंधित तथ्य सामग्री का अवलंब लेते हुए यह कथन किया गया है कि अमेरिका में कैंसर के अत्यधिक मामले में हैं और वहां विधि रचयिताओं ने उपबंधों का संशोधन किया है या उपबंधों का संशोधन करने की प्रक्रिया में हैं । इससे स्वतः ही दर्शित होता है कि यह विधि में परिवर्तन का मामला है न कि अनुचित निर्वचन का मामला और यह कृत्य इस न्यायालय का नहीं है ।

19. इसके प्रत्युत्तर में, याची ने विभिन्न दस्तावेजों के साथ एक विस्तृत उत्तर फाइल किया है । इससे यह दर्शित होता है कि अनेक देशों में रंगदार शीशों पर रोक लगा दी गई है और यान की खिड़कियों में ऐसे शीशों का प्रयोग किया जाना अनुज्ञेय नहीं है । न्यू साउथ वेल्स, आस्ट्रेलिया, अफगानिस्तान और कुछ अन्य देशों के संबंध में अभिलेख पर उपाबंध ए1 और उपाबंध ए3 प्रस्तुत किए गए हैं । याची ने भारत में कैंसर के संबंध में संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे विकसित देशों के साथ भारत की एक विकासशील देश के रूप में विनिर्दिष्ट रूप से तुलना करते हुए भावी परिप्रेक्ष्य में एक संपूर्ण अनुसंधान लेख अभिलेखबद्ध किया है और उसका यह निष्कर्ष है कि भारत में कैंसर के मामले इस तथ्य के होते हुए बहुत ही कम हैं कि भारत के अधिकांश लोग अपने जीविकोपार्जन के लिए अपने दैनिक कार्य, कारबार और अन्य क्रियाकलापों के लिए लगभग दिन भर परा-बैंगनी किरणों के प्रभाव में रहते हैं ।

20. हमारी राय में, तथ्यात्मक सामग्री पर आधारित दलीलों से उद्भूत इस संविवाद में इस न्यायालय के समक्ष किसी बात का अवधारण किया जाना अपेक्षित नहीं है । जैसे कि पहले अवेक्षा की जा चुकी है, न्यायालय ने नियम 100 का उसी रूप में निर्वचन किया है जैसे वह कानून की पुस्तक में विद्यमान है । प्रत्येक देश का पर्यावरण, वातावरण और भौगोलिक स्थितियां भिन्न-भिन्न होती हैं । सूर्य की किरणों के माध्यम से या अन्यथा किसी रोग के संबंध में प्रतिधारिता का स्तर और उस रोग के होने की संभावना विषयपरक मामले हैं जिनकी कि न्यायिक रूप से यथार्थतः परीक्षा नहीं की जा सकती है न्यायालयों से न तो ऐसा अवधारण किए जाने का जोखिम लेना अपेक्षित है न ही उनके लिए ऐसा किया जाना उचित है ।

21. इस बात का कोई विवाद नहीं किया जा सकता है और यह सामान्य जानकारी का विषय है कि ऐसे अनेक निवारक उपाय हैं जिनको कि वह व्यक्ति अपना सकता है, जो परा-बैंगनी किरणों से अपना बचाव करना चाहता है । उस व्यक्ति के लिए, जो अभिकथित रूप से सूर्य किरणों को सह नहीं सकता, क्रीमों, सन-शेड और अन्य सुख-सुविधाओं का प्रयोग करना फायदाप्रद हो सकता है । इसके लिए मोटर यान के किसी स्थायी स्वरूप में परिवर्तन करना आवश्यक नहीं होगा और इससे कानून के उपबंधों का भी कतई उल्लंघन नहीं होगा । यह उल्लेख करना ही पर्याप्त है कि जिस प्रकाशित लेख का हमारे समक्ष अवलंब लिया गया है वह भ्रांत धारणा पर आधारित है और बहकाने वाला है । विधि का निर्वचन किसी

एक परिस्थिति पर, विशिष्टतया जब वह परिस्थिति बहुत ही व्यक्तिपरक हो, आधारित नहीं होता है । न्यायालय से विधि का निर्वचन करते समय व्यष्टिक मामलों पर विचार किए जाने की प्रत्याशा नहीं की जाती है । निर्वाचनात्मक विधिशास्त्र का यह एक सुस्थापित सिद्धांत है कि कुछ लोगों को असुविधा किसी कानून की विधिमान्यता का अवधारण किए जाने का आधार नहीं हो सकती है । विधि का निर्वचन और उसे लागू उसकी सुस्पष्ट भाषा के आधार पर किया जाना चाहिए [**सौरभ चौधरी और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाला मामला देखिए] ।

22. अंतरिम आवेदन सं. 4 में ऐसा ही अनुरोध किया गया है । हम व्यष्टिक मामलों पर विचार-विमर्श नहीं कर रहे और व्यक्तिपरक असुविधा विधि का भिन्न रूप में निर्वचन किए जाने का आधार नहीं हो सकती है ।

23. याची ने कुछ आवेग में यह दलील दी है कि इस न्यायालय के स्पष्ट निदेश के बावजूद अपील प्राधिकरण विधि का प्रवर्तन करने में पूर्णतया असफल रहा है । उसके मतानुसार, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली में और उत्तर प्रदेश के आस-पास के जिलों में जैसे कि गाजियाबाद, नोएडा और दिल्ली के आसपास स्थित हरियाणा के शहरों में अधिकांश यानों द्वारा विधि का बिना किसी दंड के उल्लंघन किया जा रहा है । सभी सुरक्षा शीशों पर या तो जेट ब्लेक फिल्में लगी हुई हैं या हल्के रंग वाली फिल्में लगी हुई हैं । उसने दो दृष्टांतों के प्रति निर्देश किया है, एक गाजियाबाद में बलात्कार का मामला और दूसरा व्यपहरण का मामला जिसमें कि अपराध के किए जाने में प्रयुक्त कारों के शीशों पर काली फिल्म लगी हुई थी । उसने यह भी कथन किया है कि प्रेस की रिपोर्टों के अनुसार टक्कर मारकर वाहन लेकर भाग जाने से संबंधित मामलों में भी ऐसे यान अंतर्वलित होते हैं जिनके सुरक्षा शीशों पर काली फिल्म लगी हुई होती हैं ।

24. हम, वस्तुतः काली फिल्मों के प्रयोग से समाज को होने वाले सुरक्षा खतरे पर बल नहीं दे रहे हैं बल्कि ऐसा किए जाने से विधि का स्पष्ट उल्लंघन होता है । नियम 100 के निबंधनों के अनुसार, कार के सुरक्षा शीशों पर कोई भी सामग्री, जिसके अतर्गत किसी भी वी. एल. टी. प्रतिशतता वाली फिल्में भी हैं, नहीं लगाई जा सकती हैं और इस विधि को बिना किसी आपत्ति और विलंब के प्रवर्तित किया जाना अपेक्षित है । अतः हम निम्नलिखित आदेश पारित करते हैं :–

---

[1] ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 361.

(1) स्पष्टीकरण और उपांतरण के संबंध में फाइल किए गए सभी आवेदनों को खारिज किया जाता है, तथापि, खर्च के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

(2) सभी पुलिस महानिदेशकों/आयुक्तों को एतद्द्वारा पुनः यह निदेश दिया जाता है कि वे इस न्यायालय के निर्णय का उसके सच्चे भाव और तात्पर्य से पूरा अनुपालन सुनिश्चित करें । वे किसी भी यान के सुरक्षा शीशों पर कोई भी सामग्री, जिसके अंतर्गत किसी भी वी. एल. टी. प्रतिशतता वाली फिल्म भी हैं, लगाने की अनुज्ञा नहीं देंगे ।

(3) हम यह पुनः कथन करते हैं कि पुलिस प्राधिकारी न केवल उल्लंघन करने वालों का चालान करेंगे बल्कि यह भी सुनिश्चित करेंगे कि (यान के) सुरक्षा शीशों पर चिपकाई गई काली या कोई अन्य फिल्मों या सामग्री को तुरंत हटा दिया जाए ।

(4) हम इस प्रक्रम पर यह स्पष्ट करते हैं कि हम संबंधित राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों के पुलिस महानिदेशकों/आयुक्तों के विरुद्ध कोई कार्यवाही आरंभ नहीं करेंगे किंतु यह एक स्पष्ट चेतावनी जारी करते हैं कि इस न्यायालय के निर्णय का अनुपालन न किए जाने की दशा में और इस न्यायालय के ध्यान में यह तथ्य लाए जाने की दशा में, न्यायालय उक्त अधिकारियों को कोई और सूचना (नोटिस) जारी किए बिना न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 के उपबंधों के अधीन समुचित कार्रवाई करने के लिए बाध्य होगा ।

हमें इस बात की पूरी आशा है कि पुलिस काडर के उच्च उत्तरदायी अधिकारी जैसे पुलिस महानिदेशक/आयुक्त ऐसी स्थिति पैदा होने देने की अनुज्ञा नहीं देंगे और अब इस निर्णय का बिना किसी व्यतिक्रम, आपत्ति और विलंब के अनुपालन किए जाने को सुनिश्चित करेंगे ।

(5) इस निर्णय की प्रतियां रजिस्ट्री द्वारा सभी संबद्ध व्यक्तियों को, जिनके अंतर्गत संबंधित राज्यों के मुख्य सचिव भी हैं, तुरंत भेजी जाएं ।

रिट याचिका का तदनुसार निपटारा किया गया ।

ज.

[2012] 4 उम. नि. प. 36

भारतीय विधिज्ञ परिषद्

बनाम

भारत संघ

3 अगस्त, 2012

न्यायमूर्ति आर. एम. लोढा और न्यायमूर्ति अनिल आर. दवे

विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (1987 का 39) – धारा 22ग(8) और धारा 22क(ख) [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 14] – स्थायी लोक अदालत – लोक उपयोगिता से संबंधित विवादों का गुणागुण के आधार पर न्यायनिर्णयन करने की शक्ति – संसद् द्वारा ऐसे विवादों के लिए आनुकल्पिक संस्थागत तंत्र की स्थापना किया जाना – संसद् द्वारा लोक उपयोगिता से संबंधित विवादों का गुणागुण के आधार पर न्यायनिर्णयन किए जाने के लिए प्रभावी आनुकल्पिक संस्थागत तंत्र की स्थापना कर सकती है और इसे सांविधानिक स्कीम के प्रतिकूल या विधि के नियम के विरुद्ध नहीं कहा जा सकता है, अतः धारा 22ग(8) के अधीन लोक उपयोगिता सेवा के उपयोगकर्ता की किसी सिविल न्यायालय या विशेष न्यायालय के माध्यम से राहत पाने की शक्ति को छीना नहीं गया है ।

विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (1987 का 39) – धारा 22घ [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 50] – न्यायनिर्णयन प्राधिकारी – स्थायी लोक अदालत का सृजन कानून के अंतर्गत होना चाहिए – न्यायनिर्णयन की प्रक्रिया – सिविल प्रक्रिया संहिता तथा साक्ष्य अधिनियम के उपबंधों के लागू होने का अपवर्जन – इस बाबत सिविल प्रक्रिया संहिता तथा साक्ष्य अधिनियम के उपबंधों के लागू किए जाने का अपवर्जन किए जाने से अवधारणा की गुणता कम नहीं होती है क्योंकि इस प्रकार स्थापित स्थायी लोक अदालतों द्वारा भी विवाद का विनिश्चय निष्पक्ष रूप से और ऋजुतापूर्वक किया जाना होता है और उसमें नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुसरण भी किया जाना होता है ।

विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (1987 का 39) – धारा 22घ [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 50, अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 21] – स्थायी लोक अदालत – संरचना – तीन सदस्यीय संरचना में दो

सदस्यों का न्यायिकेतर सदस्य होना – तीन सदस्यीय संरचना में दो गैर-न्यायिक सदस्यों के रखे जाने का आशय यह है कि सुलह और न्यायनिर्णयन संबंधी कार्यवाहियों में विधिक तकनीकियां सर्वोपरि न हो जाएं, अतः इससे ऋजुता और न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन नहीं होता है ।

विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (1987 का 39) – धारा 22ङ – स्थायी लोक अदालत – स्थायी लोक अदालत का अधिनिर्णय – स्थायी लोक अदालत के अधिनिर्णय के विरुद्ध अपील किए जाने के अधिकार का उपबंध न होना – अपील किए जाने का अधिकार कोई अंतर्निहित अधिकार नहीं है इसका सृजन कानून द्वारा किया जाता है, अतः यदि किसी विशिष्ट कानून में अपील के अधिकार का उपबंध नहीं किया जाता है तो उससे कानून स्वतः ही असांविधानिक नहीं बन जाता है ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 141 – पूर्व न्याय – याचिका को आरंभतः खारिज किया जाना – किसी याचिका को आरंभ में ही खारिज कर दिए जाने के बाद उन्हीं समान मुद्दों को उठाते हुए रिट याचिका फाइल किए जाने पर कोई रोक नहीं लगाई जा सकती है, तथापि, यह न्यायालय उन रिट याचिकाओं को, जिनमें उन्हीं मुद्दों को पुनः उठाया गया हो और पूर्व में जिनकी सुनवाई की जा चुकी है और उन्हें खारिज किया जा चुका है, सामान्यतया ग्रहण नहीं करता है ।

इस मामले के तथ्यों के अनुसार भारतीय विधिज्ञ परिषद् ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन इस रिट याचिका के माध्यम से विधिक सेवा अधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 22क, धारा 22ख, धारा 22ग, धारा 22घ और धारा 22ङ की, जो विधिक सेवा प्राधिकरण (संशोधन) अधिनियम, 2002 द्वारा अंतःस्थापित की गई हैं, शक्तिमत्ता को चुनौती दी है । 2002 के संशोधन अधिनियम द्वारा, 1987 के अधिनियम की धारा 22 में "लोक अदालत" शब्दों के स्थान पर "लोक अदालत या स्थायी लोक अदालत" शब्द प्रतिस्थापित किए गए थे तथा एक नया अध्याय 6क, जिसमें धारा 22क से धारा 22ङ तक समाविष्ट हैं, अंतःस्थापित किया गया था । 1987 के अधिनियम की धारा 23 में "लोक अदालत के सदस्य" शब्दों के स्थान पर "लोक अदालत के सदस्य या स्थायी लोक अदालतों का गठन करने वाले व्यक्ति" शब्द रखे गए थे । चुनौती मुख्यतया इस आधार पर दी गई है कि धारा 22क, धारा 22ख, धारा 22ग, धारा 22घ और धारा 22ङ अपने आपमें मनमानी प्रकृति की हैं ; इनसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होता है और ये विधि के नियम के प्रतिकूल हैं क्योंकि ये सभी

ऋजु, निष्पक्ष और समान न्याय से वंचित करने वाली हैं । हमने याची के विद्वान् काउंसेल तथा भारत संघ की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल की दलीलों को सुना । मौखिक बहस पूरी होने के पश्चात् याची के विद्वान् काउंसेल ने लिखित दलीलें भी फाइल कीं । इस मामले में लिखित दलीलों में आक्षेपित उपबंधों के मनमानेपन की शक्तिमत्ता का विस्तारपूर्वक उल्लेख करते हुए यह निवेदन किया गया कि धारा 22ग(2) के साथ पठित धारा 22ग(1) में यह उपबंधित है कि विवाद के किसी भी पक्षकार द्वारा (विवाद को निपटारे के लिए किसी न्यायालय के समक्ष लाने के पूर्व) एकपक्षीय रूप से आवेदन करके उस विवाद को स्थायी लोक अदालत के समक्ष उठाया जा सकता है । स्थायी लोक अदालतों को पक्षकारों के बीच कोई समझौता न होने की दशा में धारा 22ग(8) के अधीन गुणागुण के आधार पर विवाद का विनिश्चय करने के लिए सशक्त बनाया गया है । स्थायी लोक अदालत के लिए गुणागुण पर मामले का विनिश्चय करते समय, सिविल प्रक्रिया संहिता अथवा साक्ष्य अधिनियम के उपबंधों का पालन करना आवश्यक नहीं है । धारा 22ग(8) में न्यायालयों तथा उपभोक्ता पीठों को सेवाओं में, जैसे कि परिवहन, डाक और तार, विद्युत प्रकाश और वल प्रदाय, लोक सफाई या स्वच्छता , अस्पताल में सेवा आदि में कमियों की परीक्षा करने से निवारित किया गया है और उन उपबंधों को जिन्हें चुनौती दी गई है, मनमाना और असंगत बना दिया गया है । याची की ओर से यह निवेदन किया गया है कि स्थायी लोक अदालत द्वारा गुणागुण के आधार पर किए गए अधिनिर्णय को अंतिम और आबद्धकर बनाया गया है और उसे धारा 22ङ(1) और (4) के अधीन किसी पीठ या न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जा सकता है । किसी भी न्यायालय में उस अधिनिर्णय के विरुद्ध अपील किए जाने का कोई अधिकार प्रदान नहीं किया गया है । चूंकि लोक उपयोगिता की सभी सेवाएं मूलभूत रूप से संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उपबंधित जीवन के मूल अधिकार से संबंधित हैं, अतः स्थायी लोक अदालत द्वारा गुणागुण के आधार पर किए गए किसी भी प्रतिकूल विनिश्चय से किसी व्यथित नागरिक के मूल अधिकार का अतिक्रमण होता है और अपील करने के किसी अधिकार के अभाव में ये उपबंध असांविधानिक हो जाते हैं क्योंकि यह ऋजु प्रक्रिया के मूलभूत सिद्धांतों के विरुद्ध है । यह भी दलील दी गई कि यद्यपि स्थायी लोक अदालत सिविल न्यायालय, उपभोक्ता न्यायालय या मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण के ही भागरूप हैं, तथापि, इनका न्याय तंत्र और परिदान प्रणाली उतनी प्रभावी नहीं है जितनी की उपर्युक्त पीठों की है क्योंकि स्थायी लोक अदालतों के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता और साक्ष्य अधिनियम में अनुध्यात प्रक्रिया का पालन

करना आवश्यक नहीं होता है । इसके अलावा, चूंकि स्थायी लोक अदालत द्वारा गुणागुण के आधार पर दिया गया अधिनिर्णय बहुमत द्वारा दिया जाना होता है और चूकि स्थायी लोक अदालत में एक न्यायिक सदस्य और दो प्रशासनिक सदस्य होते हैं, अतः इसमें प्रशासनिक सदस्यों का प्रभुत्व होता है जो कि संविधान में परिलक्षित न्याय के मूलभूत सिद्धांतों के विरुद्ध है । दूसरी ओर भारत संघ की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि आक्षेपित उपबंध अनुच्छेद 39क के उद्देश्यों के अनुरूप है और न्याय सुनिश्चित करने के लिए एक सस्ता, त्वरित और दक्ष तंत्र का उपबंध करने के लिए आशयित है । उच्चतम न्यायालय द्वारा रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – संसद् निश्चित रूप से, प्रभावी आनुकल्पिक संस्थागत तंत्र का गठन या ऐसी व्यवस्था कर सकती है जो न्यायालयों के माध्यम से विवादों का न्यायनिर्णयन किए जाने के सामान्य तंत्र की अपेक्षा अधिक प्रभावी हो । ऐसे संस्थागत तंत्रों या व्यवस्थाओं को कल्पना की किसी उड़ान से सांविधानिक स्कीम के प्रतिकूल या विधि के नियम के विरुद्ध नहीं कहा जा सकता है । स्थायी लोक अदालतों की स्थापना और उन्हें धारा 22क(ख) में यथा परिभाषित एक या अधिक लोक उपयोगी सेवाओं की बाबत, विवाद के किसी भी पक्षकार द्वारा उस विवाद को किसी न्यायालय के समक्ष लाए जाने से पूर्व, एक विनिर्दिष्ट धनीय सीमा तक की अधिकारिता प्रदान किया जाना विधि के नियम के प्रति कोई अभिशाप नहीं है । यदि संसद् द्वारा सामान्य सिविल न्यायालयों के बजाय, न्यायनिर्णयन करने की शक्ति सहित अन्य संस्थागत तंत्र स्थापित किए जाते हैं या अन्य व्यवस्थाएं की जाती हैं तो इस न्यायालय के मतानुसार, ऐसे संस्थागत तंत्रों और व्यवस्थाओं को मनमानेपन या असंगतता के आधार पर गलत नहीं ठहराया जा सकता है । यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि लोक उपयोगी सेवाओं से संबंधित विवाद स्थायी लोक अदालतों को केवल उस दशा में सौंपे गए हैं जब सुलह और समझौते की कार्यवाही विफल हो जाती है । जिस बात पर बल दिया गया है वह स्थायी लोक अदालतों के माध्यम से लोक उपयोगी सेवाओं से संबंधित विवादों की बाबत समझौते के संबंध में है । इसी कारण से धारा 22ग की उपधारा (1) में स्पष्ट रूप से यह कथन किया गया है कि किसी विवाद का कोई पक्षकार, विवाद को किसी न्यायालय के समक्ष लाने से पूर्व, विवाद के निपटारे के लिए स्थायी लोक अदालत को आवेदन कर सकेगा । इस प्रकार लोक उपयोगी सेवाओं के मामलों में पक्षकारों के बीच विवाद का निपटारा मुख्य विषय-वस्तु है । किंतु जहां स्थायी लोक अदालत के उद्यम और प्रयास के बावजूद

पक्षकारों के बीच समझौता नहीं हो पाता है और पक्षकारों से अपने विवाद का अवधारण और न्यायनिर्णयन कराए जाने की अपेक्षा की जाती है, वहां लोक उपयोगी सेवाओं से संबंधित विवादों के न्यायनिर्णयन में विलंब से बचने के लिए संसद् ने हस्तक्षेप करके न्यायनिर्णयन की शक्ति स्थायी लोक अदालतों को प्रदत्त की है । क्या स्थायी लोक अदालतों को पक्षकारों के बीच के लोक उपयोगी सेवा से संबंधित उन विवादों का, यदि वे किसी अपराध से संबंधित नहीं हैं, न्यायनिर्णयन करने के लिए एक विनिर्दिष्ट धनीय सीमा तक जैसाकि धारा 22ग(8) में उपबंधित है, प्रदत्त की गई शक्ति को असंवैधानिक और असंगत कहा जा सकता है । लोक उपयोगी सेवा, जैसे कि वायु, सड़क या जल मार्ग द्वारा यात्रियों या माल के वहन के लिए यातायात सेवा, या डाक, तार या टेलीफोन सेवा, या विद्युत प्रकाश या जल का प्रदाय, या सार्वजनिक मल वहन या स्वच्छता प्रणाली या अस्पताल या औषधालय में सेवा या बीमा सेवा आदि, से संबंधित विवादों का निपटारा किए जाने की इसी स्कीम के अंतर्गत इनका निपटारा शीघ्रतापूर्वक किया जाना चाहिए । सेवा प्रदाय और व्यथित पक्षकार के बीच उपर्युक्त इन मामलों के बाबात विलंबित विवाद से विवाद के पक्षकारों में से किसी को भी अपूरणीय नुकसान हो सकता है । आजकल, मामलों की संख्या में निरंतर वृद्धि को देखते हुए न्यायालय मामलों के इस भारी प्रवाह को और उनके समक्ष आने वाले मामलों को संभालने में समर्थ नहीं हैं । लोक उपयोगी सेवा से संबंधित विवादों पर, उनका आरंभ में ही सुलह और समझौते से समाधान किए जाने को सकेंद्रित करके, शीघ्र ध्यान दिए जाने की और यदि किसी कारणवश ये प्रयास असफल रहते हैं तो उन विवादों का न्यायनिर्णयन किसी समुचित तंत्र द्वारा यथासंभव शीघ्र किए जाने की जरूरत होती है । देश की विशाल जनसंख्या और विभिन्न सेवा प्रदाताओं द्वारा उपलब्ध कराई जा रही अत्यधिक लोक उपयोगी सेवाओं को देखते हुए इन सेवाओं के संबंध में सेवा प्रदाताओं और आम व्यक्ति के बीच ये विवाद बहुशः होते रहते हैं । न्यायालयों की धीमी गति की प्रक्रियाएं लोक उपयोगी सेवा से संबंधित विवादों के न्यायनिर्णयन में सहायक नहीं हैं । इस विधि को लाकर लोक उपयोगी सेवा से संबंधित मुकदमेबाजी को आरंभ में ही उस विवाद के पक्षकारों को सर्वप्रथम अपने विवाद स्थायी लोक अदालत के प्रयासों के माध्यम से निपटाने का अवसर प्रदान करके समाप्त करने की और यदि यह प्रयास असफल रहता है तो पक्षकारों के बीच के उस विवाद का न्यायनिर्णयन स्थायी लोक अदालत के विनिश्चय के माध्यम से किए जाने की ईप्सा की गई है । अध्याय 6क में उपबंधित तंत्र लोक उपयोगी सेवा से संबंधित किसी विवाद के पक्षकार को, उस विवाद को किसी न्यायालय के

समक्ष लाने से पूर्व, विवाद के निपटारे के लिए स्थायी लोक अदालत के समक्ष आवेदन करने के लिए समर्थ बनाया गया है । (पैरा 20, 18, 19 और 22)

यह सुस्थापित विधि है कि पक्षकारों के बीच विवादों का न्यायनिर्णयन करने के लिए सशक्त किसी प्राधिकारी के लिए, जो कि अधिकरण के रूप में कार्य करता है, यह आवश्यक नहीं है कि उसके पास न्यायालय की सभी शक्तियां हों । जो अनिवार्य है वह यह है कि वह कानून द्वारा सृजित किया गया होना चाहिए और उसे अपने समक्ष पक्षकारों के बीच के विवाद का, उन्हें ऐसा युक्तियुक्त अवसर प्रदान करते हुए जो ऋजु भूमिका और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों से सुसंगत हो, न्यायनिर्णयन करना चाहिए । यह किसी व्यक्ति का कोई सांविधानिक अधिकार नहीं है कि वह विवाद का न्यायनिर्णयन केवल किसी न्यायालय के माध्यम से ही कराए । अध्याय 6क, लोक उपयोगी सेवा से संबंधित विवादों का, मामले को न्यायालय के समक्ष लाने से पूर्व, निपटारा करने के लिए स्थायी लोक अदालतों की स्थापना किए जाने के माध्यम से एक संस्थागत तंत्र का उपबंध करने के लिए और किसी समझौते पर पहुंचने में असफल रहने की दशा में उस विवाद का, यदि वह किसी अपराध से संबंधित नहीं है, न्यायनिर्णयन करने के लिए स्थायी लोक अदालत को सशक्त बनाने के लिए अधिनियमित किया गया है । लोक उपयोगी सेवा से संबंधित विवादों के संबंध में अध्याय 6क में का आनुकल्पिक संस्थागत तंत्र न्याय सुनिश्चित करने की दृष्टि से वहनीय, त्वरित और दक्ष तंत्र का उपबंध करने के लिए आशयित है । सिविल प्रक्रिया संहिता और भारतीय साक्ष्य अधिनियम के कानूनी उपबंधों को लागू न बनाकर विवादों के अवधारण की गुणता से कोई समझौता नहीं किया गया है क्योंकि स्थायी लोक अदालत को निष्पक्ष रूप से कार्य करना होता है, विवाद का विनिश्चय ऋजुतापूर्वक करना होता है और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुसरण करना होता है । स्थायी लोक अदालत का सुलह संबंधी कार्यवाहियां करते समय या जब सुलह की कार्यवाहियां विफल हो जाती हैं तब विवाद का विनिश्चय गुणागुण के आधार पर करने में न्याय और साम्या के बोध से मार्गदर्शन होता रहता है । (पैरा 22 और 29)

जहां तक स्थायी लोक अदालत की संरचना का संबंध है, धारा 22ख(2) में यह उपबंधित है कि स्थायी लोक अदालत इन व्यक्तियों से मिलकर बनेगी अर्थात् एक ऐसा व्यक्ति, जो जिला न्यायाधीश या अपर जिला न्यायाधीश है या रहा है या जिला न्यायाधीश की पंक्ति से उच्चतर पंक्ति का न्यायिक पद धारण किए हुए है और दो अन्य ऐसे व्यक्ति, जिनके पास लोक

उपयोगी सेवा का पर्याप्त अनुभव है और जो, यथास्थिति, केंद्रीय प्राधिकरण या राज्य प्राधिकरण की सिफारिश पर, यथास्थिति, केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा नामनिर्दिष्ट किए जाएं । इन तीन सदस्यों में से, न्यायिक अधिकारी स्थायी लोक अदालत का अध्यक्ष होता है । केंद्रीय प्राधिकरण में भारत का मुख्य न्यायमूर्ति, उच्चतम न्यायालय का कोई सेवारत या सेवानिवृत्त न्यायाधीश, जिसे राष्ट्रपति द्वारा भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से, नामनिर्दिष्ट किया जाता है और केंद्रीय सरकार द्वारा, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से, नामनिर्दिष्ट किए जाने वाले अन्य सदस्य होते हैं । इसी प्रकार, राज्य प्राधिकरण में उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति, उच्च न्यायालय का सेवारत या सेवानिवृत्त न्यायाधीश, जिसे राज्यपाल द्वारा, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श करके, नामनिर्दिष्ट किया जाता है और उतने अन्य सदस्य होते हैं जो राज्य सरकार द्वारा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श करके, नामनिर्दिष्ट किए जाएं । इस प्रकार यह विदित है कि किसी स्थायी लोक अदालत के न्यायिक अधिकारी से भिन्न दो सदस्यों की नियुक्ति, यथास्थिति, केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा, यथास्थिति, केवल केंद्रीय प्राधिकरण या राज्य प्राधिकरण की सिफारिश पर ही की जा सकती है । अतः यह कहना भ्रामक है कि स्थायी लोक अदालतों के सदस्यों की नियुक्ति किए जाने में न्यायपालिका को बाहर रखा गया है । ऐसा कतई प्रतीत नहीं होता कि स्थायी लोक अदालतों की स्वतंत्रता से समझौता किया गया है क्योंकि प्रत्येक स्थायी लोक अदालत में गैर-न्यायिक सदस्यों की नियुक्ति भी उच्च शक्ति प्राप्त केंद्रीय प्राधिकरण की, जिसके अध्यक्ष कोई और नहीं बल्कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति अथवा उच्चतम न्यायालय के सेवारत या सेवानिवृत्त न्यायाधीश होते हैं, सिफारिश पर जहां कि नामनिर्देशन केंद्रीय सरकार द्वारा किया जाता है या राज्य प्राधिकरण की, जिसके अध्यक्ष और कोई नहीं बल्कि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति या उच्च न्यायालय के सेवारत या सोवनिवृत्त न्यायाधीश होते हैं, सिफारिश पर, जहां कि नामनिर्देशन राज्य सरकार द्वारा किया जाता है, की जानी होती है । अधिकरणों में न्यायिक और गैर-न्यायिक सदस्य का होना कोई असामान्य बात नहीं है । स्थायी लोक अदालत जैसे किसी अधिकरण में गैर-न्यायिक सदस्यों के रखे जाने का जो संपूर्ण आशय है वह यह सुनिश्चित करने का है कि सुलह अथवा न्यायनिर्णयन संबंधी कार्यवाहियों में विधिक तकनीकियां सर्वोपरि न हो जाएं । यह सही है कि 1987 के अधिनियम के अधीन स्थायी लोक अदालत द्वारा दिया गया अधिनिर्णय स्थायी लोक अदालत का गठन करने वाले व्यक्तियों के

बहुमत द्वारा किया गया होना चाहिए । किसी मामले विशेष में, हो सकता है कि दो गैर-न्यायिक सदस्य न्यायिक सदस्य से सहमत न हों किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि बहुमत के उस विनिश्चय में न्यायिक औचित्य या बोध का अभाव है । इस तथ्य से कि धारा 22ख के अधीन स्थापित स्थायी लोक अदालत में एक न्यायिक अधिकारी और दो अन्य व्यक्ति, जिनके पास लोक उपयोगी सेवा का पर्याप्त अनुभव हो, होते हैं, विधि के नियम के प्रति कोई असंगतता दर्शित नहीं होती है और न ही ऐसी संरचना से ऋजुता और न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन नहीं होता है और न ही यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 21 के प्रतिकूल है । (पैरा 30, 31 और 32)

अपील किए जाने का कोई अंतर्निहित अधिकार नहीं है । अपील सदैव ही कानून का एक सृजन है और यदि किसी विशिष्ट कानून में व्यथित पक्षकार को अपील का कोई अधिकार प्रदान नहीं किया जाता है तो उससे वह कानून स्वतः ही असांविधानिक नहीं हो सकता । 1987 के अधिनियम के अधीन धारा 22ङ(1) के अंतर्गत स्थायी लोक अदालत द्वारा गुणागुण के आधार पर या किसी समझौते के निबंधनों के अनुसार दिए गए प्रत्येक अधिनिर्णय को अंतिम और उसके सभी पक्षकारों पर तथा उनके अधीन दावा करने वाले व्यक्तियों पर आबद्धकर बनाया गया है । स्थायी लोक अदालत द्वारा पारित अधिनिर्णय के विरुद्ध किसी अपील का उपबंध नहीं किया गया है किंतु इससे आक्षेपित उपबंध असांविधानिक नहीं हो जाते हैं । लोक उपयोगी सेवा से संबंधित एक विनिर्दिष्ट धनीय सीमा तक के विवाद की प्रकृति को और धारा 22ग(1) से धारा 22ग(8) में उपबंधित प्रक्रिया द्वारा उस विवाद के समाधान को ध्यान में रखते हुए, सर्वप्रथम तो महत्वपूर्ण यह है कि उस विवाद को शीघ्रातिशीघ्र समाप्त किया जाए और अनावश्यक रूप से उसे लंबा न खींचा जाए । दूसरे और अति महत्वपूर्ण रूप से यह कि यदि विवाद के किसी पक्षकार को स्थायी लोक आदालत के अधिनिर्णय के विरुद्ध कोई शिकायत है तो वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और अनुच्छेद 227 के अधीन उच्च न्यायालय की पर्यवेक्षणीय और असाधारण अधिकारिता के अधीन उसके समक्ष सदैव आवेदन कर सकता है । अतः इस दलील में कोई सार नहीं है कि उस स्थिति में स्थायी लोक अदालत द्वारा गुणागुण के आधार पर अधिनिर्णय पारित कर दिए जाने के पश्चात् मुकदमेबाजी का भार वापस उच्च न्यायालयों पर आ जाएगा । (पैरा 33)

हम याची के विद्वान् काउंसेल की दलील से सहमत नहीं हैं । यद्यपि एस. एन. पांडेय वाले मामले में की रिट याचिका का निपटारा आरंभतः ही

कर दिया गया था और आदेश संक्षेप में है, किंतु न्यायालय द्वारा उसका निपटारा गुणागुण के आधार पर किया गया था । इस न्यायालय के एक पूर्ववर्ती मामले अर्थात् बी. प्रभाकर राव और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया था कि किसी रिट याचिका को आरंभतः ही खारिज कर दिए जाने के बाद में रिट याचिकाएं फाइल किए जाने पर संभवतः कोई रोक नहीं लगाई जा सकती किंतु साथ ही यह मत भी व्यक्त किया गया था कि आरंभतः ही किसी रिट याचिका को खारिज किए जाने में न्यायालय के विवेकाधिकार का निषेध किया जा सकता है । स्थिति को स्पष्ट करते हुए यह मत भी व्यक्त किया गया था कि सामान्यतया यह न्यायालय उन रिट याचिकाओं को, जिनमें पुनः उन्हीं मुद्दों को पुनः उठाया जाता है और जहां किसी पूर्ववर्ती अवसर पर उस मामले की सुनवाई की जा चुकी है और उसे खारिज किया जा चुका है, ग्रहण करने और उनकी सुनवाई करने से इनकार कर देता है । ऐसा नहीं है कि इस न्यायालय को ऐसे मामलों को ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं है बल्कि वह अपने विवेकाधिकार का प्रयोग इसके विरुद्ध करता है । यह न्यायालय उक्त मामले में अपनाए गए मत से पूर्णतया सहमत है । यह उसी विषयवस्तु से संबंधित याचिकाओं को, जहां कि उस मामले पर पूर्ववर्ती अवसर पर सुनवाई की जा चुकी है और उसे खारिज किया जा चुका हो, ग्रहण करने या उनकी सुनवाई करने की लोक नीति और न्यायिक विवेकाधिकार के सुपरिभाषित सिद्धांतों के विरुद्ध है । (पैरा 36)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 2 एस. सी. सी. 506 = ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 1160 : **नेशनल सीड्स कारपोरेशन लिमिटेड** बनाम **एम. मधुसूदन रेड्डी और एक अन्य** ;	7
[2011]	(2011) 10 एस. सी. सी. 316 : **ट्रांस मेडिटेर्रानीन एयरवेज** बनाम **यूनिवर्सल एक्पोर्ट्स और एक अन्य** ;	7
[2010]	(2010) 11 एस. सी. सी. 1 : **भारत संघ** बनाम **आर. गांधी, अध्यक्ष, मद्रास बार एसोसिएशन** ;	26

[2007] (2007) 4 एस. सी. सी. 579 =
ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 1819 :
किशोर लाल बनाम **अध्यक्ष, कर्मचारी राज्य बीमा निगम** ; 7

[2004] (2004) 1 एस. सी. सी. 305 =
ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 448 :
सचिव, थिरुमुरुगन को-आपरेटिव एग्रिकल्चरल क्रेडिट सोसाइटी बनाम **एम. ललिता (मृत), विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से और अन्य** ; 7

[2004] (2004) 1 एस. सी. सी. 121 =
ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1005 :
भारत संघ और अन्य बनाम **जयपाल सिंह** ; 9

[2002] 2002 की रिट याचिका (सिविल) सं. 543, जिसका विनिश्चय तारीख 28.10.2002 को किया गया :
एस. एन. पांडेय बनाम **भारत संघ** ; 8, 9, 34, 36, 37

[2000] (2000) 5 एस. सी. सी. 294 =
ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 2008 :
स्काईपैक कूरियर्स लिमिटेड बनाम **टाटा केमिकल्स लिमिटेड** ; 7

[1999] (1999) 6 एस. सी. सी. 172 =
ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 2378 :
पंजाब राज्य बनाम **बलदेव सिंह** ; 9

[1996] (1996) 6 एस. सी. सी. 385 :
फेयर एयर इंजीनियर्स प्राइवेट लिमिटेड और एक अन्य बनाम **एन. के. मोदी** ; 7

[1992] (1992) सप्ली. 2 एस. सी. सी. 651 :
किहोतो होलोहन बनाम **जशिलु और अन्य** ; 25

[1989] [1989] 3 उम. नि. प. 421 =
(1989) 1 एस. सी. सी. 101 =
ए. आई. आर. 1989 एस. सी. 38 :
दिल्ली नगर निगम बनाम **गुरनाम कौर** ; 9

[1986] [1986] 1 उम. नि. प. 380 = (1985) सप्ली. एस. सी. सी. 432 = ए. आई. आर. 1986 एस. सी. 210 : **बी. प्रभाकर राव और अन्य** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य** ; 9

[1976] (1976) 1 एस. सी. सी. 496 = ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 2238 : **प्रीमियर आटोमोबाइल्स लिमिटेड** बनाम **कमलेकर शांताराम वाडके, मुंबई और अन्य** ; 7

[1967] ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 1480 : **बी. शमाराव** बनाम **पांडिचेरी संघ राज्यक्षेत्र** ; 9

[1965] [1965] 2 एस. सी. आर. 366 : **एसोसिएटेड सीमेंट कंपनीज़ लिमिटेड** बनाम **पी. एन. शर्मा और एक अन्य** ; 24

[1962] [1962] 2 एस. सी. आर. 339 : **मैसर्स हरिनगर शुगर मिल्स लिमिटेड** बनाम **श्याम सुंदर झुनझुनवाला और अन्य** । 23

आरंभिक (सिविल) अधिकारिता : 2002 की रिट याचिका (सिविल) सं. 666.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री मनोज गोयल, शिवदीप राय, वजीह शफीक, गोपाल वर्मा और शशांक कथूरिया (बृजभूषण की ओर से)

प्रत्यर्थी की ओर से श्री टी. एस. दोआबिया, वरिष्ठ अधिवक्ता, सुश्री रश्मि मल्होत्रा और (सुश्री) सुनीता शर्मा (बी. वी. बलराम दास की ओर से)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. एम. लोढा ने दिया ।

न्या. लोढा – भारतीय विधिज्ञ परिषद् ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन इस रिट याचिका के माध्यम से विधिक सेवा अधिकरण अधिनियम, 1987 (संक्षेप में 1987 का अधिनियम) की धारा

22क, धारा 22ख, धारा 22ग, धारा 22घ और धारा 22ङ की, जो विधिक सेवा प्राधिकरण (संशोधन) अधिनियम, 2002 (संक्षेप में "2002 का संशोधन अधिनियम") द्वारा अंतःस्थापित की गई हैं, शक्तिमत्ता को चुनौती दी है ।

2. 2002 के संशोधन अधिनियम द्वारा, 1987 के अधिनियम की धारा 22 में "लोक अदालत" शब्दों के स्थान पर "लोक अदालत या स्थायी लोक अदालत" शब्द प्रतिस्थापित किए गए थे तथा एक नया अध्याय 6क, जिसका शीर्षक "मुकदमापूर्व सूलह और समझौता" है और जिसमें धारा 22क से धारा 22ङ तक समाविष्ट हैं, अंतःस्थापित किया गया था । 1987 के अधिनियम की धारा 23 में "लोक अदालत के सदस्य" शब्दों के स्थान पर "लोक अदालत के सदस्य या स्थायी लोक अदालतों का गठन करने वाले व्यक्ति" शब्द रखे गए थे ।

3. चुनौती मुख्यतया इस आधार पर दी गई है कि धारा 22क, धारा 22ख, धारा 22ग, धारा 22घ और धारा 22ङ अपने आप में मनमानी प्रकृति की हैं ; इनसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होता है और ये विधि के नियम के प्रतिकूल हैं क्योंकि ये सभी ऋजु, निष्पक्ष और समान न्याय से वंचित करने वाली हैं ।

4. हमने याची के विद्वान् काउंसेल श्री मनोज गोयल तथा भारत संघ की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री टी. एस. दोआबिया की दलीलों को सुना । मौखिक बहस पूरी होने के पश्चात् याची के विद्वान् काउंसेल श्री मनोज गोयल ने लिखित दलीलें भी फाइल कीं । लिखित दलीलों में आक्षेपित उपबंधों के मनमानेपन की शक्तिमत्ता का विस्तारपूर्वक उल्लेख करते हुए यह निवेदन किया गया कि धारा 22ग(2) के साथ पठित धारा 22ग(1) में यह उपबंधित है कि विवाद के किसी भी पक्षकार द्वारा (विवाद को निपटारे के लिए किसी न्यायालय के समक्ष लाने के पूर्व) एकपक्षीय रूप से आवेदन करके उस विवाद को स्थायी लोक अदालत के समक्ष उठाया जा सकता है । इस प्रकार लोक उपयोगिता सेवा प्रदाता किसी व्यथित उपभोक्ता को अग्रक्रयाधिकार द्वारा उपभोक्ता पीठ के समक्ष जाने में या अपनी शिकायत को दूर करने के लिए अन्य न्यायिक प्रक्रिया का फायदा उठाने में और अपने अधिकारों के प्रवर्तन में रिष्टि कारित कर सकता है । स्थायी लोक अदालतों को पक्षकारों के बीच कोई समझौता न होने की दशा में धारा 22ग(8) के अधीन गुणागुण के आधार पर विवाद का विनिश्चय करने के लिए सशक्त बनाया गया है । स्थायी लोक अदालत के लिए

गुणागुण पर मामले का विनिश्चय करते समय, सिविल प्रक्रिया संहिता अथवा साक्ष्य अधिनियम के उपबंधों का पालन करना आवश्यक नहीं है । धारा 22ग(8) में न्यायालयों तथा उपभोक्ता पीठों को सेवाओं में, जैसे कि परिवहन, डाक और तार, विद्युत प्रकाश और वल प्रदाय, लोक सफाई या स्वच्छता, अस्पताल में सेवा आदि में कमियों की परीक्षा करने से निवारित किया गया है और उन उपबंधों को जिन्हें चुनौती दी गई है, मनमाना और असंगत बना दिया गया है ।

5. याची की ओर से यह निवेदन किया गया है कि स्थायी लोक अदालत द्वारा गुणागुण के आधार पर किए गए अधिनिर्णय को अंतिम और आबद्धकर बनाया गया है और उसे धारा 22ङ(1) और (4) के अधीन किसी पीठ या न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जा सकता है । किसी भी न्यायालय में उस अधिनिर्णय के विरुद्ध अपील किए जाने का कोई अधिकार प्रदान नहीं किया गया है । चूंकि लोक उपयोगिता की सभी सेवाएं मूलभूत रूप से संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उपबंधित जीवन के मूल अधिकार से संबंधित हैं, अतः स्थायी लोक अदालत द्वारा गुणागुण के आधार पर किए गए किसी भी प्रतिकूल विनिश्चय से किसी व्यथित नागरिक के मूल अधिकार का अतिक्रमण होता है और अपील करने के किसी अधिकार के अभाव में ये उपबंध असांविधानिक हो जाते हैं क्योंकि यह ऋजु प्रक्रिया के मूलभूत सिद्धांतों के विरुद्ध है । यह कहना पूर्णतया भ्रामक है कि व्यथित व्यक्ति स्थायी लोक अदालत द्वारा गुणागुण के आधार पर किए गए अधिनिर्णयों के विरुद्ध संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालय में आवेदन कर सकता है, अतः अपील के अधिकार के न होने से कोई अंतर नहीं पड़ता है, अनुच्छेद 226/227 के अधीन रिट अधिकारिता बहुत ही सीमित है और वह अपीली अधिकारिता का कोई अनुकल्प नहीं है ।

6. यह दलील दी गई कि यद्यपि स्थायी लोक अदालत सिविल न्यायालय, उपभोक्ता न्यायालय या मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण के ही भागरूप हैं, तथापि, इनका न्याय तंत्र और परिदान प्रणाली उतनी प्रभावी नहीं है जितनी की उपर्युक्त पीठों की है क्योंकि स्थायी लोक अदालतों के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता और साक्ष्य अधिनियम में अनुध्यात प्रक्रिया का पालन करना आवश्यक नहीं होता है । इसके अलावा, चूंकि स्थायी लोक अदालत द्वारा गुणागुण के आधार पर दिया गया अधिनिर्णय बहुमत द्वारा दिया जाना होता है और चूंकि स्थायी लोक अदालत में एक न्यायिक सदस्य और दो प्रशासनिक सदस्य होते हैं, अतः इसमें प्रशासनिक सदस्यों का प्रभुत्व होता है जो कि संविधान में परिलक्षित न्याय के मूलभूत सिद्धांतों

के विरुद्ध है ।

7. याची की ओर से यह दृढ़तापूर्वक निवेदन किया गया है कि स्थायी लोक अदालत को प्रदत्त अधिकारिता द्वारा धारा 22क(ख) में निर्दिष्ट सेवाओं से संबंधित विशेषज्ञ कानूनों के अधीन सृजित पीठों की अधिकारिता को छीना नहीं जा सकता है । इस बारे में, इन तीन विशेषज्ञ कानूनों में, अर्थात् उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986, भारतीय दूर-संचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 1997 और बीमा अधिनियम, 1938 में अंतर्विष्ट उपबंधों को निर्दिष्ट किया गया है । लिखित दलीलों में इस न्यायालय द्वारा **प्रीमियर आटोमोबाइल्स लिमिटेड** बनाम **कमलेकर शांताराम वाडके, मुंबई और अन्य**[1] वाले मामले में किए गए विनिश्चय का अवलंब लेते हुए यह निवेदन किया गया कि उपभोक्ता पीठें तथा भारतीय दूर संचार विनियामक प्राधिकरण अधिनियम, 1997 और बीमा अधिनियम, 1938 के अधीन विशेषज्ञ न्यायालयों/अधिकरणों को, जहां तक तीन कानूनों के अधीन अधिकारों के प्रवर्तन का संबंध है, अनन्य अधिकारिता प्राप्त है और उनकी अधिकारिता स्थायी लोक अदालत द्वारा छीनी नहीं जा सकती है । विशिष्टतया, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों के संबंध में यह निवेदन किया गया है कि इस विधि के अधीन उपलब्ध प्रतिकरात्मक उपचार किसी अन्य विधि के अतिरिक्त हैं न कि उनके अल्पीकरण में और चूंकि स्थायी लोक अदालतों को प्रतिकरात्मक अनुतोष मंजूर करने की अधिकारिता नहीं है, अतः उपभोक्ता पीठों की अधिकारिता यथावत् बनी हुई है । इस संबंध में इस न्यायालय द्वारा **फेयर एयर इंजीनियर्स प्राइवेट लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **एन. के. मोदी**[2], **स्काईपैक कूरियर्स लिमिटेड** बनाम **टाटा केमिकल्स लिमिटेड**[3], **ट्रांस मेडिटेर्रानीन एयरवेज** बनाम **यूनिवर्सल एक्पोर्ट्स और एक अन्य**[4] वाले मामलों में किए गए विनिश्चयों का अवलंब लिया गया है । **नेशनल सीड्स कारपोरेशन लिमिटेड** बनाम **एम. मधुसूदन रेड्डी और एक अन्य**[5] वाले मामले का भी इस दलील के समर्थन में उल्लेख किया गया कि उपभोक्ता संरक्षण संबंधी विधियां हमारे देश की विधिवत अंतरराष्ट्रीय बाध्यताओं के अनुसरण में अधिनियमित की गई थीं, अतः स्थायी लोक अदालतें उपभोक्ता न्यायालयों

---

[1] (1976) 1 एस. सी. सी. 496 = ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 2238.

[2] (1996) 6 एस. सी. सी. 385.

[3] (2000) 5 एस. सी. सी. 294 = ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 2008.

[4] (2011) 10 एस. सी. सी. 316.

[5] (2012) 2 एस. सी. सी. 506 = ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 1160.

की अधिकारिता को छीन नहीं सकतीं । यह भी दलील दी गई कि उपभोक्ता न्यायालयों की अधिकरिता, यहां तक कि उन मामलों में भी, जहां कुछ विवादों का न्यायनिर्णयन दो भिन्न-भिन्न पीठों द्वारा किया जा सकता है, तब तक संरक्षित हैं जब तक कि उसे अभिव्यक्त रूप से अपवर्जित न कर दिया जाए । इस संबंध में इस न्यायालय के दो मामलों के अर्थात् **सचिव, थिरुमुरुगन को-आपरेटिव एग्रिकल्चरल क्रेडिट सोसाइटी** बनाम **एम. ललिता (मृत), विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से और अन्य**[1] तथा **किशोर लाल** बनाम **अध्यक्ष, कर्मचारी राज्य बीमा निगम**[2] वाले मामले के विनिश्चयों का अवलंब लिया गया है ।

8. दूसरी ओर, भारत संघ के विद्वान् काउंसेल श्री टी. एस. दोआबिया ने यह निवेदन किया कि रिट याचिका में उठाए गए विवाद्यकों पर इस न्यायालय द्वारा **एस. एन. पांडेय** बनाम **भारत संघ**[3] वाले मामले में पहले ही विनिश्चय किया जा चुका है और रिट याचिका केवल इसी आधार पर खारिज किए जाने योग्य है । श्री दोआबिया ने यह निवेदन किया कि आक्षेपित उपबंध अनुच्छेद 39क के उद्देश्यों के अनुरूप है और न्याय सुनिश्चित करने के लिए एक सस्ता, त्वरित और दक्ष तंत्र का उपबंध करने के लिए आशयित है ।

9. जहां तक इस न्यायालय द्वारा **एस. एन. पांडेय** (उपर्युक्त) वाले मामले के विनिश्चय का संबंध है, याची के विद्वान् काउंसेल ने अपने प्रत्युत्तर में यह निवेदन किया कि पूर्ववर्ती रिट याचिका को आरंभ में खारिज किया गया था और यह कोई आबद्धकर नज़ीर नहीं है । इस संबंध में इस न्यायालय द्वारा **बी. प्रभाकर राव और अन्य** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य**[4], **भारत संघ और अन्य** बनाम **जयपाल सिंह**[5] वाले मामलों में किए गए विनिश्चयों का अवलंब लिया गया था । याची के विद्वान् काउंसेल ने यह भी निवेदन किया कि पूर्ववर्ती रिट याचिका में, संविधान के अनुच्छेद 141 के अधीन कोई घोषित विधि नहीं थी, क्योंकि वर्तमान रिट याचिका में

---

[1] (2004) 1 एस. सी. सी. 305 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 448.

[2] (2007) 4 एस. सी. सी. 579 = ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 1819.

[3] 2002 की रिट याचिका (सिविल) सं. 543, जिसका विनिश्चय तारीख 28.10.2002 को किया गया ।

[4] [1986] 1 उम. नि. प. 380 = (1985) सप्ली. एस. सी. सी. 432 = ए. आई. आर. 1986 एस. सी. 210.

[5] (2004) 1 एस. सी. सी. 121 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1005.

जो प्रश्न उठाए गए हैं उन पर न तो कोई बहस हुई थी और न ही उन पर कोई विचार किया गया था । इस संबंध में, विद्वान् काउंसेल द्वारा इस न्यायालय द्वारा **बी. शमाराव** बनाम **पांडिचेरी संघ राज्यक्षेत्र**[1], **दिल्ली नगर निगम** बनाम **गुरनाम कौर**[2] तथा **पंजाब राज्य** बनाम **बलदेव सिंह**[3] वाले मामलों में किए गए विनिश्चयों को निर्दिष्ट किया गया है ।

10. संविधान में अनुच्छेद 39क, संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा 3 जनवरी, 1977 से अंतःस्थापित किया गया था । इसके अधीन राज्य पर यह सुनिश्चित करना आदिष्ट है कि विधि तंत्र इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और वह विशिष्टतया यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करे । सभी के लिए समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता अनुच्छेद 39क के प्रमुख उद्देश्य हैं । इन्हीं उद्देश्यों के अनुसरण में संसद् द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए समाज के दुर्बल वर्गों को निःशुल्क और सक्षम विधिक सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए विधिक सेवा प्राधिकरणों का गठन करने हेतु और यह सुनिश्चित करने के लिए कि विधिक तंत्र इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो, लोक अदालतों का आयोजन करने हेतु 1987 का अधिनियम अधिनियमित किया गया था । उन उद्देश्यों और कारणों का कथन, जिनके परिणामस्वरूप 1987 का अधिनियम अधिनियमित किया गया, इस प्रकार है :–

> "संविधान का अनुच्छेद 39क यह उपबंध करता है कि राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक तंत्र इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और वह, विशिष्टतया, यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से

---

[1] ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 1480.

[2] [1989] 3 उम. नि. प. 421 = (1989) 1 एस. सी. सी. 101 = ए. आई. आर. 1989 एस. सी. 38.

[3] (1999) 6 एस. सी. सी. 172 = ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 2378.

निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा ।

2. निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करने के उद्देश्य से सरकार ने 26 सितंबर, 1980 के संकल्प द्वारा न्यायमूर्ति श्री पी. एन. भगवती (जैसे कि वह तब थे) की अध्यक्षता में, सब राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों में समान आधार पर विधिक सहायता कार्यक्रमों को मानीटर और कार्यान्वित करने के लिए "विधिक सहायता स्कीम कार्यान्वयन समिति" (सिलास) की नियुक्ति की थी । सिलास ने समस्त भारत में लागू किए जाने के लिए एक विधिक सहायता कार्यक्रम संबंधी एक आदर्श स्कीम तैयार की जिसके अंतर्गत राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों में अनेक विधिक सहायता और सलाह बोर्ड स्थापित किए गए । सिलास का वित्तपोषण पूर्ण रूप से केंद्रीय सरकार के अनुदान से होता है । तदनुसार सरकार का सरोकार विधिक सहायता कार्यक्रम से है क्योंकि यह एक संवैधानिक आदेश का क्रियान्वयन है । किंतु, सिलास के कार्यकरण का पुनरीक्षण करने पर कतिपय कमियां सामने आई हैं । अतः, यह महसूस किया गया है कि राष्ट्रीय, राज्य और जिला स्तरों पर कानूनी विधिक सहायता प्राधिकरणों का गठन किया जाना वांछनीय होगा जिससे कि विधिक सहायता कार्यक्रमों को प्रभावी रूप से मानीटर करने का उपबंध किया जा सके । यह विधि ऐसे प्राधिकरणों के गठन के लिए और उन प्राधिकरणों को केंद्रीय सरकार और राज्य सरकारों के अनुदानों से वित्तपोषित करने के लिए उपबंध करती है । राष्ट्रीय समिति और राज्य समितियों को विधिक सहायता स्कीमों के प्रभावी रूप से क्रियान्वयन का पर्यवेक्षण करने के लिए शक्ति भी प्रदान की गई है ।

3. कुछ समय से देश में विभिन्न स्थानों पर बड़ी संख्या में मामलों का तत्परतापूर्वक और कम खर्च पर, पक्षकारों के बीच माध्यस्थम् और समझौते की प्रक्रिया द्वारा तथा संक्षिप्त रूप से, निपटारा करने के लिए लोक अदालतों का गठन किया जा रहा है । वर्तमान में लोक अदालतों की संस्था एक स्वैच्छिक और सलाह अभिकरण के रूप में कार्य कर रही है और उसके विनिश्चयों को कोई कानूनी शक्ति प्राप्त नहीं है । यह न्याय प्रशासन की एक तीव्रगामी पद्धति के लिए व्यवस्था के रूप में बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुई है । इसकी दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई लोकप्रियता को दृष्टि में रखते हुए इस संस्था को और लोक अदालतों द्वारा दिए गए अधिनिर्णयों को

कानूनी शक्ति प्रदान करने की मांग की जा रही है । यह महसूस किया गया है कि इस प्रकार के कानूनी समर्थन से न केवल नियमित न्यायालयों में बकाया काम कुछ कम होगा बल्कि न्याय को निर्धनों और जरूरतमंदों के द्वार तक भी पहुंचाया जा सकेगा तथा न्याय त्वरित और कम खर्चीला होगा ।'

11. लगभग डेढ़ दशक से 1987 के अधिनियम के प्रवर्तन का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया गया । यह महसूस किया गया कि 1987 के अधिनियम में उपबंधित लोक अदालतों की पद्धति से कई बार उन स्थितियों में न्याय करने में विलंब हो जाता है जहां लोक अदालतों में पक्षकार किसी समझौते पर नहीं पहुंचते और वह मामला न्यायालय में वापस भेज दिया जाता है अथवा पक्षकारों को अपनी शिकायत को दूर करने के लिए समुचित उपचार का पता लगाने की सलाह दी जाती है । तदनुसार संसद् द्वारा 1987 के अधिनियम का संशोधन करने की आवश्यकता महसूस की गई । 2002 के संशोधन अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों का कथन, अन्य बातों के साथ-साथ, इस प्रकार है :–

"विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 समाज के दुर्बल वर्गों को निःशुल्क और सक्षम विधिक सेवा यह सुनिश्चित करने हेतु उपलब्ध कराने के लिए कि आर्थिक या अन्य निर्योग्यताओं के कारण कोई भी नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, विधिक सेवा प्राधिकरणों का गठन करने के लिए और यह सुनिश्चित करने हेतु कि विधिक तंत्र इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो, लोक अदालतें आयोजित करने के लिए अधिनियमित किया गया था । लोक अदालत की पद्धति, जो वैकल्पिक विवाद समाधान का एक नया तंत्र है, न्यायालय के बाहर सुलह करने की भावना को ध्यान में रखते हुए विवादों के समाधान के लिए प्रभावी साबित हुई है ।

2. तथापि, उक्त अधिनियम के अध्याय 6 के अधीन लोक अदालतों के आयोजन की विद्यमान स्कीम में सबसे बड़ी खामी यह है कि लोक अदालत की पद्धति, मुख्यतः, पक्षकारों के बीच समझौते पर आधारित है । यदि पक्षकार कोई समझौता नहीं करते हैं तो मामला या तो न्यायालय को वापस भेज दिया जाता है या पक्षकारों को किसी न्यायालय में उपचार प्राप्त करने की सलाह दी जाती है । इससे न्याय के निपटारे में अनावश्यक विलंब होता है । यदि लोक अदालत को

पक्षकारों के बीच समझौता करने में असफल रहने की दशा में, गुणागुण के आधार पर मामलों का विनिश्चय करने की शक्ति दी जाती है तो समस्या काफी हद तक निपटाई जा सकती है । इसके अतिरिक्त, ऐसे मामलों को जो लोक उपयोगी सेवा देने वाले विभागों में जैसे महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड, दिल्ली विद्युत बोर्ड आदि में, उत्पन्न होते हैं, शीघ्रता से निपटाए जाने की आवश्यकता होती है ताकि लोगों को न्याय अविलंब यहां तक कि मुकदमा-पूर्व प्रक्रम पर प्राप्त हो सके और इस प्रकार अधिकांश छोटे-मोटे मामले, जिन्हें नियमित न्यायालयों में नहीं ले जाना चाहिए, मुकदमा-पूर्व प्रक्रम पर ही निपटा दिए जाएंगे जिसके परिणामस्वरूप नियमित न्यायालयों में काफी हद तक कार्यभार घट जाएगा । अतः, लोकोपयोगी सेवा संबंधी मामलों में सुलह और समझौते के लिए अनिवार्य मुकदमा-पूर्व तंत्र की व्यवस्था करने हेतु स्थायी लोक अदालतें स्थापित करने के लिए विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 का संशोधन करने का प्रस्ताव है ।

3. प्रस्तावित विधान के मुख्य लक्ष्य निम्नानुसार हैं,–

(i) स्थायी लोक अदालतों की स्थापना का उपबंध करना, जो एक अध्यक्ष, जो जिला न्यायाधीश या अपर जिला न्यायाधीश हो या रहा हो या जो न्यायाधीश के रैंक से उच्चतर रैंक का न्यायिक अधिकारी रहा हो और दो अन्य व्यक्तियों से, जिनके पास लोकोपयोगी सेवाओं का पर्याप्त अनुभव हो, मिलकर बनेगी ;

(ii) स्थायी लोक अदालत एक या अधिक लोकोपयोगी सेवाओं जैसे कि वायु, सड़क, जल या रेल मार्ग से यात्रियों या माल के वहन के लिए यातायात सेवाएं, डाक, तार या टेलीफोन सेवाएं, ऐसे किसी स्थापन द्वारा जो जनसाधारण को विद्युत, प्रकाश या जल प्रदाय करता है, सार्वजनिक मलवहन या स्वच्छता प्रणाली, अस्पताल या औषधालय सेवाएं और बीमा सेवाओं की बाबत अधिकारिता का प्रयोग करेगी ;

(iii) स्थायी लोक आदालत की धनीय अधिकारिता दस लाख रुपए होगी । तथापि, केंद्रीय सरकार उक्त धनीय अधिकारिता को समय-समय पर बढ़ा सकेगी ;

(iv) इसमें यह भी उपबंध है कि विवाद को किसी न्यायालय में ले जाने के पूर्व, विवाद का कोई भी पक्षकार विवाद के निपटारे के लिए स्थायी लोक अदालत में आवेदन कर सकेगा;

(v) जहां स्थायी लोक आदालत को ऐसा प्रतीत होता है कि समझौते के ऐसे तत्व मौजूद हैं जो पक्षकारों को स्वीकार्य हो सकते हैं, वहां वह संभावित समझौते के निबंधन तैयार करेगी और पक्षकारों को उनके संप्रेक्षण हेतु प्रस्तुत करेगी और यदि पक्षकार सहमत हो जाते हैं तो स्थायी लोक अदालत उसके निबंधनों के अनुसार अधिनिर्णय पारित करेगी । यदि विवाद के पक्षकार किसी सहमति पर पहुंचने में असफल रहते हैं तो स्थायी लोक अदालत विवाद का विनिश्चय गुणागुण के आधार पर करेगी ; और

(vi) स्थायी लोक अदालत द्वारा किया गया प्रत्येक अधिनिर्णय अंतिम और उसके सभी पक्षकारों पर आबद्धकर होगा और वह अधिनिर्णय स्थायी लोक अदालत का गठन करने वाले व्यक्तियों के बहुमत से किया जाएगा ।"

12. उपर्युक्त उद्देश्यों से 2002 का संशोधन अधिनियम संसद् द्वारा, अधिनियमित किया गया था और तद्द्वारा अध्याय 6क (धारा 22क से धारा 22ङ) अन्यत्र कुछ अन्य पारिणामिक संशोधनों सहित अंतःस्थापित किया गया था ।

13. अध्याय 6क का शीषर्क "मुकदमा-पूर्व सुलह और समझौता" है। धारा 22क(क) में "स्थायी लोक अदालत" को इस प्रकार परिभाषित किया गया है, "स्थायी लोक अदालत" से धारा 22ख की उपधारा (1) के अधीन स्थापित स्थायी लोक अदालत अभिप्रेत है । "लोक उपयोगी सेवा" धारा 22क(ख) में परिभाषित है । इससे अभिप्रेत है (i) वायु, सड़क या जल मार्ग द्वारा यात्रियों के वहन के लिए यातायात सेवा ; या (ii) डाक, तार या टेलीफोन सेवा ; या (iii) किसी स्थापन द्वारा जनता को विद्युत, प्रकाश या जल का प्रदाय ; या (iv) सार्वजनिक मल वहन या स्वच्छता प्रणाली ; या (v) अस्पताल या औषधालय सेवा ; या (vi) बीमा सेवा । यदि केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार लोक हित में यह घोषित करती है कि कोई सेवा अध्याय 6क के प्रयोजनों के लिए लोक उपयोगी सेवा है तो ऐसी सेवा,

ऐसी घोषणा पर, धारा 22क(ख) के अधीन "लोक उपयोगी सेवा" की परिभाषा में सम्मिलित की जाएगी ।

14. स्थायी लोक अदालत की स्थापना धारा 22ख के अधीन की जाती है । यथास्थिति, केंद्रीय प्राधिकरण और प्रत्येक राज्य प्राधिकरण को ऐसे स्थानों पर और एक या एक से अधिक लोक उपयोगी सेवाओं की बाबत ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए और ऐसे क्षेत्रों के लिए, जो अधिसूचित किए जाएं, स्थायी लोक अदालतें स्थापित करने का समादेश दिया गया है । स्थायी लोक अदालत की संरचना का उपबंध धारा 22ख(2) में किया गया है । तदनुसार प्रत्येक स्थायी लोक अदालत इन व्यक्तियों से मिलकर बनेगी (क) ऐसा व्यक्ति, जो जिला न्यायाधीश या अपर जिला न्यायाधीश है या रहा है या जिला न्यायाधीश की पंक्ति से उच्चतर पंक्ति का न्यायिक पद धारण किए हुए है ; और (ख) दो अन्य ऐसे व्यक्ति, जिनके पास लोक उपयोगी सेवा का पर्याप्त अनुभव है और जो यथास्थिति, केंद्रीय प्राधिकरण या राज्य प्राधिकरण की सिफारिश पर यथास्थिति, केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा नामनिर्दिष्ट किए जाएं । न्यायिक अधिकारी अर्थात्, जिला न्यायाधीश की पंक्ति से उच्चतर पंक्ति का न्यायिक अधिकारी स्थायी लोक अदालत का अध्यक्ष होगा ।

15. धारा 22ग में स्थायी लोक अदालत के समक्ष विवाद उठाने संबंधी प्रक्रिया का उपबंध किया गया है । उपधारा (1) में यह उपबंधित है कि किसी विवाद का कोई पक्षकार, विवाद को किसी न्यायालय के समक्ष लाने से पूर्व, विवाद के निपटारे के लिए स्थायी लोक अदालत को आवेदन कर सकेगा । किंतु स्थायी लोक अदालत को, ऐसे अपराध के, जो किसी विधि के अधीन शमनीय नहीं है, संबंधित किसी विषय के संबंध में कोई अधिकारिता नहीं होगी । दूसरे परंतुक के अधीन धनीय अधिकारिता की सीमा तय की गई है क्योंकि इसमें यह उपबंधित है कि स्थायी लोक अदालत को ऐसे मामले में अधिकारिता नहीं होगी जिसमें वादग्रस्त संपत्ति का मूल्य दस लाख रुपए से अधिक है । तथापि, केंद्रीय सरकार, अधिसूचना द्वारा, केंद्रीय प्राधिकरण से परामर्श करके दस लाख रुपए की सीमा को बढ़ा सकेगी ।

16. धारा 22ग की उपधारा (2) के अधीन किसी विवाद के पक्षकारों पर, उनमें से किसी एक के द्वारा उपधारा (1) के अधीन आवेदन कर दिए जाने के पश्चात्, उसी विवाद में किसी न्यायालय की अधिकारिता का अवलंब लेने पर रोक लगाई गई है ।

16.1 धारा 22ग की उपधारा (3) में किसी विवाद के किसी भी पक्षकार द्वारा स्थायी लोक अदालत के समक्ष उपधारा (1) के अधीन आवेदन किए जाने पर उसके द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया का उपबंध किया गया है । इस प्रक्रिया के अंतर्गत आवेदन के प्रत्येक पक्षकार द्वारा एक लिखित कथन फाइल किया जाना जिसमें विवाद के तथ्यों और प्रकृति का उल्लेख तथा ऐसे विवाद के मुद्दों या विवाद्यकों का प्रमुखतया उल्लेख होगा और उनके अपने-अपने लिखित कथनों के समर्थन में दस्तावेजों और अन्य साक्ष्य को फाइल किया जाना तथा ऐसे लिखित कथन की प्रति का दस्तावेजों/अन्य साक्ष्य की प्रति सहित एक दूसरे को भेजा जाना भी है । स्थायी लोक अदालत आवेदन के किसी भी पक्षकार से सुलह की कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम पर उसके समक्ष अतिरिक्त कथन फाइल किए जाने की अपेक्षा कर सकेगी । स्थायी लोक अदालत द्वारा आवेदन के किसी भी पक्षकार से प्राप्त किसी दस्तावेज या कथन को, अन्य पक्षकार को (उसका उत्तर देने के लिए समर्थ बनाने हेतु) दिया जाएगा । उपर्युक्त प्रक्रिया के पूरा होने पर, स्थायी लोक अदालत द्वारा धारा 22ग की उपधारा (4) के अधीन आवेदन के पक्षकारों के बीच सुलह कार्यवाहियां की जाती हैं । धारा 22ग की उपधारा (4) के अधीन सुलह कार्यवाहियों के किए जाने के दौरान, स्थायी लोक अदालत पक्षकारों को विवाद के स्वतंत्र और निष्पक्ष रीति में सौहार्द्रपूर्ण समझौते पर पहुंचने लिए उनके प्रयास में पक्षकारों को सहायता प्रदान करने के लिए आबद्धकर है । आवेदन के प्रत्येक पक्षकार का यह कर्तव्य है कि वह आवेदन से संबंधित विवाद को सुलह कराने में स्थायी लोक अदालत के साथ सद्भावपूर्वक सहयोग करे और स्थायी लोक अदालत के, उसके समक्ष साक्ष्य और अन्य संबंधित दस्तावेज प्रस्तुत करने के निदेश का अनुपालन करे ।

16.2 स्थायी लोक अदालत, इस बात का समाधान होने पर कि कार्यवाहियों में समझौता होने की संभावना है, विवाद के संभावित समझौते के निबंधनों को तैयार कर सकेगी और उन्हें उनकी मताभिव्यक्तियों के लिए पक्षकारों को देगी और जहां पक्षकार विवाद के समझौते के लिए सहमत हो जाते हैं वहां ये समझौते/करार पर हस्ताक्षर करेंगे और स्थायी लोक अदालत तब उसके निबंधनों के अनुसार अधिनिर्णय पारित करेगी और उसकी एक-एक प्रति संबंधित पक्षकारों में से प्रत्येक को देगी ।

17. उपर्युक्त मुकदमा-पूर्व सुलह और समझौते की प्रक्रिया तक कोई समस्या या विवाद्यक नहीं है । याची धारा 22ग(8) में अंतर्विष्ट उपबंध से

गंभीर रूप से व्यथित है, जिसमें यह उपबंधित है कि जहां पक्षकार उपधारा (7) के अधीन किसी करार पर पहुंचने में असफल रहते हैं वहां यदि विवाद किसी अपराध के संबंधित नहीं है तो स्थायी लोक अदालत उस विवाद का विनिश्चय करेगी । इस उपबंध के बाद धारा 22घ, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंधित है कि स्थायी लोक अदालत, किसी विवाद का गुणागुण के आधार पर विनिश्चय करते समय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 से आबद्ध नहीं होगी और धारा 22ङ, जिसके अंतर्गत उपधारा (1) के अधीन स्थायी लोक अदालत के अधिनिर्णय को अंतिमता प्रदान की गई है और उपधारा (4) में किया गया यह उपबंध कि स्थायी लोक अदालत द्वारा दिया गया प्रत्येक अधिनिर्णय अंतिम होगा और किसी मूल वाद, आवेदन या निष्पादन की कार्यवाहियों में प्रश्नगत नहीं किया जाएगा, मुख्यतया तर्क का विषय है । क्या इन उपबंधों से भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होता है और क्या ये विधि, ऋजु और समान न्याय के नियम के प्रतिकूल हैं, ऐसे प्रश्न हैं जिन पर कि विचार किया जाना है ।

18. 2002 के संशोधन अधिनियम द्वारा 1987 के अधिनियम में अंतःस्थापित अध्याय 6क में, जैसाकि इसके शीर्षक से पता चलता है, मुकदमा-पूर्व सुलह और समझौते की प्रक्रिया का उपबंध किया गया है । लोक उपयोगी सेवा, जैसे कि वायु, सड़क या जल मार्ग द्वारा यात्रियों या माल के वहन के लिए यातायात सेवा, या डाक, तार या टेलीफोन सेवा, या विद्युत प्रकाश या जल का प्रदाय, या सार्वजनिक मल वहन या स्वच्छता प्रणाली या अस्पताल या औषधालय में सेवा या बीमा सेवा आदि, से संबंधित विवादों का निपटारा किए जाने की इसी स्कीम के अंतर्गत इनका निपटारा शीघ्रतापूर्वक किया जाना चाहिए । सेवा प्रदाय और व्यथित पक्षकार के बीच उपर्युक्त इन मामलों के बाबत विलंबित विवाद से विवाद के पक्षकारों में से किसी को भी अपूर्णनीय नुकसान हो सकता है । आजकल, मामलों की संख्या में निरंतर वृद्धि को देखते हुए न्यायालय मामलों के इस भारी प्रवाह को और उनके समक्ष आने वाले मामलों को संभालने में समर्थ नहीं हैं । लोक उपयोगी सेवा से संबंधित विवादों पर, उनका आरंभ में ही सुलह और समझौते से समाधान किए जाने को संकेंद्रित करके, शीघ्र ध्यान दिए जाने की और यदि किसी कारणवश ये प्रयास असफल रहते हैं तो उन विवादों का न्यायनिर्णयन किसी समुचित तंत्र द्वारा यथासंभव शीघ्र किए जाने की जरूरत होती है । देश की विशाल जनसंख्या और विभिन्न सेवा

प्रदाताओं द्वारा उपलब्ध कराई जा रही अत्यधिक लोक उपयोगी सेवाओं को देखते हुए इन सेवाओं के संबंध में सेवा प्रदाताओं और आम व्यक्ति के बीच ये विवाद बहुशः होते रहते हैं । न्यायालयों की धीमी गति की प्रक्रियाएं लोक उपयोगी सेवा से संबंधित विवादों के न्यायनिर्णयन में सहायक नहीं हैं ।

19. उद्देश्यों और कारणों के कथन में ही अध्याय 6क के प्रमुख लक्षणों को विहित किया गया है । इस विधि को लाकर लोक उपयोगी सेवा से संबंधित मुकदमेबाजी को आरंभ में ही उस विवाद के पक्षकारों को सर्वप्रथम अपने विवाद स्थायी लोक अदालत के प्रयासों के माध्यम से निपटाने का अवसर प्रदान करके समाप्त करने की और यदि यह प्रयास असफल रहता है तो पक्षकारों के बीच के उस विवाद का न्यायनिर्णयन स्थायी लोक अदालत के विनिश्चय के माध्यम से किए जाने की ईप्सा की गई है । अध्याय 6क में उपबंधित तंत्र लोक उपयोगी सेवा से संबंधित किसी विवाद के पक्षकार को, उस विवाद को किसी न्यायालय के समक्ष लाने से पूर्व, विवाद के निपटारे के लिए स्थायी लोक अदालत के समक्ष आवेदन करने के लिए समर्थ बनाया गया है ।

20. संसद् निश्चित रूप से, प्रभावी आनुकल्पिक संस्थागत तंत्र का गठन या ऐसी व्यवस्था कर सकती है जो न्यायालयों के माध्यम से विवादों का न्यायनिर्णयन किए जाने के सामान्य तंत्र की अपेक्षा अधिक प्रभावी हो । ऐसे संस्थागत तंत्रों या व्यवस्थाओं को कल्पना की किसी उड़ान से सांविधानिक स्कीम के प्रतिकूल या विधि के नियम के विरुद्ध नहीं कहा जा सकता है । स्थायी लोक अदालतों की स्थापना और उन्हें धारा 22क(ख) में यथा परिभाषित एक या अधिक लोक उपयोगी सेवाओं की बाबत, विवाद के किसी भी पक्षकार द्वारा उस विवाद को किसी न्यायालय के समक्ष लाए जाने से पूर्व, एक विनिर्दिष्ट धनीय सीमा तक की अधिकारिता प्रदान किया जाना विधि के नियम के प्रति कोई अभिशाप नहीं है । यदि संसद् द्वारा सामान्य सिविल न्यायालयों के बजाय, न्यायनिर्णयन करने की शक्ति सहित अन्य संस्थागत तंत्र स्थापित किए जाते हैं या अन्य व्यवस्थाएं की जाती हैं तो हमारे मतानुसार, ऐसे संस्थागत तंत्रों और व्यवस्थाओं को मनमानेपन या असंगतता के आधार पर गलत नहीं ठहराया जा सकता है ।

21. 1987 के अधिनियम (2002 के संशोधन अधिनियम द्वारा यथा संशोधित) के अधीन स्थायी लोक अदालतें विभिन्न कानूनों के अधीन उपबंधित पीठों के अतिरिक्त हैं न कि उनके अल्पीकरण में । इस स्थिति

को केंद्रीय सरकार द्वारा अपने प्रति-शपथपत्र में स्वीकार किया गया है ।

22. यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि लोक उपयोगी सेवाओं से संबंधित विवाद स्थायी लोक अदालतों को केवल उस दशा में सौंपे गए हैं जब सुलह और समझौते की कार्यवाही विफल हो जाती है । जिस बात पर बल दिया गया है वह स्थायी लोक अदालतों के माध्यम से लोक उपयोगी सेवाओं से संबंधित विवादों की बाबत समझौते के संबंध में है । इसी कारण से धारा 22ग की उपधारा (1) में स्पष्ट रूप से यह कथन किया गया है कि किसी विवाद का कोई पक्षकार, विवाद को किसी न्यायालय के समक्ष लाने से पूर्व, विवाद के निपटारे के लिए स्थायी लोक अदालत को आवेदन कर सकेगा । इस प्रकार लोक उपयोगी सेवाओं के मामलों में पक्षकारों के बीच विवाद का निपटारा मुख्य विषयवस्तु है । किंतु जहां स्थायी लोक अदालत के उद्यम और प्रयास के बावजूद पक्षकारों के बीच समझौता नहीं हो पाता है और पक्षकारों से अपने विवाद का अवधारण और न्यायनिर्णयन कराए जाने की अपेक्षा की जाती है, वहां लोक उपयोगी सेवाओं से संबंधित विवादों के न्यायनिर्णयन में विलंब से बचने के लिए संसद् ने हस्तक्षेप करके न्यायनिर्णयन की शक्ति स्थायी लोक अदालतों को प्रदत्त की है । क्या स्थायी लोक अदालतों को पक्षकारों के बीच के लोक उपयोगी सेवा से संबंधित उन विवादों का, यदि वे किसी अपराध से संबंधित नहीं हैं, न्यायनिर्णयन करने के लिए एक विनिर्दिष्ट धनीय सीमा तक, जैसाकि धारा 22ग(8) में उपबंधित है, प्रदत्त की गई शक्ति को असंवैधानिक और असंगत कहा जा सकता है ? हम ऐसा नहीं समझते । यह सुस्थापित विधि है कि पक्षकारों के बीच विवादों का न्यायनिर्णयन करने के लिए सशक्त किसी प्राधिकारी के लिए, जो कि अधिकरण के रूप में कार्य करता है, यह आवश्यक नहीं है कि उसके पास न्यायालय की सभी शक्तियां हों । जो अनिवार्य है वह यह है कि वह कानून द्वारा सृजित किया गया होना चाहिए और उसे अपने समक्ष पक्षकारों के बीच के विवाद का, उन्हें ऐसा युक्तियुक्त अवसर प्रदान करते हुए जो ऋजु भूमिका और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों से सुसंगत हो, न्यायनिर्णयन करना चाहिए । यह किसी व्यक्ति का कोई सांविधानिक अधिकार नहीं है कि वह विवाद का न्यायनिर्णयन केवल किसी न्यायालय के माध्यम से ही कराए । अध्याय 6क, लोक उपयोगी सेवा से संबंधित विवादों का, मामले को न्यायालय के समक्ष लाने से पूर्व, निपटारा करने के लिए स्थायी लोक अदालतों की स्थापना किए जाने के माध्यम से एक संस्थागत तंत्र का उपबंध करने के लिए और किसी

समझौते पर पहुंचने में असफल रहने की दशा में उस विवाद का, यदि वह किसी अपराध से संबंधित नहीं है, न्यायनिर्णयन करने के लिए स्थायी लोक अदालत को सशक्त बनाने के लिए अधिनियमित किया गया है ।

23. "न्यायालयों" और "अधिकरणों" के बीच अंतर का प्रश्न इस न्यायालय के समक्ष विचारार्थ कई अवसरों पर आया । लगभग पांच दशक पूर्व, इस न्यायालय ने **मैसर्स हरिनगर शुगर मिल्स लिमिटेड** बनाम **श्याम सुंदर झुनझुनवाला और अन्य**[1] वाले मामले में यह कथन किया था कि "न्यायालयों" से सिविल न्यायालय अभिप्रेत हैं और "अधिकरणों" से व्यक्तियों के वे निकाय अभिप्रेत हैं जिन्हें कतिपय विशेष विधियों के अधीन उत्पन्न संविवादों का विनिश्चय करने के लिए नियुक्त किया जाता है । सभी अधिकरण न्यायालय नहीं होते हैं जबकि सभी न्यायालय अधिकरण होते हैं । यह और मत व्यक्त किया गया था कि न्यायिक शक्ति के प्रयोग में न्यायालयों और अधिकरणों के बीच स्पष्ट विभेद दिखाई देता है विशिष्टतया कतिपय विशेष मामले अधिकरणों के समक्ष जाते हैं और शेष मामूली अधिकारिता वाले मामले सिविल न्यायालयों के पास जाते हैं । उनकी प्रक्रिया भिन्न-भिन्न हो सकती है किंतु यह अनिवार्य नहीं है कि उनके कृत्य भिन्न-भिन्न हों । न्यायालय और अधिकरण दोनों ही, "न्यायिक रूप से" कार्य करते हैं ।

24. इस न्यायालय की संविधान पीठ ने **एसोसिएटेड सीमेंट कंपनीज़ लिमिटेड** बनाम **पी. एन. शर्मा और एक अन्य**[2] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया था कि हमारे संविधान के अधीन राज्य के न्यायिक कृत्य और शक्तियां मुख्यतया मामूली अधिकारिता वाले न्यायालयों को प्रदत्त की गई हैं ; संविधान में न्यायालयों के सोपान को अभिस्वीकार किया गया है और उन्हें सामान्यतया नागरिकों और नागरिकों के बीच के तथा नागरिकों और राज्य के बीच के सभी विवादों का न्यायनिर्णयन करने का कार्य सौंपा गया है । न्यायालयों द्वारा जिन शक्तियों का प्रयोग किया जाता है वे न्यायिक शक्तियां होती हैं, जिसे कृत्य का वे निर्वहन करते हैं, वे न्यायिक कृत्य होते हैं और जो विनिश्चय वे करते और सुनाते हैं वे न्यायिक विनिश्चय होते हैं । अधिकरण उन विशेष मामलों का विनिश्चय करते हैं जो उन्हें विनिश्चय के लिए सौंपे जाते हैं । वह प्रक्रिया, जिसका अधिकरणों को अनुसरण करना

---

[1] [1962] 2 एस. सी. आर. 339.

[2] [1965] 2 एस. सी. आर. 366.

होता है, सदैव यथार्थतः विहित नहीं की गई हो सकती है किंतु न्यायालयों और अधिकरणों, दोनों द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण सारभूत रूप से एक समान होता है, वह है राज्य का अंतर्निहित न्यायिक कृत्य, जिसका कि वे निर्वहन करते हैं ।

25. इस न्यायालय द्वारा **किहोतो होलोहन** बनाम **जशिलु और अन्य**[1] वाले मामले में यह कथन किया गया है कि जहां प्राधिकरण से पक्षकारों के अधिकारों और बाध्यताओं से संबंधित किसी वाद का विनिश्चय करने की अपेक्षा की जाती है, वहां न्यायिक शक्ति का प्रयोग किया जाता है । प्राधिकारी को, यदि उसके पास किसी न्यायालय की सभी शक्तियां नहीं हैं, अधिकरण कहा जाता है ।

26. हाल ही के **भारत संघ** बनाम **आर. गांधी, अध्यक्ष, मद्रास बार एसोसिएशन**[2] वाले एक तुलनात्मक मामले में (2004 की सिविल अपील सं. 306, जिसका विनिश्चय 11 मई, 2010 को किया गया) के विनिश्चय में, इस न्यायालय की संविधान पीठ का सरोकार उन मामलों से था जहां कि कंपनी अधिनियम, 1956 में कंपनी (दूसरा संशोधन) अधिनियम, 2002 द्वारा अंतःस्थापित भाग 1ख और भाग 1ग को, जिसमें राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण और राष्ट्रीय कंपनी विधि अपील अधिकरण के गठन का उपबंध किया गया था, चुनौती दी गई थी । न्यायालय ने न्यायालयों और अधिकरणों के बीच अंतर की समीक्षा करते हुए, अन्यों के साथ-साथ, इस न्यायालय के पूर्ववर्ती विनिश्चयों को, जिनमें से कुछ का ऊपर उल्लेख किया गया है, निर्दिष्ट किया । न्यायालय ने विधिक स्थिति को साररूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया :–

> "(क) विधायिका किसी विनिर्दिष्ट विषय के संबंध में (उनसे भिन्न जो संविधान के अभिव्यक्त उपबंधों द्वारा न्यायालयों में निहित किए गए हैं) न्यायालयों द्वारा प्रयोग की जाने वाली अधिकारिता का अंतरण करने संबंधी कोई विधि अधिनियमित कर सकती है ।
>
> (ख) सभी न्यायालय अधिकरण होते हैं । ऐसा कोई अधिकरण भी, जिसे न्यायालयों की कोई विद्यमान अधिकारिता अंतरित की जाती है, एक न्यायिक अधिकरण होना चाहिए । इससे यह अभिप्रेत होता है कि ऐसे अधिकरण में सदस्य के रूप में यथासंभव निकटतम

---

[1] (1992) सप्ली. 2 एस. सी. सी. 651.

[2] (2010) 11 एस. सी. सी. 1.

रूप में रैंक, हैसियत और प्रास्थिति के न्यायालय के उसी रैंक, प्रास्थिति और हैसियत के बराबर व्यक्ति होने चाहिए जो उस समय तक मामलों के संबंध में कार्रवाई कर रहे थे और अधिकरण के सदस्यों को न्यायिक अधिकरणों से संबद्ध स्वतंत्रता और पदावधि की सुरक्षा मिलनी चाहिए ।

(ग) जब कभी 'अधिकरणों' की जरूरत हो, वहां इस बात की कोई उपधारणा नहीं होती कि उन अधिकरणों में तकनीकी सदस्य होने चाहिए । जब कोई अधिकारिता न्यायालयों में लंबित पड़े मामलों या विलंब के आधार पर न्यायालयों से अधिकरणों को अंतरित की जाती है और इस प्रकार अंतरित अधिकारिता में ऐसे कोई तकनीकी पहलू अंतर्वलित नहीं हैं जिनके लिए विशेषज्ञों की सहायता अपेक्षित हो, वहां सामान्यतया अधिकरण में केवल न्यायिक सदस्य होने चाहिए । केवल उस दशा में, जहां कि अधिकारिता के प्रयोग में तकनीकी और विशेष पहलुओं की जांच और उन पर विनिश्चय किया जाना अंतर्वलित हो, जहां कि तकनीकी सदस्यों का होना उपयोगी और आवश्यक हो, अधिकरणों में तकनीकी सदस्य होना चाहिए । सभी अधिकरणों में तकनीकी सदस्यों की अंधाधुंध नियुक्ति से न्यायपालिका की स्वतंत्रता क्षीण हो जाएगी और उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा ।

(घ) विधायिका न्यायिक अधिकरणों की अधिकारिताओं का पुनर्गठन कर सकती है । उदाहरणार्थ, वह यह उपबंध कर सकती है कि किसी विनिर्दिष्ट प्रवर्ग के मामलों का विचारण, जिनका विचारण किसी उच्चतर न्यायालय द्वारा किया जाता है, किसी निचले न्यायालय द्वारा अथवा निचले न्यायालय द्वारा विचारण किए जाने वाले मामलों का विचारण किसी उच्चतर न्यायालय द्वारा किया जा सकता है । (मानक उदाहरण न्यायालयों की धनीय सीमाओं के घटबढ़ का है) इसी प्रकार, अधिकरणों का गठन करते समय, विधायिका अर्हताएं/ पात्रता मापदंड विहित कर सकती है । तथापि, यह न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन होगा । यदि न्यायालय का न्यायिक पुनर्विलोकन का प्रयोग करने में यह मत है कि ऐसे अधिकरण के बनाए जाने से न्यायपालिका की स्वतंत्रता या न्यायपालिका के मानकों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा तो न्यायालय न्यायपालिका की स्वतंत्रता और मानकों के परिरक्षण के लिए हस्तक्षेप कर सकता है । यह

कार्रवाई शक्तियों के पृथक्करण को बनाए रखने तथा विधायिका या कार्यपालिका में से किसी द्वारा आशयित या अनाशयित, किसी अधिक्रमण के निवारण के लिए नियंत्रण और संतुलन उपायों के भागरूप होगी ।"

27. इस प्रकार, किसी विशिष्ट कानून या किन्हीं विशिष्ट कानूनों के अधीन या उससे संबंधित विवादों या विशिष्ट विवादों पर कार्यवाही करने के लिए अधिकरणों का सृजन करने संबंधी विधि बनाने की संसद् की सक्षमता को प्रश्नगत नहीं किया जा सकता ।

28. स्थायी लोक अदालत द्वारा लोक उपयोगी सेवा से संबंधित किसी विवाद का संज्ञान लेने की अनिवार्यता यह है कि विवाद के किसी भी पक्षकार ने सिविल न्यायालय के समक्ष आवेदन न किया हुआ हो । याची की इस दलील में कोई सार नहीं है कि सेवा प्रदाता विशेष कानून के अधीन किसी न्यायालय या किसी पीठ द्वारा किसी विवाद पर विचार किए जाने का 1987 के अधिनियम के अध्याय 6क के अधीन स्थापित स्थायी लोक अदालत में आवेदन करने के पूर्व क्रयाधिकार का प्रयोग कर सकता है और इस प्रकार उस लोक उपयोगी सेवा के उपयोगकर्ता या उपभोक्ता को विशेष कानून के अधीन सृजित किसी न्यायालय या किसी पीठ द्वारा उस विवाद का न्यायनिर्णयन कराए जाने के अवसर से वंचित कर सकता है । पहली बात तो यह है कि विशेष कानूनों के अधीन सृजित पीठों की अधिकारिता आक्षेपित उपबंधों द्वारा किसी भी रीति में, चाहे वह किसी भी प्रकार की हो, छीनी नहीं गई है । जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, स्थायी लोक अदालतें विशेष कानूनों के अधीन उपबंधित पीठों के अतिरिक्त हैं न कि उनके अल्पीकरण में । दूसरे, ऐसा कोई भी दृष्टांत नहीं दिया गया है जहां कि लोक उपयोगी सेवा प्रदाता द्वारा, अपने उपयोगकर्ता के साथ किसी विवाद में, स्थायी लोक अदालत में पहले आवेदन किया गया हो । यह दलील निराधार और भ्रामक है ।

29. लोक उपयोगी सेवा से संबंधित विवादों के संबंध में अध्याय 6क में का आनुकल्पिक संस्थागत तंत्र न्याय सुनिश्चित करने की दृष्टि से वहनीय, त्वरित और दक्ष तंत्र का उपबंध करने के लिए आशयित है । सिविल प्रक्रिया संहिता और भारतीय साक्ष्य अधिनियम के कानूनी उपबंधों को लागू न बनाकर विवादों के अवधारण की गुणता से कोई समझौता नहीं किया गया है क्योंकि स्थायी लोक अदालत को निष्पक्ष रूप से कार्य करना होता है, विवाद का विनिश्चय ऋजुतापूर्वक करना होता है और नैसर्गिक

न्याय के सिद्धांतों का अनुसरण करना होता है । स्थायी लोक अदालत का सुलह संबंधी कार्यवाहियां करते समय या जब सुलह की कार्यवाहियां विफल हो जाती हैं तब विवाद का विनिश्चय गुणागुण के आधार पर करने में न्याय और साम्या के बोध से मार्गदर्शन होता रहता है ।

30. जहां तक स्थायी लोक अदालत की संरचना का संबंध है, धारा 22ख(2) में यह उपबंधित है कि स्थायी लोक अदालत इन व्यक्तियों से मिलकर बनेगी अर्थात् एक ऐसा व्यक्ति, जो जिला न्यायाधीश या अपर जिला न्यायाधीश है या रहा है या जिला न्यायाधीश की पंक्ति से उच्चतर पंक्ति का न्यायिक पद धारण किए हुए है और दो अन्य ऐसे व्यक्ति, जिनके पास लोक उपयोगी सेवा का पर्याप्त अनुभव है और जो, यथास्थिति, केंद्रीय प्राधिकरण या राज्य प्राधिकरण की सिफारिश पर, यथास्थिति, केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा नामनिर्दिष्ट किए जाएं । इन तीन सदस्यों में से, न्यायिक अधिकारी स्थायी लोक अदालत का अध्यक्ष होता है । 1987 के अधिनियम की धारा 3 के अधीन केंद्रीय प्राधिकरण में अन्यों के साथ-साथ भारत का मुख्य न्यायमूर्ति, उच्चतम न्यायालय का कोई सेवारत या सेवानिवृत्त न्यायाधीश, जिसे राष्ट्रपति द्वारा भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से, नामनिर्दिष्ट किया जाता है और केंद्रीय सरकार द्वारा, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से, नामनिर्दिष्ट किए जाने वाले अन्य सदस्य होते हैं । भारत का मुख्य न्यायमूर्ति केंद्रीय प्राधिकरण का मुख्य संरक्षक होता है जबकि उच्चतम न्यायालय का सेवारत या सेवानिवृत्त न्यायाधीश कार्यपालक अध्यक्ष होता है । इसी प्रकार, धारा 6 के अधीन राज्य प्राधिकरण में उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति, उच्च न्यायालय का सेवारत या सेवानिवृत्त न्यायाधीश, जिसे राज्यपाल द्वारा, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श करके, नामनिर्दिष्ट किया जाता है और उतने अन्य सदस्य होते हैं जो राज्य सरकार द्वारा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श करके, नामनिर्दिष्ट किए जाएं । इस प्रकार यह विदित है कि किसी स्थायी लोक अदालत के न्यायिक अधिकारी से भिन्न दो सदस्यों की नियुक्ति, यथास्थिति, केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा, यथास्थिति, केवल केंद्रीय प्राधिकरण या राज्य प्राधिकरण की सिफारिश पर ही की जा सकती है । केंद्रीय प्राधिकरण और राज्य प्राधिकरण की संरचना का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है । उपर्युक्त मतानुसार, यह कहना भ्रामक है कि स्थायी लोक अदालतों के सदस्यों की नियुक्ति किए जाने में न्यायपालिका को बाहर रखा गया है । ऐसा कतई प्रतीत नहीं होता कि

स्थायी लोक अदालतों की स्वतंत्रता से समझौता किया गया है क्योंकि प्रत्येक स्थायी लोक अदालत में गैर-न्यायिक सदस्यों की नियुक्ति भी उच्च शक्ति प्राप्त केंद्रीय प्राधिकरण की, जिसके अध्यक्ष कोई और नहीं बल्कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति अथवा उच्चतम न्यायालय के सेवारत या सेवानिवृत्त न्यायाधीश होते हैं, सिफारिश पर जहां कि नामनिर्देशन केंद्रीय सरकार द्वारा किया जाता है या राज्य प्राधिकरण की, जिसके अध्यक्ष और कोई नहीं बल्कि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति या उच्च न्यायालय के सेवारत या सेवानिवृत्त न्यायाधीश होते हैं, सिफारिश पर, जहां कि नामनिर्देशन राज्य सरकार द्वारा किया जाता है, की जानी होती है ।

31. अधिकरणों में न्यायिक और गैर-न्यायिक सदस्य का होना कोई असामान्य बात नहीं है । स्थायी लोक अदालत जैसे किसी अधिकरण में गैर-न्यायिक सदस्यों के रखे जाने का जो संपूर्ण आशय है वह यह सुनिश्चित करने का है कि सुलह अथवा न्यायनिर्णयन संबंधी कार्यवाहियों में विधिक तकनीकियां सर्वोपरि न हो जाएं । इस तथ्य से कि धारा 22ख के अधीन स्थापित स्थायी लोक अदालत में एक न्यायिक अधिकारी और दो अन्य व्यक्ति, जिनके पास लोक उपयोगी सेवा का पर्याप्त अनुभव हो, होते हैं, विधि के नियम के प्रति कोई असंगतता दर्शित नहीं होती है और न ही ऐसी संरचना से ऋजुता और न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन नहीं होता है और न ही यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 21 के प्रतिकूल है ।

32. यह सही है कि 1987 के अधिनियम के अधीन स्थायी लोक अदालत द्वारा दिया गया अधिनिर्णय स्थायी लोक अदालत का गठन करने वाले व्यक्तियों के बहुमत द्वारा किया गया होना चाहिए । किसी मामले विशेष में, हो सकता है कि दो गैर-न्यायिक सदस्य न्यायिक सदस्य से सहमत न हों किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि बहुमत के उस विनिश्चय में न्यायिक औचित्य या बोध का अभाव है ।

33. अपील किए जाने का कोई अंतर्निहित अधिकार नहीं है । अपील सदैव ही कानून का एक सृजन है और यदि किसी विशिष्ट कानून में व्यथित पक्षकार को अपील का कोई अधिकार प्रदान नहीं किया जाता है तो उससे वह कानून स्वतः ही असांविधानिक नहीं हो सकता । 1987 के अधिनियम के अधीन धारा 22ङ(1) के अंतर्गत स्थायी लोक अदालत द्वारा गुणागुण के आधार पर या किसी समझौते के निबंधनों के अनुसार दिए गए प्रत्येक अधिनिर्णय को अंतिम और उसके सभी पक्षकारों पर तथा उनके

अधीन दावा करने वाले व्यक्तियों पर आबद्धकर बनाया गया है । स्थायी लोक अदालत द्वारा पारित अधिनिर्णय के विरुद्ध किसी अपील का उपबंध नहीं किया गया है किंतु इससे हमारी राय में आक्षेपित उपबंध असांविधानिक नहीं हो जाते हैं । लोक उपयोगी सेवा से संबंधित एक विनिर्दिष्ट धनीय सीमा तक के विवाद की प्रकृति को और धारा 22ग(1) से धारा 22ग(8) में उपबंधित प्रक्रिया द्वारा उस विवाद के समाधान को ध्यान में रखते हुए, सर्वप्रथम तो महत्वपूर्ण यह है कि उस विवाद को शीघ्रातिशीघ्र समाप्त किया जाए और अनावश्यक रूप से उसे लंबा न खींचा जाए । दूसरे और अति महत्वपूर्ण रूप से यह कि यदि विवाद के किसी पक्षकार को स्थायी लोक आदालत के अधिनिर्णय के विरुद्ध कोई शिकायत है तो वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और अनुच्छेद 227 के अधीन उच्च न्यायालय की पर्यवेक्षणीय और असाधारण अधिकारिता के अधीन उसके समक्ष सदैव आवेदन कर सकता है । याची के विद्वान् काउंसेल की इस दलील में कोई सार नहीं है कि उस स्थिति में स्थायी लोक अदालत द्वारा गुणागुण के आधार पर अधिनिर्णय पारित कर दिए जाने के पश्चात् मुकदमेबाजी का भार वापस उच्च न्यायालयों पर आ जाएगा ।

34. आक्षेपित उपबंधों की विधिमान्यता को इस न्यायालय के समक्ष **एस. एन. पांडेय** (उपर्युक्त) वाले मामले में चुनौती दी गई थी । इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने उस चुनौती से असहमति व्यक्त करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि :–

> "हमने उक्त अध्याय के उपबंधों का परिशीलन किया जिनमें उन विवादों का, जिनमें अंतर्वलित मामला लोक उपयोगी सेवा का हो, विनिश्चय करने के लिए स्थायी लोक अदालतों की स्थापना की अपेक्षा की गई थी । यह बिल्कुल स्पष्ट है कि विधायिका का प्रयास आनुकल्पिक विवाद समाधान का सहारा लेकर न्यायालयों के कार्यभार को कम करने का है । लोक अदालत विवाद समाधान का एक ढंग है जो दो दशकों से भी अधिक समय से प्रचलन में है । इस तंत्र के माध्यम से हजारों मामले निपटाए जा चुके हैं और इस बात का कोई विवाद नहीं है कि यह न्याय करने का एक त्वरित साधन है । मुकदमेबाजी को शीघ्र ही इस प्रकार समाप्त किया जाता है जिसमें मुकदमा लड़ने वाले और कोई अपील न करें या उससे व्यथित न हों। स्थायी लोक अदालत तंत्र के गठन में न्यायिक अधिकारी या किसी सेवानिवृत्त न्यायिक अधिकारी तथा दो ऐसे अन्य व्यक्ति रखने पर

विचार किया गया जिनके पास लोक उपयोगी सेवाओं का पर्याप्त अनुभव हो ।

हमें उक्त विधान में कोई सांविधानिक कमी प्रतीत नहीं होती । अधिनियम में इस बात को सुनिश्चित किया गया है कि मुकदमा लड़ने वाले को न्याय शीघ्रता से और निष्पक्ष रूप से मिले । हम इस बात पर भी बल देते हैं कि वे व्यक्ति, जिन्हें स्थायी लोक अदालतों में नियुक्त किया जाता है, सत्यनिष्ठ और पर्याप्त अनुभव वाले व्यक्ति होने चाहिए । इस संबंध में, निःसंदेह, अन्य बातों के साथ-साथ समुचित नियम, यदि वे पहले से बनाए नहीं गए हैं, हम उक्त अधिनियम की विधिमान्यता को मान्य ठहराते हैं और आशा व्यक्त करते हैं कि स्थायी लोक अदालतों की स्थापना यथाशीघ्र की जाएगी । लोक अदालतें मुख्यतया, पक्षकारों के बीच समझौता कराने के लिए अधिनियमित की गई हैं । पक्षकारों को सामान्यतया, व्यक्तिगत रूप से हाजिर होना होता है और चूंकि आक्षेपित उपबंध मुकदमा लड़ने वाले व्यक्तियों के हित में है, अतः लोक अदालतें, यदि कोई अधिवक्ता हाजिर नहीं भी होना चाहता है, तब भी अपने कर्तव्यों और कृत्य का पालन करेंगी ।

35. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि **एस. एन. पांडेय** (उपर्युक्त) वाले मामले द्वारा फाइल की गई रिट याचिका का निपटारा आरंभतः ही कर दिया गया था और उस मामले में पारित आदेश को कोई आबद्धकर नजीर नहीं माना जा सकता । यह भी निवेदन किया गया कि उक्त विनिश्चय में संविधान के अनुच्छेद 141 के अधीन कोई विधि घोषित नहीं की गई है, अतः वर्तमान मामले में उठाए गए जिन मुद्दों को अब उठाया गया है उन पर न तो कोई बहस हुई और न ही कोई चर्चा की गई थी ।

36. हम याची के विद्वान् काउंसेल की दलील से सहमत नहीं हैं । यद्यपि **एस. एन. पांडेय** (उपर्युक्त) वाले मामले में की रिट याचिका का निपटारा आरंभतः ही कर दिया गया था और आदेश संक्षेप में है, किंतु न्यायालय द्वारा उसका निपटारा गुणागुण के आधार पर किया गया था । **बी. प्रभाकर राव** (उपर्युक्त) वाले मामले में न्यायमूर्ति ओ. चिन्नप्पा रेड्डी ने पैरा 22 में यह मत व्यक्त किया था कि किसी रिट याचिका को आरंभतः ही खारिज कर दिए जाने से बाद में रिट याचिकाएं फाइल किए जाने पर संभवतः कोई रोक नहीं लगाई जा सकती किंतु उन्होंने साथ ही यह मत

भी व्यक्त किया कि आरंभतः ही किसी रिट याचिका को खारिज किए जाने में न्यायालय के विवेकाधिकार का निषेध किया जा सकता है । न्यायमूर्ति वी. खालिद ने निर्णय के पैरा 27(6) में यह और जोड़ते हुए स्थिति को स्पष्ट किया कि सामान्यतया यह न्यायालय उन रिट याचिकाओं को, जिनमें पुनः उन्हीं मुद्दों को पुनः उठाया जाता है और जहां किसी पूर्ववर्ती अवसर पर उस मामले की सुनवाई की जा चुकी है और उसे खारिज किया जा चुका है, ग्रहण करने और उनकी सुनवाई करने से इनकार कर देता है । ऐसा नहीं है कि इस न्यायालय को ऐसे मामलों को ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं है बल्कि वह अपने विवेकाधिकार का प्रयोग इसके विरुद्ध करता है । हम न्यायमूर्ति वी. खालिद के उपर्युक्त मत से पूर्णतया सहमत हैं । यह उसी विषयवस्तु से संबंधित याचिकाओं को, जहां कि उस मामले पर पूर्ववर्ती अवसर पर सुनवाई की जा चुकी है और उसे खारिज किया जा चुका हो, ग्रहण करने या उनकी सुनवाई करने की लोक नीति और न्यायिक विवेकाधिकार के सुपरिभाषित सिद्धांतों के विरुद्ध है ।

37. इस न्यायालय द्वारा **एस. एन. पांडेय** (उपर्युक्त) वाले मामले में व्यक्त किए गए मत से स्वतंत्र होकर उन कारणों से, जिन्हें हमने ऊपर उपदर्शित किया है, हम 1987 के अधिनियम में 2002 के संशोधन अधिनियम द्वारा अंतःस्थापित अध्याय 6क के आक्षेपित उपबंधों को जो चुनौती दी गई है उसमें कोई सार नहीं पाते हैं ।

38. तदनुसार हम रिट याचिका खारिज करते हैं । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जा रहा है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

ज.

भोपाल गैस पीड़ित महिला उद्योग संगठन और अन्य

बनाम

भारत संघ और अन्य

9 अगस्त, 2012

मुख्य न्यायमूर्ति एस. एच. कपाड़िया, न्यायमूर्ति ए. के. पटनायक और न्यायमूर्ति स्वतंत्र कुमार

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 21 – भोपाल गैस विभीषिका – जीवन का अधिकार – भोपाल गैस पीड़ितों की चिकित्सीय देखरेख – चिकित्सीय देखरेख आदि से संबंधित अनुसंधान कार्यों का भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् और उसके द्वारा स्थापित किसी इकाई द्वारा किया जाना – इस अनुसंधान कार्य का निजीकरण किए जाने तथा प्राइवेट अस्पतालों को मानीटरी समिति के नियंत्रणाधीन लाए जाने का अभिवाक् किया जाना – अनुसंधान कार्य का निजीकरण तथा प्राइवेट अस्पतालों को मानीटरी समिति के नियंत्रणाधीन लाना न्याय तथा गैस पीड़ितों के हित में नहीं होगा और इससे बहु-अंतरीय अनुसंधान कार्य आरंभ हो जाएगा जिसका कोई सारभूत परिणाम नहीं होगा अतः ऐसा किए जाने का कोई औचित्य और जरूरत नहीं है ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 21, अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 139क – भोपाल गैस विभीषिका – भोपाल गैस विभीषिका के पीड़ितों की बेहतर चिकित्सा देखरेख किए जाने के लिए याचिका – इस न्यायालय द्वारा पूर्व में ऐसे विभिन्न निदेश जारी किए गए थे जिससे गैस पीड़ितों के लिए बेहतर चिकित्सीय देखरेख सुनिश्चित हो सके तथापि, इस संबंध में अधिकारिता प्राप्त उच्च न्यायालय गैस पीड़ितों की अपेक्षाओं का और दिन-प्रतिदिन निदेश जारी करने तथा गैस पीड़ितों के लिए राहत और उनके पुनर्वास संबंधी कार्यक्रमों की समुचित प्रगति और क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने की बेहतर स्थिति में होगा ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 21 – लोक हित याचिका – भोपाल गैस विभीषिका – गैस पीड़ितों की चिकित्सीय देखरेख और पुनर्वास के लिए मानीटरी समिति – मानीटरी समिति की शक्तियां – समिति का भोपाल मेडिकल कालेज तथा प्राइवेट अस्पतालों को छोड़कर

सभी सरकारी अस्पतालों पर पूर्ण नियंत्रण होना – समिति को शिकायतों को सुनने, अभिलेख मंगाने आदि की शक्ति होना – समिति की सिफारिशों का अनुशंसाकारी और सुधारात्मक प्रकृति के होने तथा राज्य द्वारा उसकी सिफारिशों पर कार्रवाई न किए जाने की दशा में समिति को दंड देने की अधिकारिता प्राप्त नहीं है किंतु उसे इस बाबत उच्च न्यायालय के समक्ष जाने की अधिकारिता प्राप्त है ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 21 – भोपाल गैस विभीषिका – लोक हित याचिका – गैस पीड़ितों की चिकित्सीय देखरेख उनके लिए राहत और उनके पुनर्वास संबंधी कार्यक्रमों की समुचित प्रगति और कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए मानीटरी समिति को स्थान, अवसंरचना, मानदेय आदि प्रदान किया जाना अपेक्षित है जिससे अनुसंधान आदि कार्य परिणामोन्मुख हो और यथार्थ रूप में जारी रहे इसके लिए समुचित निदेश दिए जाते हैं जिनका कार्यान्वयन मानीटरी समिति द्वारा सुनिश्चित किया जाएगा ।

राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010 (2010 का 19) – धारा 14, धारा 29, धारा 30 और धारा 38 [सपठित पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा 3] – भोपाल गैस विभीषिका से संबंधित मामले, जिनमें कि पर्यावरणीय मुद्दे अंतर्वलित हों, चाहे वे राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010 के पूर्व फाइल किए गए हों या उसके पश्चात् फाइल किए गए हों वे हरित अधिकरण को अंतरित हो जाएंगे ।

इस मामले के तथ्य इस प्रकार हैं : ऐसी प्राकृतिक आपदाओं से भिन्न, जो मानव के विध्वंश से परे हैं, परिहार्य आपदाएं जो मनुष्य की गलती/उपेक्षा के परिणामस्वरूप घटित होती हैं, अत्यंत घातक और अंतर-पीढ़ी साम्या को पूर्णतया असंतुलित बना देती हैं और आने वाली पीढ़ियों के स्वास्थ्य और परिवेश पर अपूरणीय नुकसान कारित होता है । ऐसी आपदा कतिपय औद्योगिक क्रियाकलापों को करने में पूर्णतया उपेक्षा, योगदायी उपेक्षा अथवा आवश्यक पूर्वावधानियां बरतने में असफल रहने के कारण ही घटित हो सकती हैं । प्रायः प्रभावित पक्षों को परिहार्य नुकसान और प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है जो ऐसी आपदाओं के परिणामस्वरूप घटित होती हैं । इससे वित्तीय स्थिति, सामाजिक स्वास्थ्य और युवा पीढ़ी के, जिसमें संतानें भी सम्मिलित हैं, जीवन निर्वाह पर जो प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है उसके परिमाण और विस्तार का अनुमान लगाना भी असंभव है । ऐसी स्थिति में, और जहां विधि इस बारे में मौन हो या अपर्याप्त हो वहां न्यायालय को

यह सुनिश्चित करने की दृष्टि से कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के मूलभूत अधिकारों का उल्लंघन न हो, समुचित निदेशों और मार्गदर्शक सिद्धांतों का उपबंध करने के लिए निरपवादिक रूप से इन अंतरालों को भरने के लिए आगे आना पड़ा है । भोपाल गैस विभीषिका ऐसे असंतुलनों और प्रतिकूल प्रभावों का एक जीवंत उदाहरण है जहां कि न्यायालय के हस्तक्षेप से निर्धन और निराश्रितों को राहत प्रदान की गई तथा उन्हें पुनर्वासित किया गया है । भोपाल गैस रिसाव विभीषिका 2/3 दिसंबर, 1984 की मध्यरात्रि को घटित हुई थी । आरंभ में उससे प्रभावित हुए व्यक्तियों की निश्चित संख्या दर्शित करने संबंधी आंकड़े उपलब्ध नहीं थे । पूर्व में, यह महसूस किया गया था कि भोपाल स्थित यूनियन कार्बाइड इकाई से विषैली गैसों के रिसाव से केवल कुछ लोगों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल या अन्यथा प्रभाव पड़ा था । किंतु भोपाल गैस रिसाव के जीवन प्रणाली पर प्रभाव पर सतत अध्ययन संबंधी वैज्ञानिक आयोग ने जुलाई, 1987 में "भोपाल गैस विभीषिका : जीवन प्रणाली पर प्रभाव" नामक एक रिपोर्ट जारी की जिसमें इसके भिन्न उल्लेख था । समय व्यतीत होते-होते, प्रभावित लोगों की संख्या लगभग 5,00,000 तक पहुंच गई । इसी वैज्ञानिक आयोग द्वारा यह भी पाया गया था कि सामान्यतया महामारी विज्ञान संबंधी परियोजना को जो कार्य सौंपा गया था वह संभवतः संसाधनों, प्रशिक्षित कर्मचारिवृंद तथा भौतिक बल के अभाव के कारण अभी तक पूरा नहीं हो पाया है । वैज्ञानिक आयोग द्वारा इस विभीषिका की दो मुख्य स्थितियों से निपटने के लिए समय-समय पर विभिन्न उपायों की सिफारिश की गई थी । प्रथमतः, प्रभावित पीड़ितों की स्वास्थ्य देखरेख और द्वितीयतः एक ओर इस विभीषिका से उत्पन्न विकट समस्याओं से निपटने के उद्देश्य से और दूसरी ओर निवारक उपाय सुझाने के लिए अनुसंधान कार्य । 1998 की रिट याचिका (सिविल) सं. 50 भोपाल गैस पीड़ित महिला आयोग संगठन द्वारा संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन एक लोक हित याचिका के रूप में फाइल की गई थी । यह याचिका भोपाल गैस विभीषिका के पीड़ितों को संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उपलब्ध अधिकारों पर आधारित थी और यह प्रार्थना की गई थी कि वे प्रत्यर्थियों, भारत संघ और मध्य प्रदेश राज्य, से निःशुल्क तथा समुचित चिकित्सीय सहायता पाने के हकदार हैं । यह भी प्रार्थना की गई थी कि प्रत्यर्थियों को इस संबंध में प्रभावी उपाय करने का, जिनके अंतर्गत अन्यों के साथ-साथ निःशुल्क दवाएं उपलब्ध कराना तथा चिकित्सीय पुनर्वास की एक विस्तृत योजना तैयार करना भी है, निदेश दिया जाए जिससे गैस पीड़ितों को मूलभूत चिकित्सा सुविधाओं का उपलब्ध होना सुनिश्चित हो । अंत में, यह भी प्रार्थना की गई थी कि अनुसंधान परिषद् को

अनुसंधान अध्ययन पुनः आरंभ करने और उसके द्वारा प्रकाशित रिपोर्टों को सार्वजनिक करने का निदेश दिया जाए जिससे कि इस न्यायालय द्वारा समुचित निदेश जारी किए जाने का मूलभूत आधार मिल सके । इस न्यायालय के समक्ष कुछ अंतरिम आवेदन फाइल किए गए । इन अंतरिम आवेदनों में, भिन्न-भिन्न पक्षकारों ने अन्य बातों के साथ-साथ भोपाल स्मारक अस्पताल और अनुसंधान केंद्र के कार्यकरण, प्रबंधन और नियंत्रण के संबंध में भारत संघ को पूर्व भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास की समग्र निधियों का भार जैव प्रौद्योगिकी विभाग और परमाणु ऊर्जा विभाग के माध्यम से लेने का और भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास के लेखाओं का नए प्रबंध तंत्र को अंतरित करने, प्रभावित व्यक्तियों को "स्वास्थ्य पुस्तिकाएं" और "स्मार्ट कार्ड" जारी किए जाने संबंधी न्यायालयों के आदेशों का मध्य प्रदेश राज्य तथा भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् द्वारा अनुपालन किए जाने, भोपाल स्मारक अस्पताल और अनुसंधान केंद्र के अधीन तथा भोपाल गैस विभीषिका राहत और पुनर्वास विभाग के अधीन आने वाली विभिन्न चिकित्सा इकाइयों के बीच एक समान संप्रेषण पद्धति अपनाए जाने की प्रार्थना की जिससे कि गैस पीड़ितों में से प्रत्येक को पहुंची क्षति की प्रकृति और डिग्री के निबंधनों के अनुसार और चिकित्सा संबंधी अपेक्षाओं के भी निबंधनों के अनुसार समुचित निदान, अन्वेषण और उपचार के लिए समुचित केंद्रों में निर्दिष्ट किया जा सके । यह भी प्रार्थना की गई कि राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान को सभी गैस पीड़ितों के उचित चिकित्सीय अभिलेख बनाए रखने, गैस प्रभावित लोगों के बीच महारोग विज्ञान संबंधी अध्ययनों को सुव्यवस्थित बनाने और उसमें गति लाने और उस व्याधि जैसे श्वसनकारी रोग, नेत्र संबंधी रोग, जठरांत्र रोग, तंत्रिका संबंधी रोग, गुर्दे फेल होना, मूत्र संबंधी समस्या, स्त्री रोग संबंधी समस्या, मानसिक विकास आदि के प्रत्येक प्रवर्ग के उपचार के लिए उपचार प्रोटोकोल तैयार करने के लिए पूर्णतया कंप्यूटरीकृत और केंद्रगत नेटवर्क युक्त केंद्रीय रजिस्ट्री का गठन करने का निदेश दिया जाए । रिट याचिका का तदनुसार निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – भिन्न-भिन्न पक्षकारों की ओर से फाइल किए गए अन्य अंतरिम आवेदनों/उत्तरों में यह उल्लेख किया गया है कि मानीटरी समिति को भोपाल में स्थित सभी अस्पतालों, जिनके अंतर्गत गैर-सरकारी अस्पताल और क्लिनिक भी हैं, पर अधिकारिता प्राप्त होनी चाहिए । उनमें उन व्यक्तियों के विरुद्ध, जिन्हें समुचित उपचार देने अथवा मानीटारी समिति के निदेशों का पालन करने में व्यतिक्रम किए जाने का समय-समय पर दोषी पाया जाता है, दांडिक कार्रवाई किए जाने की सिफारिश करने संबंधी

शक्तियां भी निहित की जानी चाहिए । यह भी प्रार्थना की गई है कि भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् और/या उसके द्वारा स्थापित इकाई द्वारा किए जा रहे अनुसंधान कार्य के अलावा अनुसंधान संबंधी कार्य प्राइवेट प्रयोगशालाओं या प्राइवेट अनुसंधान इकाइयों द्वारा भी कराया जा सकता है । न्यायालय के समक्ष अभिलेखगत इस बात को भी प्रकट किया गया कि वस्तुतः इस आपदा से निपटने से संबंधित विभिन्न कृत्यकारियों के बीच कोई समन्वय नहीं है और सलाहकार समिति के विचारों पर कार्यान्वयन अभिकरणों द्वारा सम्यक् ध्यान नहीं दिया जाता है, जिससे प्रभावित पक्षकारों को और अधिक वेदना और यंत्रणा सहनी पड़ती है । इस न्यायालय द्वारा समय-समय पर जारी किए गए निदेशों के अतिरिक्त, इस न्यायालय के लिए स्पष्टता और यथार्थता लाने के लिए तथा उन विभिन्न आदेशों के प्रभावी कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए कुछ और निदेश जारी करना भी आवश्यक है जो उस व्यापक स्कीम का अभिन्न भाग बने रहेंगे जिसे गैस पीड़ितों की बेहतरी के लिए प्रवृत्त किए जाने की ईप्सा की गई है । जहां तक इस दलील का संबंध है कि अनुसंधान कार्य का निजीकरण किया जाना चाहिए और मानीटरी समिति को भोपाल स्थित उन सभी अस्पतालों पर, जिनके अंतर्गत प्राइवेट अस्पताल और क्लिनिक भी हैं जहां गैस पीड़ित व्यक्ति उपचार के लिए जाएं, नियंत्रण रखने के लिए सशक्त बनाया जाना चाहिए, उसमें कोई सार नहीं है । इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि इससे न तो कोई न्याय हो पाएगा और न ही यह गैस पीड़ितों के हित में होगा । इसके विपरीत, इससे बहु-अंतरीय अनुसंधान होना आरंभ हो जाएगा जिसका कोई सारभूत परिणाम नहीं निकलेगा । इसके अतिरिक्त, मानीटरी समिति का गठन इस न्यायालय द्वारा उसके आदेश द्वारा एक निश्चित उद्देश्य से और विनिर्दिष्ट रूप से समनुदिष्ट कृत्यों और निर्देश-निबंधनों सहित किया गया है । इसके कार्यकरण की परिधि का विस्तार करना या प्राइवेट अस्पतालों/क्लिनिकों को इस सशक्त मानीटरी समिति की अधिकारिता के अंतर्गत लाने का कोई औचित्य नहीं है और न ही इसकी कोई जरूरत है । अतः इन दोनों प्रार्थनाओं को नामंजूर किया जाना चाहिए और इन्हें नामंजूर किया जाता है । (पैरा 17 और 22)

निस्संदेह, भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास की स्थापना गैस पीड़ितों के चिकित्सीय उपचार और उनकी देखरेख करने के लिए की गई थी । इस न्यायालय द्वारा नियुक्त मानीटरी समिति और सलाहकार समिति दोनों के अपने-अपने भिन्न-भिन्न चिह्नित कार्यक्षेत्र थे, जबकि उनका उद्देश्य समान

था । सलाहकार समिति से उन मामलों पर, जिनको कार्यान्वयन अभिकरणों अर्थात् न्यास और साथ ही राज्य सरकार द्वारा किए जाने की प्रत्याशा की गई थी, अपनी विशेषज्ञता के अनुसार सलाह देना अपेक्षित था । दूसरी ओर, मानीटरी समिति से अनुसंधान कार्य के कार्यकरण तथा गैस प्रभावित पीड़ितों की समय पर चिकित्सीय देखरेख करने और उपचार उपलब्ध कराने की निगरानी करना अपेक्षित था । इन निकायों में से प्रत्येक निकाय के कृत्यों का पर्याप्त रूप से और स्पष्ट रूप से इस न्यायालय के भिन्न-भिन्न आदेशों में वर्णन किया गया था । संबंधित समितियों द्वारा रिपोर्टें प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् इस न्यायालय द्वारा इन इकाइयों के बेहतर और उत्कृष्ट कार्यपालन के लिए विभिन्न निदेश जारी किए गए थे जिससे कि गैस पीड़ितों की बेहतर चिकित्सीय देखरेख और अपेक्षित उपचार को सुनिश्चित किया जा सके । समय बीतने के साथ-साथ इस विभीषिका के आयाम और व्यापक हो गए और उद्वेग और बढ़ गया जिसके लिए सभी अभिकरणों द्वारा उच्चतर उत्तरदायित्वों का निर्वहन करना अपेक्षित था । संविधान के अनुच्छेद 21 के निबंधनों के अनुसार सभी गैस पीड़ित व्यक्ति अत्यधिक रूप से बहु-आयामी स्वास्थ्य देखरेख के हकदार थे क्योंकि उनकी व्याधियों के लिए वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी भी रूप में जिम्मेदार नहीं थे । यह मुख्यतया और निश्चित रूप से यूनियन कार्बाइड लिमिटेड की ओर से उपेक्षा बरते जाने के परिणामस्वरूप हुआ था जिसके कारण मेथाइल आइसोसाइनेट गैस का रिसाव हुआ था जिसके कारण न केवल प्रभावित व्यक्तियों के बल्कि उन बच्चों के भी, जो अभी गर्भ में ही थे, स्वास्थ्य को असुधार्य नुकसान पहुंचा । इस मामले में पहला और सर्वोपरि प्रश्न इस न्यायालय के विचारार्थ यह उठता है कि क्या इस मामले को इस न्यायालय के समक्ष ही लंबित रखा जाना चाहिए अथवा इसे इन सस्थानों के अति प्रभावपूर्ण और उद्देश्यपूर्ण प्रबंधन के लिए और यह सुनिश्चित करने के लिए कि वे "लोक सेवा और फायद" के प्रयोजन को, जिसके लिए कि उनका गठन किया गया है, समाधानपूर्वक पूरा करें, एक समुचित मंच, जिसके अंतर्गत उच्च न्यायालय भी है, को अंतरित कर दिया जाना चाहिए । इस न्यायालय की सुविचारित राय में, किसी अधिकारिता प्राप्त उच्च न्यायालय द्वारा दिन-प्रतिदिन निदेश जारी किया जाना उपयुक्त होगा । ऐसा न्यायालय गैस प्रभावित पीड़ितों की अपेक्षाओं का परिशीलन करने की तथा उक्त समितियों और संगठनों के कार्यकरण पर बेहतर नियंत्रण रखने की बेहतर स्थिति में होगा । ऐसा सीधे नियंत्रण से इन इकाइयों के कार्यकरण और उनके अंतर तथा अंतरा समन्वय में सुधार आएगा जिसके परिणामस्वरूप बेहतर परस्पर कार्यपालन हो सकेगा । (पैरा 18, 19, 20 और 21)

निश्चित तौर पर, ऐसे कतिपय अन्य मामले हैं जिन पर इस न्यायालय द्वारा ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है । प्राधिकारियों के कार्यकरण के बीच बेहतर समन्वय, ''स्वास्थ्य पुस्तिकाएं'' और ''स्मार्ट कार्ड'' गैस पीड़ितों को जारी किए जाने, अस्पतालों के चिकित्सा संबंधी अभिलेखों का कंप्यूटरीकरण किए जाने, भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास की समग्र निधि को तथा न्यास के प्रबंध को अपने हाथ में लेने से संबंधित मामले और ऐसे कतिपय मामले, जहां कि मध्य प्रदेश राज्य समितियों की सिफारिशों को प्रभावपूर्ण रूप से स्वीकार करने में असफल रहा है, कुछ ऐसे मामले हैं जहां कि हमें कतिपय अतिरिक्त निदेश जारी करने होंगे । हमारे समक्ष जो अभिलेखबद्ध सामग्री है उससे यह प्रतीत होता है कि मानीटरी समिति की बैठक तारीख 29 मार्च, 2011 को हुई थी । मानीटरी समिति द्वारा आयोजित एक बैठक में यह प्रस्ताव किया था कि भोपाल गैस पीड़ितों को उपलब्ध चिकित्सीय देखरेख की गुणता में सुधार लाने के लिए उसमें अतिरिक्त शक्तियां यथा - किसी व्यष्टिक गैस पीड़ित या गैस पीड़ितों के संगठन के प्रतिनिधियों द्वारा की गई शिकायतों के आधार पर मामलों को ग्रहण करने की शक्ति, राज्य सरकार के संबंधित विभाग को अवसंरचना उपलब्ध कराने का तथा सदस्यों आदि को बैठकों के लिए मानदेय दिए जाने का निदेश देने की शक्ति, ऐसे किसी शासकीय दस्तावेज की अध्यपेक्षा या ऐसे किन्हीं शासकीय अभिलेखों का निरीक्षण करना जिसे मानीटरी समिति सुसंगत पाती है , संबंधित संस्थानों और/या अधिकारियों से अपना परीक्षण कराए जाने और अपने मत लेखबद्ध कराने के लिए कहने, समिति को दवाओं आदि के नमूने, जिनकी विस्तृत परीक्षा के लिए समय-समय पर अपेक्षा की जाए, संगृहीत आदि करने, ऐसे किसी अधिकारी के विरुद्ध जो बिना किसी युक्तियुक्त कारण के मानीटरी समिति की सिफारिशों को विहित समय-सीमा के भीतर कार्यान्वित करने में असफल रहता है, दांडिक कार्रवाई किए जाने की सिफारिश, चयनित अभिकरणों को (जिनके अंतर्गत गैर-सरकारी अभिकरण भी हो सकते हैं) ऐसे अध्ययन कार्य देने, मानीटरी समिति द्वारा की गई सिफारिशों के कार्यान्वयन के लिए देख-रेख की गुणता का निर्धारण करने के लिए भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से विशेषज्ञों की सेवाएं लेने, शिकायतों को अभिलेखबद्ध करने तथा उन्हें दूर करने के लिए लोक सुनवाई की अपेक्षा करने तथा भोपाल पीड़ितों के बीच मानीटरी समिति के क्रियाकलापों के बारे में जागरुकता पैदा करने की शक्तियां निहित की जाएं । इस मामले के तथ्यात्मक पहलू की, विभिन्न आवेदकों द्वारा दिए गए सुझावों की, विशेषज्ञ निकायों की सिफारिशों की और उस

उद्देश्य की, जिसके लिए वर्तमान लोक हित याचिका संस्थित की गई थी, विस्तारपूर्वक अवेक्षा किए जाने पर इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि कुछ विनिर्दिष्ट निदेश दिए जाने की अनिवार्य रूप से जरूरत है । मानीटरी समिति को पहले ही प्राधिकृत किया जा चुका है और एत्द्द्वारा यह स्पष्ट किया जाता है कि वह शिकायतों की सुनवाई करेगी और यदि आवश्यक हो तो वह संबंधित अस्पताल या विभाग से अभिलेख भी मंगा सकती है, सरकारी सेवकों अथवा अस्पताल के कर्मचारियों के कथन लेखबद्ध कर सकती है और सरकार को समुचित कदम उठाए जाने के लिए सिफारिशें कर सकती है । यदि राज्य सरकार द्वारा उसके प्रति अनुस्मारक दिए जाने पर भी कोई कार्रवाई नहीं की जाती है तो समिति को समुचित निदेश जारी किए जाने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष जाने की पूरी अधिकारिता होगी । यह स्पष्ट किया जाता है कि सशक्त मानीटरी समिति को दंड देने संबंधी कोई अधिकारिता नहीं होगी । यह इस न्यायालय के आदेशों के अधीन उसमें निहित की गई शक्तियों और सौंपे गए कृत्यों के ढांचे के अंतर्गत ही सर्वथा अपने कृत्यों का निर्वहन करेगी । मानीटरी समिति के ऐसे सुझाव मुख्यतया अनुशंसाकारी और सुधारात्मक प्रकृति और विषय के होंगे । सशक्त मानीटरी समिति को अस्पताल अर्थात् भोपाल स्मारक अस्पताल और अनुसंधान केंद्र तथा गैस पीड़ितों की देखरेख करने वाले अन्य सरकारी अस्पतालों के समुचित कार्यकरण की निगरानी करने की पूर्ण अधिकारिता होगी । यह अधिकारिता गैस पीड़ितों से संबंधित समस्याओं और/या उस घटना से प्रत्यक्ष तथा पैदा होने वाली समस्याओं या उससे संबंधित समस्याओं तक के लिए ही सीमित होगी । यह स्पष्ट किया जाता है कि सशक्त मानीटरी समिति को भोपाल स्थित प्राइवेट अस्पतालों, परिचर्या गृहों और क्लिनिकों पर कोई अधिकारिता नहीं होगी । किंतु इससे मध्य प्रदेश राज्य और भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् उन गैस पीड़ितों के प्रति, जिनका उपचार प्राइवेट अस्पतालों, परिचर्या गृहों या क्लिनिकों में चल रहा है, अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने से मुक्त नहीं हो जाते हैं । (पैरा 23 और 35)

इस संबंध में मध्य प्रदेश राज्य को एतद्द्वारा यह निदेश दिया जाता है कि वह मानीटरी समिति और सलाहकार समिति को, उन्हें अपने कृत्यों का प्रभावपूर्ण रूप से पालन करने के लिए समुचित और पर्याप्त कार्यालय स्थान उपलब्ध कराए जाने को सुनिश्चित करे । जो स्थान उपलब्ध कराया जाए वह लोगों के पहुंच योग्य हो जिससे कि गैस पीड़ित व्यक्ति सुगमता से मानीटरी समिति के पास अपनी शिकायतों और कठिनाइयों को दूर करने

के लिए सुगमतापूर्वक पहुंच सकें । राज्य सरकार को इन समितियों को उपलब्ध कराए गए पृथक् कार्यालय स्थान में उन्हें समुचित अवसंरचना उपलब्ध कराने का भी निदेश दिया जाता है । सदस्य प्रत्येक बैठक के लिए 1,000/- रुपए मानदेय के रूप में प्राप्त करने के हकदार होंगे । भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् तथा राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान को सुनिश्चित करने का निदेश दिया जाता है कि अनुसंधान कार्य यथार्थ रूप से और शीघ्रतापूर्वक किया जाए और वे यह और सुनिश्चित करें कि उसका पूरा फायदा गैस पीड़ितों को मिले । भारत सरकार राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान की स्थापना किए जाने और अनुसंधान कार्य करने के लिए संकल्प पहले ही अपना चुकी है, जिसके लिए उसे सम्यक् अवसंरचना उपलब्ध कराई गई है । अतः इस न्यायालय को इस बात का कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि भोपाल में विभिन्न अस्पतालों में रोगियों की समुचित देखरेख और उपचार के लिए फायदे उपलब्ध कराते हुए सभी क्षेत्रों में अपेक्षित गति से अनुसंधान कार्य में प्रगति क्यों नहीं होनी चाहिए । भारत सरकार और मध्य प्रदेश राज्य को यह और स्पष्ट निदेश जारी किया जाता है कि वे यह सुनिश्चित करने के लिए कि विशेषज्ञता प्राप्त संस्थानों द्वारा अनुसंधान कार्य कराए जाने में कोई अड़चन नहीं आए, सभी प्रकार की वित्तीय या गैर वित्तीय सहायता प्रदान करें । (पैरा 35)

राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010 के उपबंधों और स्कीम को, विशिष्टतया धारा 14, धारा 29, धारा 30 और धारा 38(5) को ध्यान में रखते हुए यह निरापद रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम की अनुसूची 1 के अंतर्गत आने वाले मुद्दे और मामले राष्ट्रीय हरित अधिकरण के समक्ष संस्थित और वादानुगत किए जाने चाहिए । यह दृष्टिकोण उच्च न्यायालयों और राष्ट्रीय हरित अधिकरण के बीच के आदेशों में परस्पर विरोध होने की संभावना से बचने के लिए आवश्यक हो सकता है । अतः, यह स्पष्ट रूप से निदेश दिया जाता है कि राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् संस्थित और राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम के उपबंधों के अधीन और/या अनुसूची 1 के अंतर्गत आने वाले सभी मामले अंतरित हो जाएंगे और उन्हें केवल राष्ट्रीय हरित अधिकरण के समक्ष संस्थित किया जा सकेगा । इससे पर्यावरण के क्षेत्र में सभी संबद्ध व्यक्तियों को शीघ्रतापूर्वक और विशेषज्ञतापूर्ण न्याय प्रदान करने में सहायता मिलेगी । यह न्यायालय सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालयों के विचारार्थ एक चेतावनी अभिलेखबद्ध करना अनिवार्य समझता है कि राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम के प्रवृत्त होने

के पूर्व फाइल किए गए और लंबित पड़े उन मामलों पर, जिनमें पर्यावरणीय विधियों और/या राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम की अनुसूची 1 में विनिर्दिष्ट सात कानूनों में से किसी एक से संबंधित प्रश्न अंतर्वलित हैं, विशेषज्ञता प्राप्त अधिकरण, अर्थात् राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम के उपबंधों के अधीन सृजित राष्ट्रीय हरित अधिकरण द्वारा विचार किया जाएगा । न्यायालयों को अपने विवेकानुसार ऐसे मामले राष्ट्रीय हरित अधिकरण को अंतरित किए जाने की सलाह दी जाती है क्योंकि यह न्याय प्रशासन की दृष्टि से उपयुक्त होगा । (पैरा 38 और 39)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 1998 की रिट याचिका सं. 50.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल की गई रिट याचिका ।

याचियों की ओर से — सर्वश्री संजय पारिख, अग्नेय स्याल, (सुश्री) ममता सक्सेना, ए. एन. सिंह, (सुश्री) बुशरा परवीन, नवीर आर. नाथ, (सुश्री) करुणा नंदी और अनुपम लाल दास

प्रत्यर्थियों की ओर से — सर्वश्री मोहन पराशरन, अपर महा-सालिसिटर, विजय हंसारिया, राजू राम-चंद्रन, वरिष्ठ अधिवक्ता, एस. डब्ल्यू. ए. कादरी, (सुश्री) रेखा पांडेय, (सुश्री) सुनीता शर्मा, एम. खैराती, डी. एस. माहरा, (सुश्री) अनिल कटियार, बी. कृष्ण प्रसाद, सी. डी. सिंह, सन्नी चौधरी, अभिमन्यु, अयूष कुमार, (सुश्री) मधु सीकरी, ऋषि और एम. चन्द्रशेखर

न्यायालय का आदेश न्यायमूर्ति स्वतंत्र कुमार ने दिया ।

न्या. कुमार – ऐसी प्राकृतिक आपदाओं से भिन्न, जो मानव के विध्वंश से परे हैं, परिहार्य आपदाएं जो मनुष्य की गलती/उपेक्षा के परिणामस्वरूप घटित होती हैं, अत्यंत घातक और अंतर-पीढ़ी साम्या को पूर्णतया असंतुलित बना देती हैं और आने वाली पीढ़ियों के स्वास्थ्य और परिवेश पर अपूरणीय नुकसान कारित होता है । ऐसी आपदा कतिपय औद्योगिक क्रियाकलापों को करने में पूर्णतया उपेक्षा, योगदायी उपेक्षा अथवा

आवश्यक पूर्वावधानियां बरतने में असफल रहने के कारण ही घटित हो सकती हैं । प्रायः प्रभावित पक्षों को परिहार्य नुकसान और प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है जो ऐसी आपदाओं के परिणामस्वरूप घटित होती हैं । इससे वित्तीय स्थिति, सामाजिक स्वास्थ्य और युवा पीढ़ी के, जिसमें संतानें भी सम्मिलित हैं, जीवन निर्वाह पर जो प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है उसके परिमाण और विस्तार का अनुमान लगाना भी असंभव है । ऐसी स्थिति में, और जहां विधि इस बारे में मौन हो या अपर्याप्त हो वहां न्यायालय को यह सुनिश्चित करने की दृष्टि से कि भारत के संविधान (संक्षेप में "संविधान") के अनुच्छेद 21 के मूलभूत अधिकारों का उल्लंघन न हो, समुचित निदेशों और मार्गदर्शक सिद्धांतों का उपबंध करने के लिए निरपवादिक रूप से इन अंतरालों को भरने के लिए आगे आना पड़ा है ।

2. भोपाल गैस विभीषिका ऐसे असंतुलनों और प्रतिकूल प्रभावों का एक जीवंत उदाहरण है जहां कि न्यायालय के हस्तक्षेप से निर्धन और निराश्रितों को राहत प्रदान की गई तथा उन्हें पुनर्वासित किया गया है ।

3. भोपाल गैस रिसाव विभीषिका 2/3 दिसंबर, 1984 की मध्यरात्रि को घटित हुई थी । आरंभ में उससे प्रभावित हुए व्यक्तियों की निश्चित संख्या दर्शित करने संबंधी आंकड़े उपलब्ध नहीं थे । पूर्व में, यह महसूस किया गया था कि भोपाल स्थित यूनियन कार्बाइड इकाई से विषैली गैसों के रिसाव से केवल कुछ लोगों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल या अन्यथा प्रभाव पड़ा था । किंतु भोपाल गैस रिसाव के जीवन प्रणाली पर प्रभाव पर सतत अध्ययन संबंधी वैज्ञानिक आयोग (संक्षेप में "वैज्ञानिक आयोग") ने जुलाई, 1987 में "भोपाल गैस विभीषिका : जीवन प्रणाली पर प्रभाव" नामक एक रिपोर्ट जारी की जिसमें इसके भिन्न उल्लेख था । इस रिपोर्ट में यह कथन था कि भोपाल के अत्यधिक और सामान्यतया प्रभावित क्षेत्रों में इन विषैली गैसों और इस संकटकाल में प्रत्याशित अनेक दीर्घकालिक समस्याओं की चपेट में आने वाले लगभग 2,00,000 लोगों में से महामारी विज्ञान संबंधी सर्वेक्षणों के माध्यम से भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् (संक्षेप में "अनुसंधान परिषद्") द्वारा अब तक चपेट में आए जिन लोगों की देखभाल की गई है उसकी संख्या उस जनसंख्या के बीस प्रतिशत से भी कम है । समय व्यतीत होते-होते, प्रभावित लोगों की संख्या लगभग 5,00,000 तक पहुंच गई । इसी वैज्ञानिक आयोग द्वारा यह भी पाया गया था कि सामान्यतया महामारी विज्ञान संबंधी परियोजना को जो कार्य सौंपा गया था वह संभवतः संसाधनों, प्रशिक्षित कर्मचारिवृंद तथा भौतिक बल के अभाव के

कारण अभी तक पूरा नहीं हो पाया है । इस एक बार के विकट रासायनिक प्रभाव की चपेट में आए लोगों पर ऐसे बृहत दीर्घकालिक देशांतरीय अध्ययन कराने का अवसर संभवतः पुनः न मिले, अतः यह बहुत ही खेद का विषय है कि इस अवसर को गंवा दिया गया है । वैज्ञानिक आयोग द्वारा इस विभीषिका की दो मुख्य स्थितियों से निपटने के लिए समय-समय पर विभिन्न उपायों की सिफारिश की गई थी । प्रथमतः, प्रभावित पीड़ितों की स्वास्थ्य देखरेख और द्वितीयतः एक ओर इस विभीषिका से उत्पन्न विकट समस्याओं से निपटने के उद्देश्य से और दूसरी ओर निवारक उपाय सुझाने के लिए अनुसंधान कार्य ।

4. 1998 की रिट याचिका (सिविल) सं. 50 भोपाल गैस पीड़ित महिला आयोग संगठन द्वारा संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन एक लोक हित याचिका के रूप में फाइल की गई थी । यह याचिका भोपाल गैस विभीषिका के पीड़ितों को संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उपलब्ध अधिकारों पर आधारित थी और यह प्रार्थना की गई थी कि वे प्रत्यर्थियों, भारत संघ और मध्य प्रदेश राज्य, से निःशुल्क तथा समुचित चिकित्सीय सहायता पाने के हकदार हैं । यह भी प्रार्थना की गई थी कि प्रत्यर्थियों को इस संबंध में प्रभावी उपाय करने का, जिनके अंतर्गत अन्यों के साथ-साथ निःशुल्क दवाएं उपलब्ध कराना तथा चिकित्सीय पुनर्वास की एक विस्तृत योजना तैयार करना भी है, निदेश दिया जाए जिससे गैस पीड़ितों को मूलभूत चिकित्सा सुविधाओं का उपलब्ध होना सुनिश्चित हो सके । अंत में, यह भी प्रार्थना की गई थी कि अनुसंधान परिषद् को अनुसंधान अध्ययन पुनः आरंभ करने और उसके द्वारा प्रकाशित रिपोर्टों को सार्वजनिक करने का निदेश दिया जाए जिससे कि इस न्यायालय द्वारा समुचित निदेश जारी किए जाने का मूलभूत आधार मिल सके ।

5. इस न्यायालय द्वारा इस याचिका के फाइल किए जाने के समय से ही विभिन्न निदेश जारी किए जा रहे हैं और गैस पीड़ितों को समुचित चिकित्सीय उपचार उपलब्ध कराए जाने को सुनिश्चित करने के लिए भारत संघ तथा मध्य प्रदेश राज्य का कतिपय प्रभावपूर्ण और सकारात्मक उपाय करने का निदेश दिया गया है । इस न्यायालय द्वारा समय-समय पर जो भिन्न-भिन्न आदेश पारित किए गए हैं उनको विस्तारपूर्वक निर्दिष्ट करने का कोई फायदा नहीं है । किंतु हम उन कुछ महत्वपूर्ण आदेशों को, जिनका कि इस न्यायालय के समक्ष अब लंबित पड़े विवाद्यक से संबंध है, और अंतिम निदेश पारित करने के लिए संक्षेप में निर्दिष्ट करेंगे ।

6. पहली बात यह है कि अनुसंधान परिषद् ने भोपाल विभीषिका के ठीक पश्चात् कुछ अनुसंधान कार्य हाथ में लिया था और गैस पीड़ितों की चिकित्सीय समस्याओं से निपटने के लिए समुचित उपाय किए गए थे, जैसाकि राज्य और केंद्रीय सरकार द्वारा दावा किया गया है । किंतु, अभिलेख से ऐसा प्रतीत होता है और हमारे समक्ष यह प्रकथन किया गया है कि वर्ष 1994 के पश्चात्, अनुसंधान परिषद् ने अभिकथित रूप से भोपाल गैस विभीषिका से संबंधित समस्त आयुर्विज्ञान अनुसंधान कार्य को बंद करने का एक असंगत विनिश्चय किया था । प्रस्तुत याचिका में अनुसंधान कार्य को बंद करने के इस विनिश्चय की अत्यधिक आलोचना की गई है । मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध कुछ अपीलें फाइल की गई थीं, जिन्हें 1988 की सिविल अपील सं. 3187-3188 के रूप में रजिस्टर किया गया था और जिन्हें बाद में 1998 की रिट याचिका (सिविल) सं. 50 के साथ जोड़ दिया गया था । 1988 की सिविल अपील सं. 3187-3188 में **यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन लिमिटेड** बनाम **भारत संघ** नामक मामले में विभिन्न निदेशों की ईप्सा करते हुए अंतरिम आवेदन सं. 32-35, 36-37 फाइल किए गए थे, जिसके आधार पर इस न्यायालय ने तारीख 15 मई, 1988 के आदेश द्वारा भोपाल स्मारक अस्पताल और अनुसंधान केंद्र तथा भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास बनाए जाने का निदेश दिया था, जिसका कि गठन प्रभावित गैस पीड़ितों की स्वास्थ्य देखरेख के प्रयोजनों के लिए किया गया था । इस अस्पताल को आरंभ में आठ वर्ष की अवधि के लिए कार्य करना था । इस अवधि को समय-समय पर बढ़ाया गया था और अंततः तारीख 2 मई, 2006 के आदेश द्वारा इस अवधि को उसके उद्देश्य के पूरा होने तक के लिए बढ़ा दिया गया था । इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय द्वारा तारीख 17 जुलाई, 2007 के आदेश द्वारा गैस रिसाव के विभिन्न विषैले प्रभावों के संबंध में अनुसंधान परिषद् से रिपोर्ट की भी ईप्सा की गई थी ।

7. इस न्यायालय ने, 1998 की रिट याचिका (सिविल) सं. 50 में पारित तारीख 17 सितंबर, 2004 के आदेश द्वारा, मानीटरी समिति और "सलाहकार समिति" नामक दो विशेषज्ञ समितियों का गठन किए जाने का भी आदेश दिया था । अनुसंधान परिषद् द्वारा सलाहकार समिति का गठन भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् के महानिदेशक की अध्यक्षता के अधीन किया गया था और उसको सौंपे गए कृत्य निम्नलिखित अनुसार थे :–

"(i) भोपाल गैस पीड़ितों की विभिन्न व्याधियों के लिए सरकार

द्वारा चलाए जा रहे अस्पतालों/क्लिनिकों में चिकित्सा कर्मियों द्वारा इस समय अनुसरण की जा रही उपचार पद्धतियों की परीक्षा करना ;

(ii) भोपाल गैस पीड़ितों को दिए जाने वाले उपचार के समुचित आधार के संबंध में सिफारिश करना/सलाह देना ;

(iii) भोपाल गैस पीड़ितों को दिए जाने वाले उपचार की गुणता में सुधार लाने की दृष्टि से किए जाने वाले अनुसंधान की संरचना और उसकी अंतर्वस्तु के संबंध में सिफारिश करना/सलाह देना ।"

8. सलाहकार समिति अपनी रिपोर्टें समय-समय पर प्रस्तुत करती रही है और राज्य सरकार द्वारा यह आश्वासन दिया गया था कि उक्त समिति को सभी सुविधाएं और तकनीकी सहायता उपलब्ध कराई जाएगी । तत्पश्चात्, भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् ने पंद्रह राष्ट्रीय संस्थानों द्वारा कार्यान्वित महामारी विज्ञान से लेकर आण्विक जीवविज्ञान तक की श्रेणी की 24 प्रमुख अनुसंधान परियोजनाओं के रूप में अपना अनुसंधान अन्वेषण किया था । भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् के महानिदेशक द्वारा मध्य प्रदेश सरकार को लिखे तारीख 17 फरवरी, 2004 के पत्र द्वारा यह उपदर्शित किया गया था कि अनुसंधान संबंधी भावी जरूरतों के संबंध में भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् विशेषज्ञों की एक समिति का, जो कि वर्ष 1985 से वर्ष 1994 के बीच किए गए कार्य तथा बाद में भोपाल गैस विभीषिका राहत और पुनर्वास विज्ञान, भोपाल के अधीन वर्ष 1995 से आज तक की तारीख तक पुनर्वास अध्ययन केंद्र द्वारा किए गए अनुसंधान पर ध्यान देगी, गठन करके मध्य प्रदेश राज्य सरकार को सहायता प्रदान करेगी जिससे कि भावी अनुसंधान के लिए मार्गदर्शक सिद्धांतों का उपबंध किया जा सके । तारीख 24 जून, 2010 को संघ मंत्रिमंडल ने भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् को भोपाल में एक नया स्थायी अनुसंधान केंद्र स्थापित करने का निदेश देते हुए एक संकल्प पारित किया और राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान नामक एक केंद्र की तारीख 11 अक्तूबर, 2010 को स्थापना की गई थी । अनुसंधान कार्य भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान संस्थान द्वारा किया जा रहा है, जबकि यह अपनी रिपोर्ट समय-समय पर इस न्यायालय को प्रस्तुत करता है । भविष्य निरूपण दस्तावेज राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान द्वारा तैयार किया गया था ।

9. इस भविष्य निरूपण दस्तावेज की पृष्ठभूमि में यह कथन किया गया है कि भोपाल में मेथाइल आइसोसाइनेट (एम. आई. सी.) गैस रिसाव

की घटना के पश्चात् भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् द्वारा अनुसंधान कार्यक्रम को मानीटर करने के लिए तथा गैस रिसाव की विकृतता तथा घातकता को अभिलेखबद्ध करने तथा जनसंख्या नियंत्रण के लिए दीर्घकालिक महामारी विज्ञान संबंधी अध्ययन करने के लिए भी विभिन्न अनुसंधान कार्यक्रम किए गए थे ।

10. भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास के निर्बाध कार्य करने को सुनिश्चित करने की दृष्टि से एक समूह का सृजन किया गया था जिसे निधियां और अभिदाय उपलब्ध कराए गए थे जिनका समय-समय पर विनिधान किया गया था और इस समय यह कुल समग्र निधि 436.47 करोड़ रुपए की है । इस राशि में से 226.61 करोड़ रुपए का बैंकों में भारतीय रिजर्व बैंक के बंधपत्रों के रूप में, 196.54 करोड़ रुपए का बैंकों में सावधि रसीदों में, 11.65 करोड़ रुपए का बैंको में फ्लेक्सी/क्वांटम रूप में अल्पकालिक निक्षेपों के रूप में विनिधान किया गया है और 1.67 करोड़ रुपए का बैंक अतिशेष है ।

11. इस याचिका के लंबित रहने के दौरान, इस न्यायालय द्वारा स्वास्थ्य देखभाल और अनुसंधान कार्य, दोनों ही क्षेत्रों में न्यास के निर्बाध कार्य करने को सुनिश्चित करने के लिए अनेक निदेश जारी किए गए थे । इस न्यायालय द्वारा पारित कुछ महत्वपूर्ण आदेशों को हम निर्दिष्ट करते हैं ।

12. भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् द्वारा किए गए सर्वेक्षणों में, जिनके अंतर्गत वर्ष 1994 में किया गया महामारी विज्ञान संबंधी सर्वेक्षण भी है, चपेट में आए व्यक्तियों के बीच बहु-अंगीय रोग लक्षण दर्शित किए गए थे और प्रभावित व्यक्तियों में ये रोग लक्षण अत्यधिक बढ़ते देखे गए । वहां पर दवाओं की कमी थी और उसके सुधार के लिए अर्थात् दवाओं की कमी को पूरा करने के लिए अनेक अभ्यावेदन किए गए थे । न्यायालय ने तारीख 17 सितंबर, 2004 के आदेश द्वारा मानीटरी समिति तथा सलाहकार समिति के लिए निबंधन और शर्तें विहित की थीं । ये संबंधित समितियों के प्रक्रियात्मक विषयों, कार्यकरण और सौंपे गए कृत्यों के संबंध में थीं । मानीटरी समिति के सर्वोपरि कृत्य चिकित्सा उपस्करों की उपयुक्तता, उपलब्धता और अनुरक्षण को, पर्याप्त और सक्षम चिकित्सा कर्मियों को अभिनियोजित किए जाने को, अतिशय अस्पतालों में विनिर्दिष्टतया किए जा रहे उपचार और भोपाल गैस पीड़ितों के लिए सरकार द्वारा चलाए जा रहे इन अस्पतालों के कार्यकरण को, दवाओं के क्रय करने तथा पीड़ित व्यक्तियों को उन्हें उपलब्ध कराने आदि को मानीटर करने के थे । इसी

प्रकार, सलाहकार समिति को, अपने स्वयं के प्रक्रिया नियमों का अवधारण करते हुए सरकार द्वारा पीड़ितों की विभिन्न व्याधियों के संबंध में उनके लिए सरकार द्वारा चलाए जा रहे अस्पतालों में चिकित्सा कर्मियों द्वारा इस समय अनुसरण की जा रही चिकित्सीय पद्धतियों की परीक्षा करनी थी । इसके अतिरिक्त, इस समिति द्वारा पीड़ितों का जो उपचार किया जा रहा था, उसकी गुणता में सुधार लाने के लिए उपाप्त किए जाने वाले चिकित्सा उपस्करों और दवाओं की किस्म के संबंध में सिफारिश की जानी थी और सलाह दी जानी थी और साथ ही स्वास्थ्य शिक्षा में सामुदायिक स्वास्थ्य गतिविधियों की तथा रोकथाम और देखरेख के लिए सामुदायिक सहभागिता की शुरूआत और सिफारिश की जानी थी ।

13. तत्पश्चात्, तारीख 17 जुलाई, 2007 के आदेश द्वारा न्यायालय ने मध्य प्रदेश राज्य को अस्पताल के अभिलेखों को कम्प्यूटरीकृत करने के लिए आवश्यक उपाय करने का निदेश दिया जिससे कि रोगियों और/या उनकी व्याधियों के ब्यौरे का भविष्य में उनके समुचित उपचार को सुनिश्चित करने के लिए स्थायी अभिलेख रखा जा सके । उस समय, न्यायालय का ध्यान एक जिस बात पर गया वह यह थी कि वे रोगी भी, जो उस गैस विभीषिका के पीड़ित नहीं थे, अस्पताल में आने शुरू हो गए, जिसके कारण एक आदेश करना पड़ा था, जिसमें न्यायालय ने मानीटरी समिति से इस आशय की रिपोर्ट प्रस्तुत करने की अपेक्षा की कि क्या उन रोगियों को प्रदान की जा रही चिकित्सा सुविधाओं से गैस पीड़ितों के उपचार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है ।

14. ऊपर वर्णित दोनों समितियों द्वारा अनेक रिपोर्टें प्रस्तुत की गई थीं जिन पर इस न्यायालय द्वारा समय-समय पर विचार किया गया था । तारीख 15 नवंबर, 2007 के आदेश द्वारा न्यायालय ने मध्य प्रदेश राज्य से उन प्रश्नों का उत्तर देने की अपेक्षा की, जो मानीटरी समिति द्वारा, जो कि अस्पताल के कृत्यों और अनुसंधान कार्य की निगरानी कर रही थी, उठाए गए थे । भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् से भी गैस के विभिन्न विषैले प्रभावों के संबंध में रिपोर्ट देने की ईप्सा की गई थी ।

15. तत्पश्चात्, कतिपय घटनाओं के कारण, भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास के अध्यक्ष ने त्यागपत्र दे दिया । इन इकाइयों के समन्वयन और निर्बाध कार्यकरण में कमियां पाई गई थीं और इस संबंध में न्यायालय के समक्ष अनेक आवेदन फाइल किए गए थे । जैसे कि पहले अवेक्षा की जा चुकी है, न्यायालय ने तारीख 15 मई, 1988 के अपने आदेश द्वारा भोपाल

गैस पीड़ितों के उपचार के लिए एक अस्पताल की स्थापना किए जाने का निदेश दिया था, जिसके अग्रसरण में अस्पताल की स्थापना की गई थी और तारीख 11 अगस्त, 1988 को न्यास को भी रजिस्ट्रीकृत किया गया था । विनिश्चय करने की प्रक्रिया में अनिश्चितता विद्यमान थी । भारत के महान्यायवादी ने एक कथन किया कि भारत संघ ने भोपाल स्मारक अस्पताल और अनुसंधान केंद्र का कार्यभार संभालने और इसे जैव-प्रौद्योगिकी विभाग तथा परमाणु ऊर्जा विभाग के माध्यम से चलाने का विनिश्चय किया है । इस कथन के अग्रसरण में न्यायालय ने 2009 के अंतरिम आवेदन सं. 58-59 का निपटारा कर दिया और न्यायालय ने तारीख 19 जुलाई, 2010 के अपने आदेश द्वारा केंद्रीय सरकार को न्यास का परिसमापन करने तथा अस्पताल का प्रबंध ग्रहण करने संबंधी कदम उठाने का निदेश दिया ।

16. तत्पश्चात्, इस न्यायालय के समक्ष कुछ अंतरिम आवेदन फाइल किए गए । इन अंतरिम आवेदनों में, भिन्न-भिन्न पक्षकारों ने भोपाल स्मारक अस्पताल और अनुसंधान केंद्र के कार्यकरण, प्रबंधन और नियंत्रण के संबंध में विभिन्न निदेश जारी किए जाने की प्रार्थना की थी । 1988 की सिविल अपील सं. 3167-3188 में 2011 के अंतरिम आवेदन सं. 62-63 यह प्रार्थना करते हुए फाइल किए गए थे कि भारत संघ को पूर्व भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास की समग्र निधियों का भार जैव प्रौद्योगिकी विभाग और परमाणु ऊर्जा विभाग के माध्यम से लेने का और भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास के लेखाओं का नए प्रबंध तंत्र को अंतरित करने का निदेश दिया जाए । यह भी प्रार्थना की गई थी कि पूर्व भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास के प्रबंध तंत्र को समग्र निधियों के प्रबंध से तात्पर्यित उसके सभी उत्तरदायित्वों से मुक्त किया जाए और उसके लेखाओं के लिए नए प्राधिकृत हस्ताक्षरकर्ताओं को नियुक्त किया जाए । एक याची ने मुख्य याचिका में एक आवेदन, 2012 का अंतरिम आवेदन सं. 14, में मुख्यतया डा. सत्यमाला (सदस्य, सलाहकार समिति) द्वारा डा. पी. एम. भार्गव (सदस्य, सलाहकार समिति और अध्यक्ष कार्यदल) को लिखे पत्र का अवलंब लेते हुए फाइल किया था । उसमें यह प्रार्थना की गई थी कि इसे अभिलेख पर लाया जाए और सलाहकार समिति को तारीख 13 अगस्त, 2009, 22 सितंबर, 2010 तथा 10 दिसंबर, 2011 की अपनी बैठकों के कार्यवृत्त प्रस्तुत करने का निदेश दिया जाए । याची सं. 1 और 3 ने 2012 का अंतरिम आवेदन सं. 18 फाइल किया है, जिसमें उन्होंने कतिपय निदेश जारी किए जाने की प्रार्थना की है । इस आवेदन में, यह कथन किया गया

है कि मानीटरी समिति ने तारीख 10 जून, 2005, 31 अक्तूबर, 2005, 12 जुलाई, 2006, 20 दिसंबर, 2006, 7 अगस्त, 2007 तथा 27 मई, 2008 की अपनी रिपोर्टों में बार-बार अस्पताल के अभिलेखों को कम्प्यूटरीकृत करने की तथा गैस पीड़ितों को स्वास्थ्य पुस्तिकाएं जारी किए जाने की सिफारिश की है । यह प्रकथन किया गया है कि सलाहकार समिति की सिफारिशों का राज्य सरकार, भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् और यहां तक कि भारत संघ द्वारा भी अनुपालन नहीं किया गया है । उन्होंने समुचित "स्वास्थ्य पुस्तिकाएं" जारी किए जाने के अलावा गैस प्रभावित पीड़ितों को "स्मार्ट कार्ड" जारी किए जाने का भी सुझाव दिया है । राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान, जो कि भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान केंद्र द्वारा स्थापित किया गया है, (की स्थापना) यद्यपि एक सराहनीय कदम है, तथापि, इन आवेदकों के अनुसार राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान के कार्यकरण में बहुत अधिक वांछनीय है । यह अभिकथन किया गया है कि भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् में विनिश्चय करने वाले लोग यह सुनिश्चित करने के लिए अपनी ओर से वह सब कुछ कर रहे हैं जिससे कि गैस पीड़ितों के जीवन और स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण मुद्दे बड़े स्तर पर अछूते बने रहें । इस समय पूरा ध्यान राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान की अवसंरचना तैयार करने पर है । इस आधार पर, आवेदकों ने यह प्रार्थना की है कि प्रभावित व्यक्तियों को "स्वास्थ्य पुस्तिकाएं" और "स्मार्ट कार्ड" जारी किए जाने संबंधी न्यायालयों के आदेशों का मध्य प्रदेश राज्य तथा भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् द्वारा अनुपालन किया जाना चाहिए । उन्होंने भोपाल स्मारक अस्पताल और अनुसंधान केंद्र के अधीन तथा भोपाल गैस विभीषिका राहत और पुनर्वास विभाग के अधीन आने वाली विभिन्न चिकित्सा इकाइयों के बीच एक समान संप्रेषण पद्धति अपनाए जाने की प्रार्थना की जिससे कि गैस पीड़ितों में से प्रत्येक को पहुंची क्षति की प्रकृति और डिग्री के निबंधनों के अनुसार और चिकित्सा संबंधी अपेक्षाओं के भी निबंधनों के अनुसार समुचित निदान, अन्वेषण और उपचार के लिए समुचित केंद्रों में निर्दिष्ट किया जा सके । उन्होंने यह भी प्रार्थना की कि राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान को सभी गैस पीड़ितों के उचित चिकित्सीय अभिलेख बनाए रखने, गैस प्रभावित लोगों के बीच महारोग विज्ञान संबंधी अध्ययनों को सुव्यवस्थित बनाने और उसमें गति लाने और उस व्याधि जैसे श्वसनकारी रोग, नेत्र संबंधी रोग, जठरांत्र रोग, तंत्रिका संबंधी रोग, गुर्दे फेल होना, मूत्र संबंधी समस्या, स्त्री रोग संबंधी

समस्या, मानसिक विकास आदि के प्रत्येक प्रवर्ग के उपचार के लिए उपचार प्रोटोकोल तैयार करने के लिए पूर्णतया कंप्यूटरीकृत और केंद्रगत नेटवर्क युक्त केंद्रीय रजिस्ट्री का गठन करने का निदेश दिया जाए ।

17. भिन्न-भिन्न पक्षकारों की ओर से फाइल किए गए अन्य अंतरिम आवेदनों/उत्तरों में यह उल्लेख किया गया है कि मानीटरी समिति को भोपाल में स्थित सभी अस्पतालों, जिनके अंतर्गत गैर-सरकारी अस्पताल और क्लिनिक भी हैं, पर अधिकारिता प्राप्त होनी चाहिए । उनमें उन व्यक्तियों के विरुद्ध, जिन्हें समुचित उपचार देने अथवा मानीटारी समिति के निदेशों का पालन करने में व्यतिक्रम किए जाने का समय-समय पर दोषी पाया जाता है, दांडिक कार्रवाई किए जाने की सिफारिश करने संबंधी शक्तियां भी निहित की जानी चाहिएं । यह भी प्रार्थना की गई है कि भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् और/या उसके द्वारा स्थापित इकाई द्वारा किए जा रहे अनुसंधान कार्य के अलावा अनुसंधान संबंधी कार्य प्राइवेट प्रयोगशालाओं या प्राइवेट अनुसंधान इकाइयों द्वारा भी कराई जा सकती है । न्यायालय के समक्ष अभिलेखगत इस बात को भी प्रकट किया गया कि वस्तुतः इस आपदा से निपटने से संबंधित विभिन्न कृत्यकारियों के बीच कोई समन्वय नहीं है और सलाहकार समिति के विचारों पर कार्यान्वयन अभिकरणों द्वारा सम्यक् ध्यान नहीं दिया जाता है, जिससे प्रभावित पक्षकारों को और अधिक वेदना और यंत्रणा सहनी पड़ती है ।

18. निस्संदेह, भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास की स्थापना गैस पीड़ितों के चिकित्सीय उपचार और उनकी देखरेख करने के लिए की गई थी । इस न्यायालय द्वारा नियुक्त मानीटरी समिति और सलाहकार समिति दोनों के अपने-अपने भिन्न-भिन्न चिह्नित कार्य क्षेत्र थे, जबकि उनका उद्देश्य समान था । सलाहकार समिति से उन मामलों पर, जिनको कार्यान्वयन अभिकरणों अर्थात् न्यास और साथ ही राज्य सरकार द्वारा किए जाने की प्रत्याशा की गई थी, अपनी विशेषज्ञता के अनुसार सलाह देना अपेक्षित था । दूसरी ओर, मानीटरी समिति से अनुसंधान कार्य के कार्यकरण तथा गैस प्रभावित पीड़ितों की समय पर चिकित्सीय देखरेख करने और उपचार उपलब्ध कराने की निगरानी करना अपेक्षित था । इन निकायों में से प्रत्येक निकाय के कृत्यों का पर्याप्त रूप से और स्पष्ट रूप से इस न्यायालय के भिन्न-भिन्न आदेशों में वर्णन किया गया था । संबंधित समितियों द्वारा रिपोर्टें प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् इस न्यायालय द्वारा इन इकाइयों के बेहतर और उत्कृष्ट कार्यपालन के लिए विभिन्न निदेश जारी

किए गए थे जिससे कि गैस पीड़ितों की बेहतर चिकित्सीय देखरेख और अपेक्षित उपचार को सुनिश्चित किया जा सके ।

19. जैसेकि हम पहले ही अवेक्षा कर चुके हैं, समय बीतने के साथ-साथ इस विभीषिका के आयाम और व्यापक हो गए और उद्वेग और बढ़ गया जिसके लिए सभी अभिकरणों द्वारा उच्चतर उत्तरदायित्वों का निर्वहन करना अपेक्षित था । संविधान के अनुच्छेद 21 के निबंधनों के अनुसार सभी गैस पीड़ित व्यक्ति अत्यधिक रूप से बहु-आयामी स्वास्थ्य देखरेख के हकदार थे क्योंकि उनकी व्याधियों के लिए वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी भी रूप में जिम्मेदार नहीं थे । यह मुख्यतया और निश्चित रूप से यूनियन कार्बाईड लिमिटेड की ओर से उपेक्षा बरते जाने के परिणामस्वरूप हुआ था जिसके कारण मेथाइल आइसोसाइनेट गैस का रिसाव हुआ था जिसके कारण न केवल प्रभावित व्यक्तियों के बल्कि उन बच्चों के भी, जो अभी गर्भ में ही थे, स्वास्थ्य को असुधार्य नुकसान पहुंचा ।

20. पहला और सर्वोपरि प्रश्न इस न्यायालय के विचारार्थ यह उठता है कि क्या इस मामले को इस न्यायालय के समक्ष ही लंबित रखा जाना चाहिए अथवा इसे इन संस्थानों के अति प्रभावपूर्ण और उद्देश्यपूर्ण प्रबंधन के लिए और यह सुनिश्चित करने के लिए कि वे "लोक सेवा और फायद" के प्रयोजन को, जिसके लिए कि उनका गठन किया गया है, समाधानपूर्वक पूरा करें, एक समुचित मंच, जिसके अंतर्गत उच्च न्यायालय भी है, को अंतरित कर दिया जाना चाहिए । इस न्यायालय के समक्ष जो विभिन्न आवेदन फाइल किए गए हैं और समितियों द्वारा जो रिपोर्टें प्रस्तुत की गई हैं, जैसाकि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, वे गैस पीड़ितों को अपेक्षित सहायता उपलब्ध कराने के संबंध में हैं क्योंकि पीड़ित निर्धन व्यक्तियों के लिए समय-समय पर समुचित निदेश जारी किए जाने के लिए इस न्यायालय के समक्ष पहुंच पाना संभव नहीं है । इस न्यायालय द्वारा मूलभूत अपेक्षाओं का उपबंध करने तथा सलाहकार समिति और मानीटरी समिति का गठन किए जाने के संबंध में पहले ही आदेश किया जा चुका है । यद्यपि भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास का भारत संघ द्वारा स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के माध्यम से प्रबंध ग्रहण कर लिया गया था, तथापि, अस्पताल को सीधे जैव प्रौद्योगिकी विभाग और परमाणु ऊर्जा विभाग के नियंत्रणाधीन कर दिया गया था ।

21. हमारी सुविचारित राय में, किसी अधिकारिता प्राप्त उच्च न्यायालय द्वारा दिन-प्रतिदिन निदेश जारी किया जाना उपयुक्त होगा । ऐसा

न्यायालय गैस प्रभावित पीड़ितों की अपेक्षाओं का परिशीलन करने की तथा उक्त समितियों और संगठनों के कार्यकरण पर बेहतर नियंत्रण रखने की बेहतर स्थिति में होगा । ऐसा सीधे नियंत्रण से इन इकाइयों के कार्यकरण और उनके अंतर तथा अंतरा समन्वय में सुधार आएगा जिसके परिणामस्वरूप बेहतर परस्पर कार्यपालन हो सकेगा । अतः हम न केवल इसे वांछनीय समझते हैं बल्कि यह उन सभी संबद्ध व्यक्तियों के हित में भी होगा कि इस मामले पर अब इसके पश्चात् से मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की जबलपुर स्थित न्यायपीठ द्वारा विचार किया जाए ।

22. इस न्यायालय द्वारा समय-समय पर जारी किए गए निदेशों के अतिरिक्त, इस न्यायालय के लिए स्पष्टता और यथार्थता लाने के लिए तथा उन विभिन्न आदेशों के प्रभावी कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए कुछ और निदेश जारी करना भी आवश्यक है जो उस व्यापक स्कीम का अभिन्न भाग बने रहेंगे जिसे गैस पीड़ितों की बेहतरी के लिए प्रवृत्त किए जाने की ईप्सा की गई है । जहां तक इस दलील का संबंध है कि अनुसंधान कार्य का निजीकरण किया जाना चाहिए और मानीटरी समिति को भोपाल स्थित उन सभी अस्पतालों पर, जिनके अंतर्गत प्राइवेट अस्पताल और क्लिनिक भी हैं जहां गैस पीड़ित व्यक्ति उपचार के लिए जाएं, नियंत्रण रखने के लिए सशक्त बनाया जाना चाहिए, उसमें कोई सार नहीं है । हमारी यह सुविचारित राय है कि इससे न तो कोई न्याय हो पाएगा और न ही यह गैस पीड़ितों के हित में होगा । इसके विपरीत, इससे बहु-अंतरीय अनुसंधान होना आरंभ हो जाएगा जिसका कोई सारभूत परिणाम नहीं निकलेगा । इसके अतिरिक्त, मानीटरी समिति का गठन इस न्यायालय द्वारा उसके तारीख 17 सितंबर, 2004 के आदेश द्वारा एक निश्चित उद्देश्य से और विनिर्दिष्ट रूप से समनुदिष्ट कृत्यों और निर्देश-निबंधनों सहित किया गया है । इसके कार्यकरण की परिधि का विस्तार करना या प्राइवेट अस्पतालों/क्लिनिकों को इस सशक्त मानीटरी समिति की अधिकारिता के अंतर्गत लाने का कोई औचित्य नहीं है और न ही इसकी कोई जरूरत है । अतः इन दोनों प्रार्थनाओं को नामंजूर किया जाना चाहिए और हम इन्हें नामंजूर करते हैं ।

23. निश्चित तौर पर, ऐसे कतिपय अन्य मामले हैं जिन पर इस न्यायालय द्वारा ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है । प्राधिकारियों के कार्यकरण के बीच बेहतर समन्वय, "स्वास्थ्य पुस्तिकाएं" और "स्मार्ट कार्ड" गैस पीड़ितों को जारी किए जाने, अस्पतालों के चिकित्सा संबंधी अभिलेखों का कंप्यूटरीकरण किए जाने, भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास की समग्र

निधि को तथा न्यास के प्रबंध को अपने हाथ में लेने से संबंधित मामले और ऐसे कतिपय मामले, जहां कि मध्य प्रदेश राज्य समितियों की सिफारिशों को प्रभावपूर्ण रूप से स्वीकार करने में असफल रहा है, कुछ ऐसे मामले हैं जहां कि हमें कतिपय अतिरिक्त निदेश जारी करने होंगे । हमारे समक्ष जो अभिलेखबद्ध सामग्री है उससे यह प्रतीत होता है कि मानीटरी समिति की बैठक तारीख 29 मार्च, 2011 को हुई थी । इस बैठक में समिति ने यह प्रस्ताव किया था कि भोपाल गैस पीड़ितों को उपलब्ध चिकित्सीय देखरेख की गुणता में सुधार लाने के लिए उसमें अतिरिक्त शक्तियां निहित की जाएं । समिति का प्रस्ताव निम्नलिखित अनुसार है :–

> "भोपाल गैस पीड़ितों के चिकित्सीय पुनर्वास से संबंधित मानीटरी समिति यह प्रस्ताव करती है कि भोपाल गैस पीड़ितों को उपलब्ध चिकित्सीय देखरेख की गुणता में सुधार लाने के लिए माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा उसमें निम्नलिखित शक्तियां निहित की जानी चाहिएं :–
>
> 1. किसी व्यष्टिक गैस पीड़ित या गैस पीड़ितों के संगठन के प्रतिनिधियों द्वारा की गई शिकायतों के आधार पर मामलों को ग्रहण करने की शक्ति । ऐसी शिकायतें भोपाल गैस विभीषिका राहत और पुनर्वास विभाग के किसी व्यष्टिक पदाधिकारी या गैस पीड़ितों की चिकित्सीय देखरेख के लिए बनाए गए अस्पताल और अन्य स्वास्थ्य देखरेख केंद्रों में के या ऐसे किसी अभिकरण द्वारा, जो भोपाल गैस विभीषिका राहत और पुनर्वास विभाग के अधीन कार्य कर रहा हो, नियोजित किसी कर्मचारी के विरुद्ध की जा सकेंगी ।
>
> 2. राज्य सरकार के संबंधित विभाग को यह निदेश देने की शक्तियां कि वे ऐसी सुविधाओं को जैसेकि पर्याप्त फर्नीचर तथा साज-सज्जा सहित कार्यालय स्थान, कार्यालय कर्मचारिवृंद जिसके अंतर्गत समन्वय अधिकारी के रूप में कार्य करने के लिए एक सचिव और एक डाक्टर, हिंदी और अंग्रेजी, दोनों, का एक-एक आशुलिपिक-सह-टाइपिस्ट और एक चपरासी तथा सदस्यों को लाने-ले जाने के लिए कम से कम पांच व्यक्तियों के बैठने की क्षमता वाला एक वाहन, सुनिश्चित कराए ।
>
> 3. समिति के सदस्यों और ऐसे अन्य व्यक्तियों को भी, जिन्हें समिति का कुछ विनिर्दिष्ट कार्य सौंपा जाए, मानदेय का

संदाय करने का उपबंध होना चाहिए । यह प्रस्ताव किया जाता है कि प्रति बैठक या अस्पताल निरीक्षण के लिए 1,000/- रुपए की मंजूरी प्रदान की जाए ।

4. निम्नलिखित मामलों की बाबत शक्तियां, अर्थात् –

(i) ऐसे किसी शासकीय दस्तावेज की अध्यपेक्षा करना या ऐसे किन्हीं शासकीय अभिलेखों का निरीक्षण करना जिसे मानीटरी समिति सुसंगत पाती है ।

(ii) संबंधित संस्थानों और/या अधिकारियों से अपना परीक्षण कराए जाने और अपने मत लेखबद्ध कराने के लिए कहना ।

(iii) इस समिति को दवाओं आदि के नमूने, जिनकी विस्तृत परीक्षा के लिए समय-समय पर अपेक्षा की जाए, संगृहीत करने की सुविधाएं प्राप्त होने चाहिएं और इस संबंध में ओषधि नियंत्रक से अनुरोध किया जा सकता है । दवाओं, खाद्य वस्तुओं और अन्य मदों के, जो चिकित्सीय देखरेख सुविधा केंद्र में उपलब्ध कराई जा रही चिकित्सीय देखरेख की गुणता का निर्धारण करने के लिए आवश्यक हों, नमूनों के संग्रहण के लिए ओषधि नियंत्रक को उस जांच की, जहां कहीं वह आवश्यक हो, प्रक्रिया को पूरा करने के लिए ओषधि निरीक्षक को तैनात करने का अनुरोध किया जा सकता है ।

5. ऐसे किसी अधिकारी के विरुद्ध, जो बिना किसी युक्तियुक्त कारण के मानीटरी समिति की सिफारिशों को विहित समय-सीमा के भीतर कार्यान्वित करने में असफल रहता है, दांडिक कार्रवाई किए जाने के सिफारिश करने की शक्तियां ।

6. चयनित अभिकरणों को (जिनके अंतर्गत गैर-सरकारी अभिकरण भी हो सकते हैं) ऐसे अध्ययन कार्य, जिसकी मानीटरी समिति की अधिकारिता के भीतर आने वाले विभिन्न स्वास्थ्य देखरेख सुविधा केंद्रों में उपलब्ध कराई जा रही देखरेख की गुणता का समुचित निर्धारण करने के लिए समय-समय पर अपेक्षा की जाए, देने की शक्तियां ।

7. मानीटरी समिति द्वारा की गई सिफारिशों के कार्यान्वयन के लिए देख-रेख की गुणता का निर्धारण करने के लिए भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से विशेषज्ञों की सेवाएं लेने की शक्तियां ।

8. शिकायतों को अभिलेखबद्ध करने तथा उन्हें दूर करने के लिए लोक सुनवाई की अपेक्षा करने तथा भोपाल गैस पीड़ितों के बीच मानीटरी समिति के क्रियाकलापों के बारे में जागरुकता पैदा करने की शक्तियां ।

भोपाल गैस पीड़ितों के चिकित्सीय पुनर्वास से संबद्ध मानीटरी समिति को भोपाल गैस पीड़ितों के चिकित्सीय पुनर्वास के लिए बनाए गए सभी अस्पतालों, क्लिनिकों, दैनिक देखरेख केंद्रों और अन्य स्वास्थ्य देखरेख इकाइयों और केंद्रों पर, जिनके अंतर्गत वे भी हैं जो भोपाल गैस विभीषिका राहत और पुनर्वास विभाग द्वारा चलाए जा रहे हैं, अधिकारिता होगी ।

प्राधिकरण की पूर्वगामी शक्ति और कृत्य माननीय उच्चतम न्यायालय के पर्यवेक्षण और नियंत्रण के अधीन होंगे । माननीय उच्चतम न्यायालय के तारीख 10 जनवरी, 2011 के निदेश को मानीटरी समिति द्वारा ध्यान में रखा जाएगा ।

24. मानीटरी समिति की इन सिफारिशों के संबंध में राज्य द्वारा एक पृथक् उत्तर फाइल करके उत्तर दिया गया है । इस उत्तर में, यह कथन किया गया है कि सभी अस्पतालों और क्लिनिकों पर अधिकारिता के संबंध में की गई सिफारिश इस न्यायालय के तारीख 17 सितंबर, 2004 को किए गए आदेश के निबंधनों के प्रतिकूल है । प्रभावित पक्षकारों से शिकायतें प्राप्त करने की शक्ति पहले ही अनुज्ञात की जा चुकी है । मानीटरी समिति विभिन्न विभागों और अस्पताल से अभिलेख की अध्यपेक्षा करके तथा अधिकारियों की परीक्षा करके सुनवाई तथा साक्ष्य संगृहीत करने के लिए भी सशक्त है । राज्य को ओषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 तथा ओषधि और प्रसाधन सामग्री नियम, 1945 के उपबंधों के अनुसार दवाओं के नमूने संगृहीत किए जाने के प्रति भी कोई आक्षेप नहीं है । राज्य सरकार का पक्षकथन यह भी है कि उसके द्वारा मानीटरी समिति द्वारा जारी किए गए अधिकांश निदेशों को कार्यान्वित कर दिया गया है ।

25. इस न्यायालय का ध्यान एक अन्य पहलू की ओर आकर्षित किया गया है वह यह है कि मानीटरी समिति के कार्यालय के लिए पर्याप्त स्थान उपलब्ध नहीं है । इससे लोगों को इस छोटे से स्थान पर, जो कि

उक्त समिति के राज्य द्वारा उपलब्ध कराया गया है, आने-जाने में कठिनाई होती है । इससे इस न्यायालय के आदेशों के अनुसार उसके कार्य करने में रुकावट आ रही है ।

26. हमारे समक्ष आम तौर पर इस बात की सहमति व्यक्त की गई है कि समग्र धनराशि (निधि) पूर्णतया स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, स्वास्थ्य अनुसंधान विभाग को अंतरित हो गई है और उन्होंने भोपाल स्मारक अस्पताल और अनुसंधान केंद्र का भी प्रबंध ग्रहण कर लिया है ।

27. अतः, हमारे लिए उपर्युक्त आवेदन में की गई विभिन्न प्रार्थनाओं पर तथा उस पृष्ठभूमि पर, जिसके आधार पर वह आवेदन फाइल किया गया है, उसके सही परिप्रेक्ष्य में विचार करना आवश्यक है । हमें एक संतुलित दृष्टिकोण अपनाना होगा जिससे गैस पीड़ितों के पक्ष में यथार्थ अनुसंधान और बेहतर चिकित्सीय देखरेख का उद्देश्य पूरा हो सके । भारत संघ द्वारा भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् को भोपाल में एक स्थानीय अनुसंधान केंद्र स्थापित किए जाने का निदेश देते हुए एक संकल्प पहले ही पारित कर दिया गया है और जैसे कि पहले अवेक्षा की जा चुकी है राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान नामक एक संस्थान की पहले ही स्थापना की जा चुकी है । इसी से ही भारत सरकार के अनुसंधान संबंधी कार्य के लिए आवश्यक तंत्र का उपबंध करने तथा उसे उपाप्त करने और साथ ही अत्यधिक जरूरी उस वैज्ञानिक जनशक्ति और अनुसंधान, जो गैस प्रभावित व्यक्तियों से संबंधित अनुसंधान क्रियाकलापों में सहायक हो सकता है, की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने का आशय पर्याप्त रूप से दर्शित होता है ।

28. सलाहकार समिति अपने सलाह देने संबंधी कृत्य का निरंतर पालन कर रही है । मध्य प्रदेश राज्य और भारत सरकार की ओर से निश्चित उत्तर फाइल किए गए हैं जिनमें उन्होंने अपना पूर्ण सहयोग देने और इन समितियों की सिफारिशों को पूरी तरह कार्यान्वित किए जाने को सुनिश्चित किया है जिससे कि प्रभावित व्यक्तियों को पर्याप्त चिकित्सीय सुविधाएं उपलब्ध कराई जा सकें तथा अनुसंधान कार्य को पूरा किया जा सके ।

29. जैसे कि पहले अवेक्षा की गई है, मानीटरी समिति द्वारा तारीख 29 मार्च, 2011 की अपनी रिपोर्ट में की गई सिफारिशों को, ऐसे प्रस्तावों में से दो को छोड़कर, मध्य प्रदेश राज्य द्वारा मोटे तौर पर स्वीकार कर लिया गया है । गैर-सरकारी संगठनों और बाहर के विशेषज्ञों को (चिकित्सीय) देखरेख तथा अनुसंधान कार्य की गुणता का निर्धारण करने में, सहायता प्रदान किए जाने के मुद्दे पर राज्य सरकार को जो संकोच है,

उसके कारण विधिमान्य और ठोस प्रतीत होते हैं । हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि सशक्त मानीटरी समिति की यथा ऊपरवर्णित सिफारिशों के बारे में यह नहीं समझा जाए कि वे इस न्यायालय द्वारा स्वीकार कर ली गई हैं, सिवाय उस दशा के, जहां इस न्यायालय द्वारा इस आदेश के प्रवर्तनशील भाग में उस निमित्त विनिर्दिष्ट रूप से निदेश जारी किए गए हों ।

30. भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् ने तारीख 12 अप्रैल, 2012 के पत्र द्वारा, इस न्यायालय के तारीख 19 जुलाई, 2010 के आदेश के प्रति निर्देश करते हुए, यह सूचित किया था कि भोपाल स्मारक अस्पताल और अनुसंधान केंद्र का भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास का परिसमापन कर दिए जाने के पश्चात् प्रशासनिक नियंत्रण स्वास्थ्य अनुसंधान विभाग, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार को अंतरित कर दिया गया है और भोपाल स्मारक अस्पताल और अनुसंधान केंद्र से संबंधित अन्य सभी मामलों पर, जिनके अंतर्गत प्रशासनिक, वित्तीय और विधिक मामले भी हैं, स्वास्थ्य अनुसंधान विभाग द्वारा कार्रवाई की जाएगी । यह भी स्वीकार किया गया है कि सभी दस्तावेज, न्यास की समग्र निधि के सिवाय, अंतरित कर दिए गए हैं । यह सुझाव दिया गया था कि भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास की समग्र निधि का, संचित ब्याज सहित, मूल दस्तावेजों/रसीदों सहित, सचिव, स्वास्थ्य अनुसंधान विभाग सह-महानिदेशक, भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् को अंतरण कर दिया जाए, और यह भी कथन किया गया है कि भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास का इस न्यायालय के निदेशानुसार तारीख 19 जुलाई, 2010 से परिसमापन कर दिया जाना है ।

31. भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास का तारीख 11 अगस्त, 1998 की न्यास विलेख के अधीन गठन किया गया था । तब से उसने मानीटरी समिति, सलाहकार समिति के मार्गनिर्देशन में तथा इस न्यायालय के आदेशों के अनुसार अपने क्रियाकलाप किए हैं । भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास सभी समयों के लिए अप्रतिसंहरणीय बना रहना था और न्यास विलेख का भारतीय निधियों के अनुसार अर्थान्वयन किया जाना था और प्रभाव होना था ।

32. इस विलेख के खंडों के निबंधनों के अनुसार आरंभ में न्यास के कब्जे में न्यास की संपत्ति और उसकी आय रखी जानी थी । यह कब्जा उसमें कथित प्रयोजनों और उद्देश्यों के लिए, जो अस्पताल की अवसंरचना का तथा गैस प्रभावित पीड़ितों के मूलवंश, जाति अथवा पंथ का विभेद

किए बिना मुख्यतया निर्धन लोगों को चिकित्सीय सहायता प्रदान किए जाने के संबंध में थे, आठ वर्ष की अवधि के दौरान या उक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात्, दोनों ही दशाओं में, बना रहना था ।

33. न्यास के लेखाओं की संपरीक्षा की गई थी और चार्टर्ड अकाउंटेंट ने तारीख 15 जुलाई, 2011 की अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी जिसमें भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास के लेखाओं में किसी अनियमितता या आक्षेपों का उल्लेख नहीं किया गया था । यह रिपोर्ट भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास के शासी निकाय के सदस्यों को प्रस्तुत की गई थी । चार्टर्ड अकाउंटेंट की राय में, भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास के तारीख 19 जुलाई, 2010 तक के तुलनपत्र और लेखाओं में जिस जानकारी को देना अपेक्षित था, वह सही और उचित परिप्रेक्ष्य में है और वह पूर्णतया भारत में साधारणतया स्वीकृत लेखांकन के सिद्धांतों के अनुरूप है । ऐसी ही टिप्पणियां आय-व्यय लेखा के बारे में की गई हैं जिसमें कि उक्त अवधि के लिए व्यय से अधिक आय दर्शित की गई है ।

34. तथापि, यह स्वयं भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास के हित में होगा विशेषकर तब जब भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास का प्रबंध और समग्र निधि का भारत संघ को अंतरित कर दिया गया है, कि सरकारी अभिकरण भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास के लेखाओं का नियमित रूप से निरीक्षण करने के अतिरिक्त जुलाई, 2010 को समाप्त होने वाली अवधि के लिए अपनी अंतिम रिपोर्ट भी दे । मध्य प्रदेश राज्य का महालेखापरीक्षक भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास के लेखाओं का उसके प्रबंध और समग्र निधि का भारत संघ को अंतरण कर दिए जाने की दशा में भी नियमित रूप से निरीक्षण करने के लिए समुचित प्राधिकारी होगा ।

35. इस मामले के तथ्यात्मक पहलू की, विभिन्न आवेदकों द्वारा दिए गए सुझावों की, विशेषज्ञ निकायों की सिफारिशों की और उस उद्देश्य की, जिसके लिए वर्तमान लोक हित याचिका संस्थित की गई थी, विस्तारपूर्वक अवेक्षा किए जाने पर हमारी यह सुविचारित राय है कि कुछ विनिर्दिष्ट निदेश दिए जाने की अनिवार्य रूप से जरूरत है । ये आदेश अभावग्रस्त गैस पीड़ितों के लिए राहत और पुनर्वास कार्यक्रम की समुचित प्रगति और कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने तथा यह सुनिश्चित करने के संबंध में हैं कि अनुसंधान कार्य परिणामोन्मुख हो और यह यथार्थ रूप में जारी रहे । हम यह स्पष्ट करते हैं कि ये निदेश वर्तमान याचिका में समय-समय पर इस न्यायालय द्वारा पारित विभिन्न आदेशों के अतिरिक्त होंगे न कि उनके

अल्पीकरण में । दूसरे शब्दों में, इस न्यायालय द्वारा ऊपरवर्णित आदेशों के प्रति विनिर्दिष्ट निर्देश करते हुए पारित किए गए सभी आदेश इन निदेशों के प्रति यथावश्यक परिवर्तनों सहित पढ़े जाएंगे और प्रवर्तन में बने रहेंगे । ये आदेश-सह-निदेश निम्नलिखित अनुसार हैं :–

(1) यह लोक हित याचिका [1998 की रिट याचिका (सिविल) सं. 50] इस मामले के बेहतर और प्रभावी नियंत्रण के लिए मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की अधिकारिता प्राप्त न्यायपीठ को अंतरित हो जाएगी । अतः फाइल किए गए सभी आवेदनों पर उच्च न्यायालय की संबंधित न्यायपीठ द्वारा इस न्यायालय द्वारा पारित विभिन्न आदेशों के अनुरूप विचार किया जाए और उनका निपटारा किया जाए, जिससे 'राहत और पुनर्वास कार्यक्रम' का विशेषज्ञ निकायों का समुचित कार्यकरण तथा गैस पीड़ितों की अत्यधिक चिकित्सीय देखरेख और उपचार सुनिश्चित हो सके ।

(2) हम मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से यह सुनिश्चित करने का अनुरोध करते हैं कि इस मामले पर स्वयं मुख्य न्यायमूर्ति की अध्यक्षता में की किसी न्यायपीठ द्वारा या उस न्यायालय के सबसे वरिष्ठ न्यायाधीश की अध्यक्षता में की किसी न्यायपीठ द्वारा अथवा उस न्यायालय के उच्च न्यायालय नियमों या उस निमित्त उस विषय को लागू होने वाले किसी विशेष विधान के अनुसार किसी अन्य समुचित न्यायपीठ द्वारा विचार किया जाए ।

(3) चूंकि जो स्थान पहले उपलब्ध कराया गया है वह पर्याप्त प्रतीत नहीं होता है, अतः मध्य प्रदेश राज्य को एतद्द्वारा यह निदेश दिया जाता है कि वह मानीटरी समिति और सलाहकार समिति को, उन्हें अपने कृत्यों का प्रभावपूर्ण रूप से पालन करने के लिए समुचित और पर्याप्त कार्यालय स्थान उपलब्ध कराए जाने को सुनिश्चित करे । जो स्थान उपलब्ध कराया जाए वह लोगों के पहुंच योग्य हो जिससे कि गैस पीड़ित व्यक्ति सुगमता से मानीटरी समिति के पास अपनी शिकायतों और कठिनाइयों को दूर करने के लिए सुगमतापूर्वक पहुंच सकें ।

(4) हम राज्य सरकार को इन समितियों को उपलब्ध कराए गए पृथक् कार्यालय स्थान में उन्हें समुचित अवसंरचना उपलब्ध कराने का भी निदेश देते हैं । सदस्य प्रत्येक बैठक के लिए 1,000/- रुपए मानदेय के रूप में प्राप्त करने के हकदार होंगे । किंतु, उस दिन के

लिए कोई मानदेय संदेय नहीं होगा जब बैठक आस्थगित हो जाती है या समिति की उस बैठक में वस्तुतः कोई कार्य नहीं होता है ।

(5) मानीटरी समिति को पहले ही प्राधिकृत किया जा चुका है और एत्दद्वारा यह स्पष्ट किया जाता है कि वह शिकायतों की सुनवाई करेगी और यदि आवश्यक हो तो वह संबंधित अस्पताल या विभाग से अभिलेख भी मंगा सकती है, सरकारी सेवकों अथवा अस्पताल के कर्मचारियों के कथन लेखबद्ध कर सकती है और सरकार को समुचित कदम उठाए जाने के लिए सिफारिशें कर सकती है । यदि राज्य सरकार द्वारा उसके प्रति अनुस्मारक दिए जाने पर भी कोई कार्रवाई नहीं की जाती है तो समिति को समुचित निदेश जारी किए जाने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष जाने की पूरी अधिकारिता होगी । हम यह स्पष्ट कर दें कि सशक्त मानीटरी समिति को दंड देने संबंधी कोई अधिकारिता नहीं होगी । यह इस न्यायालय के आदेशों के अधीन उसमें निहित की गई शक्तियों और सौंपे गए कृत्यों के ढांचे के अंतर्गत ही सर्वथा अपने कृत्यों का निर्वहन करेगी । मानीटरी समिति के ऐसे सुझाव मुख्यतया अनुशंसाकारी और सुधारात्मक प्रकृति और विषय के होंगे ।

(6) सशक्त मानीटरी समिति को अस्पताल अर्थात् भोपाल स्मारक अस्पताल और अनुसंधान केंद्र तथा गैस पीड़ितों की देखरेख करने वाले अन्य सरकारी अस्पतालों के समुचित कार्यकरण की निगरानी करने की पूर्ण अधिकारिता होगी । यह अधिकारिता गैस पीड़ितों से संबंधित समस्याओं और/या उस घटना से प्रत्यक्ष तथा पैदा होने वाली समस्याओं या उससे संबंधित समस्याओं तक के लिए ही सीमित होगी । हम यह स्पष्ट कर दें कि सशक्त मानीटरी समिति को भोपाल स्थित प्राइवेट अस्पतालों, परिचर्या गृहों और क्लिनिकों पर कोई अधिकारिता नहीं होगी । किंतु इससे मध्य प्रदेश राज्य और भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् उन गैस पीड़ितों के प्रति, जिनका उपचार प्राइवेट अस्पतालों, परिचर्या गृहों या क्लिनिकों में चल रहा है, अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने से मुक्त नहीं हो जाते हैं । हम इन प्राधिकारियों से यह प्रत्याशा करते हैं कि वे शिकायतकर्ताओं की शिकायतों को सुनेंगे और इन अस्पतालों, परिचर्या गृहों या क्लिनिकों में उपचार के सम्यक् मानकों के बनाए रखे जाने को सुनिश्चित करेंगे ।

(7) हम भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् तथा राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान को सुनिश्चित करने का निदेश देते हैं कि अनुसंधान कार्य यथार्थ रूप से और शीघ्रतापूर्वक किया जाए और वे यह और सुनिश्चित करें कि उसका पूरा फायदा गैस पीड़ितों को मिले । हम अनुसंधान कार्य भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् तथा राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान के सिवाय किसी प्राइवेट/गैर-सरकारी संस्था से कराने की अनुज्ञा नहीं देते हैं ।

(8) भारत सरकार राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान की स्थापना किए जाने और अनुसंधान कार्य करने के लिए संकल्प पहले ही अपना चुकी है, जिसके लिए उसे सम्यक् अवसंरचना उपलब्ध कराई गई है । अतः हमें इस बात का कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि भोपाल में विभिन्न अस्पतालों में रोगियों की समुचित देखरेख और उपचार के लिए फायदे उपलब्ध कराते हुए सभी क्षेत्रों में अपेक्षित गति से अनुसंधान कार्य में प्रगति क्यों नहीं होनी चाहिए । हम भारत सरकार और मध्य प्रदेश राज्य को यह और स्पष्ट निदेश जारी करते हैं कि वे यह सुनिश्चित करने के लिए कि विशेषज्ञता प्राप्त संस्थानों द्वारा अनुसंधान कार्य कराए जाने में कोई अड़चन नहीं आए, सभी प्रकार की वित्तीय या गैर वित्तीय सहायता प्रदान करें ।

(9) मानीटरी समिति को चिकित्सीय देखरेख, चिकित्सीय जानकारी का कंप्यूटरीकरण, 'स्वास्थ्य पुस्तिकाएं' आदि का प्रकाशन कार्य अवश्य करना चाहिए । मानीटरी समिति यह भी सुनिश्चित करेगी कि 'स्वास्थ्य पुस्तिकाएं' और 'स्मार्ट कार्ड' प्रत्येक गैस पीड़ित को, इस बात पर ध्यान दिए बिना कि उस पीड़ित का उपचार कहां हो रहा है, उपलब्ध कराए जाएं । यह निदेश भोपाल में सरकार द्वारा या अन्यथा चलाए जा रहे सभी अस्पतालें के संबंध में लागू होगा । हम राज्य सरकार को निदेश देते हैं कि वह सशक्त मानीटरी समिति को सभी प्रकार से सहायता उपलब्ध कराए और व्यतिक्रम किए जाने की दशा में व्यतिक्रम करने वाले अधिकारी/पदाधिकारी के विरुद्ध समुचित कार्रवाई करे ।

हमें सरकारी और गैर-सरकारी अस्पतालों/क्लिनिकों में चिकित्सीय जानकारी का पूरा कंप्यूटरीकरण किए जाने का भी निदेश देते हैं, जो कि आज से तीन मास की अवधि के भीतर पूरा किया जाना चाहिए ।

(10) हमें यह सूचित किया गया है कि अस्पतालों और संबद्ध विभागों में डाक्टरों तथा अन्य सहायक कर्मचारिवृंद के अनेक पद रिक्त पड़े हुए हैं । भोपाल गैस विभीषिका राहत और पुनर्वास विभाग में विशेषज्ञों के अस्सी प्रतिशत पद और डाक्टरों के तीस प्रतिशत पद रिक्त पड़े हुए हैं । कुछ पद चतुर्थ श्रेणी कर्मचारिवृंद के भी रिक्त पड़े हुए हैं । अतः हम संबंधित प्राधिकारियों को न केवल इन रिक्त पदों को भरने में बल्कि ऐसी अवसंरचना और सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए सभी प्रकार से समुचित कदम उठाने का निदेश देते हैं जिससे कि डाक्टरों को पर्याप्त सुविधाओं के उपलब्ध न होने के कारण भोपाल स्मारक अस्पताल और अनुसंधान केंद्र के नियोजन से त्यागपत्र देने के लिए विवश होना पड़े या वे ऐसा करने को अधिमान दें ।

(11) भारत संघ, राज्य सरकार और भारतीय आयुर्विज्ञान और अनुसंधान परिषद् को भोपाल स्मारक अस्पताल और अनुसंधान केंद्र को स्वायतता प्रदान करने और उसे एक अध्ययन संस्थान बनाने संबंधी प्रस्ताव पर भी विचार करना चाहिए जिससे उसमें आकर्षक निबंधनों, अध्ययनों और कार्य संतुष्टि का उपबंध किया जा सके । इससे न केवल नियोजन के बेहतर अवसर उपलब्ध कराने में सहायता मिलेगी बल्कि इससे गैस पीड़ितों को उच्च गुणता की देखरेख और उपचार उपलब्ध कराए जाने का भी प्रयोजन बेहतर रूप से पूरा होगा ।

(12) इस बात के बारे में कोई विवाद नहीं है कि यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन के कारखाने में और उसके आस पास अभी भी बड़ी मात्रा में विषैला पदार्थ/कचरा पड़ा हुआ है । इसकी मौजूदगी ही स्वास्थ्य के लिए परिसंकटमय है । इसका यथाशीघ्र और वैज्ञानिक रीति में व्ययन किए जाने की जरूरत है । अतः, हम सशक्त मानीटरी समिति, सलाहकार समिति और राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान की सिफारिशों पर भारत संघ और मध्य प्रदेश राज्य को भोपाल स्थित यूनियन कार्बाइड कारखाने में और उसके आस-पास पड़े विषैले कचरे का आज से छह मास के भीतर व्ययन करने के लिए तुरंत कदम उठाए जाने का निदेश देते हैं । यह व्ययन सर्वथा वैज्ञानिक रीति में होना चाहिए जिससे मनुष्य के स्वास्थ्य और भोपाल में पर्यावरण को कोई और नुकसान न पहुंच पाए । हम विषैले कचरे के व्ययन की संपूर्ण स्कीम को अंतिम रूप देने के लिए इन संगठनों की भारत सरकार के सचिव तथा मध्य प्रदेश राज्य के मुख्य सचिव के साथ एक सामूहिक बैठक आज से एक मास के भीतर आयोजित

कराए जाने का भी निदेश देते हैं । यह उपर्युक्त निदेश सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा जारी किए जा रहे समुचित आदेशों या निदेशों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना दिया जाता है ।

(13) सलाहकार समिति, मानीटरी समिति और राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष अपनी-अपनी तिमाही रिपोर्टें फाइल करते रहेंगे । इन रिपोर्टों पर उच्च न्यायालय द्वारा विधि के अनुसार विचार किया जाएगा और समुचित निदेश जारी किए जाएंगे ।

(14) हम यह पहले ही अवेक्षा कर चुके हैं कि भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास का प्रबंधन पहले ही स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार में निहित किया जा चुका है और भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास का कार्य समाप्त हो चुका है । अतः, हम यह निदेश देते हैं कि भारत संघ और मध्य प्रदेश राज्य द्वारा न्यास का विधि के अनुसार विघटन किया जाना सुनिश्चित करने के लिए समुचित कदम उठाए जाएं । भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास का सृजन आरंभ में आठ वर्ष की अवधि के लिए किया गया था और बाद में इसकी स्थापना इस न्यायालय के आदेशों के अधीन अनिश्चितकाल के लिए की गई थी । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को तथा पश्चात्वर्ती घटनाओं को देखते हुए हम यह निदेश देते हैं कि भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास का विघटन कर दिया जाए । इस संबंध में सभी संबद्ध व्यक्ति विधि के अनुसार, जिसके अधीन इसका सृजन और/या उसे रजिस्ट्रीकृत किया गया था, कदम उठाएं ।

(15) भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास की समग्र निधि को भारत सरकार को अंतरित किए जाने का पहले ही आदेश किया जा चुका है और वह स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के नियंत्रणाधीन रहेगी । यदि कोई अन्य कदम उठाए जाने अपेक्षित हों तो वे संबंधित मंत्रालय द्वारा तुरंत उठाए जाएं । हम यह और स्पष्ट निदेश जारी करते हैं कि सभी सावधि निक्षेप रसीदें, भारतीय रिजर्व बैंक के बंधपत्र, अल्पकालिक जमा और भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास, भोपाल में का बैंक अतिशेष उक्त मंत्रालय को अंतरित हो जाएगा और उसके नियंत्रणाधीन रहेगा । यदि इस संबंध में और भी कोई कदम उठाए जाने अपेक्षित हों तो हम सभी संबंधित व्यक्तियों को ऐसे कदम उठाए जाने का निदेश देते हैं ।

(16) भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास और सहबद्ध विभागों के लेखाओं की, जहां तक वे वर्तमान रिट याचिका की विषय वस्तु हैं, संपरीक्षा प्रधान महालेखापाल (संपरीक्षा), मध्य प्रदेश द्वारा की जाएगी । वह मैसर्स वी. के. वर्मा एंड कंपनी द्वारा प्रस्तुत किए गए लेखाओं तथा तारीख 15 जुलाई, 2011 की संपरीक्षा रिपोर्ट की भी आज से तीन मास के भीतर जांच करेगा ।

(17) हम राज्य सरकार और मानीटरी समिति को भोपाल स्मारक अस्पताल और अनुसंधान केंद्र तथा भोपाल गैस विभीषिका राहत और पुनर्वास विभाग के अधीन की विभिन्न चिकित्सा इकाइयों के बीच समान संप्रेक्षण पद्धति विकसित किए जाने का भी निदेश देते हैं जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि गैस पीड़ितों को उनमें से प्रत्येक को पहुंची क्षति की प्रकृति और डिग्री के निबंधनों के अनुसार समुचित निदान और उपचार के लिए समुचित केंद्रों में भेजा गया है ।

(18) हम यह भी निदेश देते हैं कि मानीटरी समिति, सलाहकार समिति, राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान तथा भोपाल स्मारक अस्पताल और अनुसंधान केंद्र के विशेषज्ञ डाक्टरों की सहायता से उस व्याधि के, जिससे गैस पीड़ित व्यथित हों, प्रत्येक प्रवर्ग के उपचार के लिए एक मानकीकृत प्रोटोकाल जारी करे । यह कार्रवाई शीघ्रतापूर्वक की जाएगी । यदि समिति रोगियों और क्षतियों का वैज्ञानिक प्रवर्गीकरण विहित करती है तो यह बहुत ही प्रशंसनीय कार्य होगा ।

(19) अंत में, हम भारत संघ, मध्य प्रदेश राज्य, सशक्त मानीटरी समिति, सलाहकार समिति, भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान संस्थान, राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान, भोपाल स्मारक अस्पताल और अनुसंधान केंद्र तथा राहत और पुनर्वास कार्यक्रम के कार्यान्वयन और अनुसंधान क्रियाकलापों में लगे सभी अन्य सरकारी और गैर सरकारी विभागों/अभिकरणों में के सभी संबंधित व्यक्तियों को उपर्युक्त निदेशों का शीघ्रतापूर्वक और बिना किसी तर्क-वितर्क और चूक के पालन करने का निदेश देते हैं । हम आवेदकों और/या याचियों अथवा किसी अन्य प्रभावित व्यक्ति को इस न्यायालय द्वारा पारित उपर्युक्त निदेशों या किन्हीं अन्य आदेशों में से किसी का उल्लंघन, अननुपालन या व्यतिक्रम किए जाने की दशा में मध्य प्रदेश उच्च

न्यायालय की जबलपुर स्थित न्यायपीठ में आवेदन करने की स्वतंत्रता प्रदान करते हैं ।

36. इस मामले में निर्णय सुनाए जाने से पूर्व, हम संबंधित पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा योग्य सहायता प्रदान किए जाने के और विभिन्न अध्यक्षों न्यायालयों के आदेशों के अधीन गठित समितियों द्वारा, जिसके अंतर्गत भोपाल स्मारक अस्पताल न्यास भी है, किए गए कृत्यों के सराहनीय कार्य को अभिलेखबद्ध करना अपना कर्तव्य समझते हैं ।

37. यह रिट याचिका उपर्युक्त निबंधनों के अनुसार मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय को अंतरित की जाती है । सभी आवेदनों का तदनुसार निपटारा किया जाता है ।

38. राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम, 2010 के उपबंधों और स्कीम को, विशिष्टतया धारा 14, धारा 29, धारा 30 और धारा 38(5) को ध्यान में रखते हुए यह निरापद रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम की अनुसूची 1 के अंतर्गत आने वाले मुद्दे और मामले राष्ट्रीय हरित अधिकरण के समक्ष संस्थित और वादानुगत किए जाने चाहिए । यह दृष्टिकोण उच्च न्यायालयों और राष्ट्रीय हरित अधिकरण के बीच के आदेशों में परस्पर विरोध होने की संभावना से बचने के लिए आवश्यक हो सकता है । अतः, हम यह स्पष्ट रूप से निदेश देते हैं कि राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम के प्रवृत्त होने के पश्चात् संस्थित और राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम के उपबंधों के अधीन और/या अनुसूची 1 के अंतर्गत आने वाले सभी मामले अंतरित हो जाएंगे और उन्हें केवल राष्ट्रीय हरित अधिकरण के समक्ष संस्थित किया जा सकेगा । इससे पर्यावरण के क्षेत्र में सभी संबद्ध व्यक्तियों को शीघ्रतापूर्वक और विशेषज्ञतापूर्ण न्याय प्रदान करने में सहायता मिलेगी ।

39. हम सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालयों के विचारार्थ एक चेतावनी अभिलेखबद्ध करना अनिवार्य समझते हैं कि राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम के प्रवृत्त होने के पूर्व फाइल किए गए और लंबित पड़े उन मामलों पर, जिनमें पर्यावरणीय विधियों और/या राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम की अनुसूची 1 में विनिर्दिष्ट सात कानूनों में से किसी एक से संबंधित प्रश्न अंतर्वलित हैं, विशेषज्ञता प्राप्त अधिकरण, अर्थात् राष्ट्रीय हरित अधिकरण अधिनियम के उपबंधों के अधीन सृजित राष्ट्रीय हरित अधिकरण द्वारा विचार किया जाएगा । न्यायालयों को अपने विवेकानुसार

ऐसे मामले राष्ट्रीय हरित अधिकरण को अंतरित किए जाने की सलाह दी जाती है क्योंकि यह न्याय प्रशासन की दृष्टि से उपयुक्त होगा ।

40. सामान्यतया हम यह मामला भी राष्ट्रीय हरित अधिकरण को अंतरित कर देते । किंतु चूंकि इसमें कोई जटिल या अन्य पर्यावरणीय मुद्दे अंतर्वलित नहीं हैं जिनमें कि मुख्यतया न्यायालयों के आदेशों के समुचित निष्पादन के लिए प्रशासनिक पर्यवेक्षण की अपेक्षा हो, अतः हम इस मामले को मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय को अंतरित करना उपयुक्त समझते हैं । हम यह अवेक्षा कर सकते हैं कि पर्यवेक्षणीय कार्य स्वतः ही विभिन्न समितियों के, जिनका कि गठन सरकार द्वारा स्थापित अस्पताल के समुचित कार्यकरण को तथा भोपाल गैस पीड़ितों को स्वास्थ्य देखरेख सुविधाएं उपलब्ध कराए जाने को सुनिश्चित करने के लिए न्यायालयों के आदेशों के अधीन किया गया था उचित कार्यकरण से संबंधित है । इस प्रकार, इस मामले की सुनवाई बेहतर रूप से न्याय करने की दृष्टि से उच्च न्यायालय द्वारा की जानी चाहिए और उसके द्वारा ही पर्यवेक्षणीय अधिकारिता का प्रयोग किया जाना चाहिए ।

41. रजिस्ट्री को 1998 की रिट याचिका सं. 50 के अभिलेख मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की जबलपुर न्यायपीठ को तुरंत प्रेषित किए जाने और इस आदेश की प्रतियां भारत संघ मध्य प्रदेश राज्य, मानीटरी समिति, सलाहकार समिति, भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद्, भोपाल स्मारक अस्पताल और अनुसंधान केंद्र तथा राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान के सभी संबद्ध क्वार्टरों में इन निदेशों का बिना किसी विलंब या चूक के अनुपालन किए जाने के लिए भेजी जाए ।

तदनुसार रिट याचिका का निपटारा किया गया ।

ज.

[2012] 4 उम. नि. प. 105

देविन्दर सिंह नरूला

बनाम

मीनाक्षी नांगिया

22 अगस्त, 2012

न्यायमूर्ति अल्तमस कबीर और न्यायमूर्ति जे. चेलामेश्वर

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13ख [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 142] – परस्पर सहमति द्वारा विवाह-विच्छेद – प्रतीक्षा की अवधि – न्याय पूरा करने की दृष्टि से प्रतीक्षा अवधि को कम किया जाना – पति द्वारा विवाह के तीन मास के पश्चात् ही अकृतता की डिक्री के लिए अर्जी फाइल किया जाना – पक्षकारों का उसके पश्चात् एक वर्ष से भी अधिक अवधि तक अलग-अलग रहना – अर्जी के लंबित रहते मध्यस्थता संबंधी कार्यवाहियों के दौरान पक्षकारों के बीच विवाह का विघटन परस्पर सहमति के आधार पर कराए जाने के लिए सहमत होना – पति और पत्नी के बीच कोई वैवाहिक संबंध न रहने तथा केवल धारा 13ख में उपबंधित प्रतीक्षा अवधि के पूरा किए जाने के लिए औपचारिक संबंध बनाए रखने के तथ्य को तथा मामले की परिस्थितियों और इस तथ्य को देखते हुए कि धारा 13ख में वर्णित शर्तों में से एक शर्त अर्थात् परस्पर सहमति द्वारा विवाह विघटन किए जाने की शर्त पूरी होती है, पूर्ण न्याय किए जाने की दृष्टि से संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए प्रतीक्षा की अवधि को कम करके परस्पर सहमति के आधार पर विवाह विघटन किया जाना न्यायोचित होगा ।

यह अपील हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13ख के अधीन पक्षकारों द्वारा फाइल किए गए संयुक्त आवेदन को ग्रहण करते समय अपर जिला न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 13 अप्रैल, 2012 के आदेश से व्युत्पन्न हुई है । यह अर्जी प्रस्तुत करते हुए अवर न्यायालय ने पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 13ख में यथा अनुध्यात दूसरे आवेदन के प्रयोजन के लिए उस मामले पर सुनवाई की । धारा 13ख में ही पहली बार समावेदन किए जाने पर, यदि पक्षकार अपना मन उक्त अवधि के दौरान बदल लेते हैं, छह मास की प्रतीक्षा अवधि का उपबंध है । तदनुसार, आरंभिक समावेदन तथा पारस्परिक विवाह-विच्छेद संबंधी अर्जी प्रस्तुत किए जाने के

पश्चात् पक्षकारों के लिए द्वितीय समावेदन प्रस्तुत करने के पूर्व छह मास की अवधि तक प्रतीक्षा करना अपेक्षित होता है और उस समय पर यदि पक्षकार अपना यह मन बना लेते हैं कि वे एक साथ रहने में असमर्थ हैं तो न्यायालय ऐसी जांच करने के पश्चात्, जो वह उचित समझे, डिक्री की तारीख से विवाह के विघटन की घोषणा करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करता है । विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश द्वारा छह मास की अवधि के पश्चात् दूसरे समावेदन की तारीख नियत किए जाने संबंधी उक्त आदेश से व्यथित होकर याची ने इस न्यायालय के अनिल कुमार जैन बनाम माया जैन वाले एक पूर्ववर्ती मामले में के विनिश्चय का अवलंब लेते हुए इस न्यायालय से संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी शक्तियों का अवलंब लेते हुए विवाह विघटन किए जाने के लिए यह अपील फाइल की है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय द्वारा पक्षकारों की ओर से दी गई दलीलों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है और अनिल कुमार जैन वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा किए गए विनिश्चय पर भी विचार किया है । निस्संदेह यह सही है कि विधायिका ने अपने विवेक से ही परस्पर विवाह-विच्छेद संबंधी आवेदन फाइल किए जाने की तारीख से विवाह-विच्छेद (की डिक्री) वस्तुतः मंजूर कर दिए जाने तक छह मास की प्रतीक्षा अवधि को इस आशय से नियत किया है कि इससे विवाह की संस्था की संरक्षा होगी । यह भी सही है कि विधायिका के आशय को त्रुटिपूर्ण नहीं कहा जा सकता किंतु ऐसे भी अवसर आ सकते हैं जबकि पक्षकारों के साथ पूर्ण न्याय करने की दृष्टि से इस न्यायालय के लिए किसी असमाधेय स्थिति में अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी शक्तियों का अवलंब लेना आवश्यक हो जाता है । यद्यपि इस प्रतिपादना को स्वीकार नहीं किया जा सकता कि अधिनियम की धारा 13ख के अधीन विवाह विघटन के प्रत्येक मामले में (इस) न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करना चाहिए, तथापि, इस न्यायालय की यह राय है कि समुचित मामलों में ऐसी शक्ति का अवलंब लेना अनुचित नहीं होगा और ऐसा करना आवश्यक भी साबित हो सकता है । अभिलेख पर उपलब्ध तथ्य सामग्री से यह सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि पक्षकारों के बीच विवाह का अनुष्ठापन तारीख 26 मार्च, 2011 को हुआ था, तथापि, विवाह के तीन मास के भीतर ही याची ने विवाह की अकृतता की डिक्री के लिए हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 12 के अधीन एक अर्जी फाइल की थी । तत्पश्चात्, वे एक साथ रह नहीं पाए और एक वर्ष से अधिक समय तक अलग-अलग रहे । वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता है

कि पक्षकारों के बीच वैवाहिक संबंध बिल्कुल नहीं रहे हैं । केवल पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 13ख(2) के उपबंधों के कारण पक्षकारों के बीच औपचारिक वैवाहिक संबंध केवल नाम के लिए बने हुए हैं । परस्पर सहमति द्वारा विवाह विघटन की डिक्री मंजूर किए जाने के लिए धारा 13ख में उपदर्शित शर्त तो कम से कम प्रस्तुत मामले में विद्यमान है । केवल छह मास की कानूनी प्रतीक्षा अवधि के कारण कि पक्षकारों को विवाह के विघटन की डिक्री पारित किए जाने की प्रतीक्षा करनी पड़ रही है । उपर्युक्त परिस्थितियों में, इस न्यायालय की राय में, यह उन मामलों में से एक मामला है जहां कि यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन उच्चतम न्यायालय में विहित शक्तियों का प्रयोग किए जाने का अवलंब ले सकता है। यह विवाह कानूनी प्रतीक्षा अवधि के कारण ही एक कच्चे धागे के रूप में टिका हुआ है, जिसमें चार मास पहले ही व्यतीत हो चुके हैं । जब पक्षकारों के लिए एक वर्ष से अधिक समय से एक साथ रहना और एक दूसरे के प्रति अपनी वैवाहिक कर्तव्यों का पालन करना संभव नहीं हो पा रहा है, तब दो और मास तक पक्षकारों की मानसिक वेदना को बनाए रखने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता है । तदनुसार यह अपील को मंजूर की जाती है और हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 12 के अधीन अपर जिला न्यायाधीश के समक्ष लंबित पड़ी कार्यवाहियों को पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 13ख के अधीन की कार्यवाहियों में भी संपरिवर्तित किया जाता है और संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी शक्तियों का अवलंब लेते हुए पक्षकारों के परस्पर विवाह-विच्छेद की डिक्री को मंजूर किया जाता है । (पैरा 9, 10, 12, 13 और 14)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2009]	(2009) 10 एस. सी. सी. 415 : **अनिल कुमार जैन** बनाम **माया जैन** ;	4, 7, 9
[2000]	(2000) 10 एस. सी. सी. 243 : **किरण** बनाम **शरद दत्त** ।	9

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की सिविल अपील सं. 5946.

2002 की एच. एम. ए. अर्जी सं. 204 में विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश (पश्चिमी)/दिल्ली के तारीख 13 अप्रैल, 2012 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री ललित कुमार

प्रत्यर्थी की ओर से –

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अल्तमस कबीर ने दिया ।

न्या. कबीर – इजाजत दी जाती है ।

2. यह अपील हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13ख के अधीन पक्षकारों द्वारा फाइल किए गए संयुक्त आवेदन को ग्रहण करते समय 2012 की एच. एम. ए. सं. 204 में अपर जिला न्यायाधीश-01 द्वारा पारित तारीख 13 अप्रैल, 2012 के आदेश से व्युत्पन्न हुई है । यह अर्जी प्रस्तुत करते हुए अवर न्यायालय ने पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 13ख में यथा अनुध्यात दूसरे आवेदन के प्रयोजन के लिए उस मामले पर सुनवाई की तारीख 15 अक्तूबर, 2012 नियत की । उक्त अधिनियम की धारा 13ख को निर्देश के लिए नीचे उद्धृत किया जा रहा है :–

> "13ख. इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए यह है कि विवाह के दोनों पक्षकार मिलकर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए अर्जी, चाहे ऐसा विवाह, विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 के प्रारंभ के पूर्व या उसके पश्चात् अनुष्ठापित किया गया हो, जिला न्यायालय में, इस आधार पर पेश कर सकेंगे कि वे एक वर्ष या उससे अधिक समय से अलग-अलग रह रहे हैं और वे एक साथ नहीं रह सके हैं तथा वे इस बात के लिए परस्पर सहमत हो गए हैं कि विवाह का विघटन कर दिया जाना चाहिए ।"

3. इस धारा में ही पहली बार समावेदन किए जाने पर, यदि पक्षकार अपना मन उक्त अवधि के दौरान बदल लेते हैं, छह मास की प्रतीक्षा अवधि का उपबंध है । तदनुसार, आरंभिक समावेदन तथा पारस्परिक विवाह-विच्छेद संबंधी अर्जी प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् पक्षकारों के लिए द्वितीय समावेदन प्रस्तुत करने के पूर्व छह मास की अवधि तक प्रतीक्षा करना अपेक्षित होता है और उस समय पर यदि पक्षकार अपना यह मन बना लेते हैं कि वे एक साथ रहने में असमर्थ हैं तो न्यायालय ऐसी जांच करने के पश्चात्, जो वह उचित समझे, डिक्री की तारीख से विवाह के विघटन की घोषणा करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करता है ।

4. विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश द्वारा छह मास की अवधि के पश्चात् दूसरे समावेदन की तारीख नियत किए जाने संबंधी उक्त आदेश से व्यथित

होकर याची ने इस न्यायालय के **अनिल कुमार जैन** बनाम **माया जैन**[1] वाले मामले में के विनिश्चय का अवलंब लेते हुए इस न्यायालय में यह अपील फाइल की है, जिसके द्वारा इस न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने पर कि पक्षकारों के बीच विवाह संबंध असुधार्य सीमा तक टूट चुके हैं, संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी शक्तियों का अवलंब लेना न्यायोचित समझा ।

5. दोनों ही पक्षकारों की ओर से यह दलील दी गई कि चूंकि हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 के अधीन मूल अर्जी फाइल किए जाने तक अठारह मास से अधिक का समय व्यतीत हो चुका है अतः उक्त अवधि को उपर्युक्त अधिनियम की धारा 13ख के अधीन अनुध्यात छह मास की प्रतीक्षा अवधि के मद्दे गणना में लिया जा सकता है । यह दलील दी गई कि इस प्रकार संगणना करने पर पक्षकार अधिनियम की धारा 13ख के अधीन यथा परिकल्पित छह माह की प्रतीक्षा अवधि को पहले ही पूरा कर चुके हैं ।

6. यह भी दलील दी गई कि अधिनियम की धारा 13ख(1) में अंतर्विष्ट अन्य शर्तों को भी पूरा किया जा चुका है क्योंकि पक्षकार एक वर्ष से अधिक समय से अलग-अलग रह रहे हैं और इस बात के लिए परस्पर सहमत हैं कि विवाह का विघटन कर दिया जाना चाहिए । यह दलील दी गई कि धारा 13ख के अधीन आवेदन न किए जाने की औपचारिकता को छोड़कर अन्य मानदंडों को सम्यक् रूप से पूरा किया गया है और धारा 13ख की भाषा को ध्यान में रखते हुए परस्पर विवाह-विच्छेद के रूप में विवाह के विघटन की डिक्री से पक्षकारों को इनकार नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि धारा 13ख के अधीन अनुध्यात छह मास की प्रतीक्षा अवधि में से चार मास की अवधि पहले ही पूरी हो चुकी है ।

7. यह दलील दी गई, जैसे कि **अनिल कुमार जैन** वाले (उपर्युक्त) मामले में दी गई थी कि यह न्यायालय पक्षकारों के बेहतर हित में संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी शक्तियों का अवलंब ले सकता है । यह दलील दी गई कि यदि पक्षकारों के साथ वस्तुतः न्याय किया जाना है तो तकनीकी बारिकियों की अपेक्षा यथार्थ तथ्य को महत्व दिया जाना चाहिए ।

8. राज्य की ओर से यह दलील दी गई कि कानूनी उपबंधों को ध्यान में रखते हुए याची और प्रत्यर्थी-पत्नी की ओर से की जा रही प्रार्थना को ग्रहण नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि इससे आम लोगों के मन में भ्रम पैदा हो जाएगा और यह लोक हित के विरुद्ध होगा ।

---

[1] (2009) 10 एस. सी. सी. 415.

9. हमने पक्षकारों की ओर से दी गई दलीलों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है और **अनिल कुमार जैन** वाले (उपर्युक्त) मामले में इस न्यायालय द्वारा किए गए विनिश्चय पर भी विचार किया है । निस्संदेह यह सही है कि विधायिका ने अपने विवेक से ही परस्पर विवाह-विच्छेद संबंधी आवेदन फाइल किए जाने की तारीख से विवाह-विच्छेद (की डिक्री) वस्तुतः मंजूर कर दिए जाने तक छह मास की प्रतीक्षा अवधि को इस आशय से नियत किया है कि इससे विवाह की संस्था की संरक्षा होगी । यह भी सही है कि विधायिका के आशय को त्रुटिपूर्ण नहीं कहा जा सकता किंतु ऐसे भी अवसर आ सकते हैं जबकि पक्षकारों के साथ पूर्ण न्याय करने की दृष्टि से इस न्यायालय के लिए किसी असमाधेय स्थिति में अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी शक्तियों का अवलंब लेना आवश्यक हो जाता है । वस्तुतः, **किरण** बनाम **शरद दत्त**[1] वाले मामले में, जिस पर कि **अनिल कुमार जैन** वाले (उपर्युक्त) मामले में विचार किया गया था, पक्षकारों ने अनेक वर्ष तक अलग-अलग रहने के पश्चात् और हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अधीन कार्यवाहियां आरंभ करने के ग्यारह वर्ष पश्चात् इस न्यायालय के समक्ष विवाह-विच्छेद की अर्जी में संशोधन करने तथा उसे अधिनियम की धारा 13ख के अधीन की कार्यवाही में संपरिवर्तित करने की इजाजत के लिए संयुक्त आवेदन फाइल किया था । उस अर्जी को पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 13ख के अधीन की गई अर्जी मानते हुए, इस न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी शक्तियों का अवलंब लेते हुए विशेष इजाजत याचिका के प्रक्रम पर ही परस्पर विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर कर दी । इस न्यायालय द्वारा पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करने की दृष्टि से भिन्न-भिन्न मामलों में और भिन्न-भिन्न स्थितियों में, संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी शक्तियों का अवलंब लिया गया है ।

10. यद्यपि हम इस प्रतिपादना को स्वीकार करने को सहमत नहीं हैं कि अधिनियम की धारा 13ख के अधीन विवाह विघटन के प्रत्येक मामले में (इस) न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करना चाहिए, तथापि, हमारी यह राय है कि समुचित मामलों में ऐसी शक्ति का अवलंब लेना अनुचित नहीं होगा और ऐसा करना आवश्यक भी साबित हो सकता है । हमारे समक्ष जो प्रश्न है वह यह है कि क्या यह उन मामलों की कोटि में आता है ?

11. जैसाकि इस अपील में किए गए प्रकथनों से प्रतीत होता है,

---

[1] (2000) 10 एस. सी. सी. 243.

अपीलार्थी ने हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 12 के अधीन अर्जी तारीख 1 जून, 2011 को इस आधार पर फाइल की थी कि तारीख 26 मार्च, 2011 को हुआ विवाह अकृतता की कोटि में आता है, यह कि पक्षकार अपने विवाह के समय से अलग-अलग रह रहे हैं और उन्होंने एक दूसरे के साथ तारीख 1 जून, 2011 से सहवास नहीं किया है और भविष्य में भी वे एक छत के नीचे एक साथ नहीं रह सकते । पक्षकारों के अनुसार वह पिछले एक वर्ष से एक दूसरे से अलग रह रहे हैं और प्रत्यर्थी इस समय विदेश में - कनाडा में - कार्य कर रही है । इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए कि अधिनियम की धारा 12 के अधीन कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान पक्षकार मध्यस्थता के लिए सहमत हो गए थे और मध्यस्थता के दौरान दोनों पक्षकार उपर्युक्त अधिनियम की धारा 13ख के अधीन परस्पर सहमति से विवाह-विच्छेद मंजूर करने संबंधी अर्जी फाइल करके अपने विवाह का विघटन कराने के लिए सहमत हो गए थे । मध्यस्थ के समक्ष की कार्यवाहियों में, पक्षकार अधिनियम की धारा 13ख(1) और धारा 13ख(2) के अधीन समुचित अर्जियां लाने के लिए सहमत हो गए थे । तीसहजारी न्यायालय के मध्यस्थ केंद्र के मध्यस्थ द्वारा न्यायालय को लंबित पड़े मामले, 2011 के एच. एम. ए. सं. 239, में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी । मध्यस्थता की इन कार्यवाहियों के दौरान ऐसी सहमति के अनुसरण में पूर्वोक्त लंबित पड़े एच. एम. ए. में पक्षकारों द्वारा यह उपदर्शित करते हुए एक आवेदन फाइल किया गया था कि उन्होंने अपने मामले में मध्यस्थ केंद्र के माध्यम से समझौता कर लिया है और यह कि वे परस्पर सहमति द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए 15 अप्रैल, 2012 को या उससे पूर्व एक अर्जी फाइल कर देंगे । उक्त अर्जी के आधार पर ही एच. एम. ए. कार्यवाहियों का वापस ले ली गई कार्यवाही के रूप में निपटारा कर दिया गया था । तत्पश्चात्, तारीख 13 अप्रैल, 2012 को पक्षकारों द्वारा अधिनियम की धारा 13ख के अधीन एक संयुक्त अर्जी फाइल की गई, जिस पर कि विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, पश्चिमी दिल्ली द्वारा आदेश पारित किया गया जिसमें दूसरे समावेदन के लिए तारीख 15 अक्तूबर, 2012 नियत की गई थी ।

12. अभिलेख पर उपलब्ध तथ्य सामग्री से यह सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि पक्षकारों के बीच विवाह का अनुष्ठापन तारीख 26 मार्च, 2011 को हुआ था, तथापि, विवाह के तीन मास के भीतर ही याची ने विवाह की अकृतता की डिक्री के लिए हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 12 के अधीन एक अर्जी फाइल की थी । तत्पश्चात्, वे एक साथ रह नहीं पाए और एक वर्ष से अधिक समय तक अलग-अलग रहे । वस्तुतः

ऐसा प्रतीत होता है कि पक्षकारों के बीच वैवाहिक संबंध बिल्कुल नहीं रहे हैं । केवल पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 13ख(2) के उपबंधों के कारण पक्षकारों के बीच औपचारिक वैवाहिक संबंध केवल नाम के लिए बने हुए हैं । परस्पर सहमति द्वारा विवाह विघटन की डिक्री मंजूर किए जाने के लिए धारा 13ख में उपदर्शित शर्त तो कम से कम प्रस्तुत मामले में विद्यमान है । केवल छह मास की कानूनी प्रतीक्षा अवधि के कारण कि पक्षकारों को विवाह के विघटन की डिक्री पारित किए जाने की प्रतीक्षा करनी पड़ रही है ।

13. उपर्युक्त परिस्थितियों में, हमारी राय में, यह उन मामलों में से एक मामला है जहां कि हम संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन उच्चतम न्यायालय में विहित शक्तियों का प्रयोग किए जाने का अवलंब ले सकते हैं । यह विवाह कानूनी प्रतीक्षा अवधि के कारण ही एक कच्चे धागे के रूप में टिका हुआ है, जिसमें चार मास पहले ही व्यतीत हो चुके हैं । जब पक्षकारों के लिए एक वर्ष से अधिक समय से एक साथ रहना और एक दूसरे के प्रति अपनी वैवाहिक कर्तव्यों का पालन करना संभव नहीं हो पा रहा है, तब हमें दो और मास तक पक्षकारों की मानसिक वेदना को बनाए रखने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता है ।

14. तदनुसार हम इस अपील को मंजूर करते हैं और हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 12 के अधीन अपर जिला न्यायाधीश-01, पश्चिमी दिल्ली, के समक्ष लंबित पड़ी कार्यवाहियों को पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 13ख के अधीन की कार्यवाहियों में भी संपरिवर्तित करते हैं और संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी शक्तियों का अवलंब लेते हुए पक्षकारों के परस्पर विवाह-विच्छेद की डिक्री को मंजूर करते हैं तथा यह निदेश देते हैं कि पक्षकारों के बीच विवाह का विघटन परस्पर सहमति से हो जाएगा । अपर जिला न्यायाधीश-01 - पश्चिमी दिल्ली के समक्ष की कार्यवाहियां - 2012 की एच. एम. ए. सं. 204 - पक्षकारों की सहमति से इस न्यायालय को प्रत्याहृत की जाती हैं और इस आदेश द्वारा उनका निपटारा किया जाता है ।

15. मामले के तथ्यों को देखते हुए पक्षकार अपने-अपने खर्च स्वयं वहन करेंगे ।

अपील मंजूर की गई ।

ज.

कुनाल मजूमदार

बनाम

राजस्थान राज्य

12 सितम्बर, 2012

न्यायमूर्ति (डा.) बी. एस. चौहान और न्यायमूर्ति फकीर मोहम्मद इब्राहिम कलीफुल्ला

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 376 और 302 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 366(1)] – बलात्संग और हत्या – मृतका छोटी आयु की घरेलू नौकरानी की अभियुक्त-अपीलार्थी उसके मालिक द्वारा बलात्संग करने के उपरांत गला घोंटकर हत्या करना – विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थी को मृत्यु दंड दिया गया जो उच्च न्यायालय में अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा अपील किए जाने पर आजीवन कारावास में परिवर्तित किया गया – मृत्यु दंड की पुष्टि के लिए किए गए निर्देश पर उच्च न्यायालय द्वारा सही रीति में निपटारा नहीं किया गया – उच्च न्यायालय का दंडादेश लघुकृत करने के निर्णय को अपास्त करते हुए तीन माह के भीतर, मृत्यु दंड पुष्टि निर्देश और अपीलों का निपटारा करने के लिए उच्च न्यायालय को निर्देश दिया गया ।

प्रस्तुत मामले में, एकमात्र अभियुक्त द्वारा फाइल की गई यह अपील राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर की खंड न्यायपीठ द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 361 के अधीन दांडिक हत्या निर्देश और इसके साथ 2007 की दांडिक अपील सं. 1 और इसी भांति 2007 की दांडिक अपील सं. 243 में खंड न्यायपीठ के निर्णय और आदेश और इसके साथ दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 374(2) के अधीन 2007 की कारागार अपील सं. 313 जो 2006 की सेशन मामला सं. 2 में अपर सेशन न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक) सं. 1 द्वारा पारित किए गए तारीख 9 मार्च, 2007 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई थी में तारीख 11 जुलाई, 2007 को दिए गए खंड न्यायपीठ के निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – उच्च न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 366(1) के अधीन मृत्यु दंड की पुष्टि के लिए विचार करने के मामले में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धाराओं 367 से 371 में अंतर्विष्ट उपबंधों के प्रति विशेष

संदर्भ में निर्देश की परीक्षा करने को आबद्ध है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 367 के अधीन जब निर्देश उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तब यदि उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि आगे की जांच की जानी चाहिए या अतिरिक्त साक्ष्य लिया जाना चाहिए । दोषी व्यक्ति की दोषिता या निर्दोषिता पर प्रभाव डालने वाले किसी बिंदु के संबंध में यह ऐसी जांच कर सकता है या स्वतः ऐसा साक्ष्य ले सकता है या सेशन न्यायालय द्वारा ऐसा किए जाने या साक्ष्य लिए जाने का उसे निर्देश दे सकता है । ऐसी परिस्थितियों में अभियुक्त की उपस्थिति के संबंध में आनुषंगिक शक्तियां दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 367 के उपखंड (2) और (3) के अधीन उपबंधित की गई है । धारा 366 के अधीन निर्देश पर विचार करते हुए धारा 368 के अधीन यह अन्य बातों के अलावा दंडादेश की पुष्टि के लिए या विधि के अधीन को अन्य दंडादेश पारित करने या स्वतः दोषसिद्धि रद्द करने और इसके स्थान पर अभियुक्त को किसी अन्य अपराध के लिए दोषसिद्ध करने का उपबंध करती है जिसके लिए सेशन न्यायालय अभियुक्त को दोषसिद्ध कर सकता था या उन्हीं तथ्यों पर नए विचारण के लिए आदेश कर सकता था या आरोप में संशोधन किए जाने के लिए आदेश कर सकता था । यह अभियुक्त को दोषमुक्त भी कर सकेगा । धारा 370 के अधीन जब ऐसा निर्देश न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा सुनवाई किया जाता है और यदि उनके बीच राय के संबंध में विभाजित है, तब मामला धारा 392 के अधीन उपबंधित रीति में विनिश्चय किया जाना चाहिए जिसके अनुसार मामला उक्त न्यायालय के एक अन्य न्यायाधीश के समक्ष रखा जाना चाहिए जो अपनी राय देगा और निर्णय या आदेश उक्त राय का अनुसरण करना चाहिए । यहां पुनः धारा 392 के परंतुक के अधीन, यह उल्लेख किया गया है कि यदि न्यायपीठ में सम्मिलित न्यायाधीशों में से एक न्यायाधीश या जहां अपील एक अन्य न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत की जाती है, उनमें से कोई भी, यदि ऐसा अपेक्षित हो, न्यायाधीशों की वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा विनिश्चय किए जाने के लिए अपील की पुनः सुनवाई किए जाने का निदेश दे सकता है । (पैरा 15)

जब ऐसा विशेष और प्रमुख दायित्व दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 366(1) के अधीन निर्देश पर विचार करने वाले उच्च न्यायालय पर अधिरोपित किया गया है, तब हमें यह अवेक्षा करते हुए आघात पहुंचता है कि इसमें यहां आक्षेपित आदेश में, खंड न्यायपीठ ने मात्र इस प्रभाव का निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने दंड संहिता, 1860 की धाराओं 376/511 के अधीन अपराध के लिए अधिरोपित दंडादेश को बनाए रखने के लिए प्रार्थना करते हुए दंड संहिता,

1860 की धारा 302 के अधीन आने वाले अपराध के लिए मृत्यु दंड को आजीवन कारावास में लघुकृत करने के लिए सहानुभूति दर्शाने के लिए अभिवाक् किया था और विद्वान् लोक अभियोजक द्वारा कोई प्रतिवाद नहीं किया गया था । खंड न्यायपीठ ने एक मात्र उक्त आधार पर और मात्र यह कथन करते हुए कि अपीलार्थी के हाथों आहत पर घोर प्रकृति के बल का कोई प्रयोग नहीं किया गया था और हत्या के अपराध का किया जाना जघन्य या अमानवीय अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता और परिणामस्वरूप मृत्यु दंडादेश दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए आजीवन कारावास में परिवर्तित किए जाने के लिए दायी था, उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धाराओं 368 से 370 और 392 के साथ पठित धारा 366(1) के अधीन इसमें निहित अधिकारिता का उसकी भावना और परिप्रेक्ष्य में प्रयोग नहीं किया है और एतद्द्वारा हमारे मत में निर्देश का विनिश्चय करते समय उस रीति जिसमें कि इसे दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन इसका विनिश्चय करना चाहिए था, में विनिश्चय करने के अपने दायित्व को नहीं निभाया है । हम यह महसूस करते हैं कि आक्षेपित निर्णय पारित करते समय धारा 366(1) के अधीन निर्देश पर विचार करते समय खंड न्यायपीठ द्वारा निर्णय उद्घोषित करते समय सरसरी रीति में कार्य किया गया था और इस संबंध में जितना कम कहा जाए उतना बेहतर है । (पैरा 16)

तथापि, हम यह कथन करने और यह अभिलिखित करने के लिए कर्तव्य आबद्ध हैं कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 366(1) के अधीन किए गए निर्देश में उच्च न्यायालय के लिए सिद्धदोष व्यक्ति की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा या राज्य के विद्वान् काउंसेल की ओर से की गई कोई रियायत पर अवलंब मात्र लेते हुए निर्देश की प्रक्रिया में छोटा मार्ग अपनाने का कोई प्रश्न नहीं उठता । उच्च न्यायालय पर वह रीति जिसमें अपराध कारित किया गया था की प्रकृति, दोषी की आपराधिक मनःस्थिति यदि कोई हो, विचारण न्यायालय द्वारा अवेक्षा की गई आहत की दुर्दशा (दुख) की वह रीति जिसमें कि अभिकथित रूप से अपराध कारित किया गया था, पीड़ित और इसी भांति संपूर्ण समाज पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव, दोषी व्यक्ति के दोषीचित्त और लोक हित पर पड़ने वाले प्रभाव, अपराध के तुरंत पश्चात् दोषसिद्ध व्यक्ति का आचरण और तत्पश्चात् दोषी का पूर्व इतिहास, अपराध की घोरता और पीड़ित के आश्रितों या पीड़ित के संरक्षकों पर पड़ने वाले इसके प्रभाव की प्रकृति की जांच करने का कर्तव्य उच्च न्यायालय पर डाला गया है । निर्देश पर चर्चा करते समय उच्च

न्यायालय को अत्यंत व्यापक रूप से यह सुनिश्चित करना चाहिए कि निर्देश का अंतिम परिणाम शांति प्रेमी नागरिकों के चित्त पर विश्वास उत्पन्न करे और अपराधों में लिप्त होने वाले अन्य व्यक्तियों के लिए भयोपरी के रूप में भी कार्य करने के उद्देश्य को हासिल करेगा । (पैरा 17)

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि राजस्थान उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने निर्देश पर ऐसे लापरवाहीपूर्ण रीति में निपटारा करते समय उपर्युक्त महत्वपूर्ण पहलुओं की अवेक्षा नहीं की । यह कथन किया जाना होगा कि यदि हमारे समक्ष अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा की गई दलीलों पर यदि गुणागुण के आधार पर विचार किया जाए, तब वे केवल विवाद्यक पर ऐसी रीति में विचार किया जाना अपेक्षित करेंगे जो कि सामान्य अनुक्रम में खंड न्यायपीठ द्वारा धारा 366(1) के अधीन निर्देश पर चर्चा करते समय विचार और परीक्षा की जानी चाहिए थी । चूंकि उक्त प्रक्रिया निर्देश के साथ अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील पर चर्चा करते समय खंड न्यायपीठ द्वारा अपनाई जानी चाहिए थी, खंड न्यायपीठ को मामले को दुरुस्त करने के लिए उक्त प्रक्रिया जिसका पालन करना इस पर आबद्ध है को करने की मंजूरी दी जाती है । निर्देश के ऐसे मामलों में खंड न्यायपीठ पर डाले गए कर्तव्य पर बल देने के लिए हम यह दोहराते हैं कि प्रक्रिया के संबंध में ऐसा छोटा मार्ग अपनाया जाना संबंधित न्यायालय पर अत्यंत बुरा प्रभाव डालेगा । (पैरा 18)

हम यह मानते हैं कि यह खंड न्यायपीठ पर आबद्धकर कर्तव्य है कि वह ऊपर वर्णन की गई रीति में ऐसी प्रक्रिया का पालन करे और इसलिए हम उक्त कारण से इस अपील में आक्षेपित निर्णय को अपास्त करना उपयुक्त समझते हैं और मामले को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 366 के अधीन मामले का उस रीति में विनिश्चय करने के लिए उच्च न्यायालय को वापस प्रति प्रेषित करते हैं जिस रीति में कि इसका विनिश्चय किया जाना चाहिए । चूंकि अपीलार्थी की दोषसिद्धि और उस पर अधिरोपित दंडादेश विचारण न्यायालय की तारीख 9 मार्च, 2007 के निर्णय द्वारा किया गया था और अभिकथित अपराध तारीख 16 नवंबर, 2006 का था, मामले को वापस उच्च न्यायालय को प्रति प्रेषित करते हुए, हम उच्च न्यायालय को निर्देश के साथ, अपीलों का शीघ्र निपटारा करने का निदेश देते हैं और किसी भी दशा में यह उच्च न्यायालय को वापस अभिलेख भेजे जाने की प्राप्ति की तारीख से तीन माह के भीतर किया जाना चाहिए । उच्च न्यायालय के प्रति उपर्युक्त निर्देशों के साथ अपील का निपटारा किया गया । (पैरा 19)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2008 की दांडिक अपील सं. 407.

राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर द्वारा 2007 की खंड न्यायपीठ दांडिक अपील सं. 243 में तारीख 11 जुलाई, 2007 को दिए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री आर. के. दास, ज्येष्ठ अधिवक्ता, सूचित मोहंती, अंशुमान पटनायक और अनुपम लाल दास
प्रत्यर्थी की ओर से	सुश्री सोनिया माथुर और श्री मिलिन्द कुमार

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति फकीर मोहम्मद इब्राहिम कलीफुल्ला ने दिया ।

न्या. कलीफुल्ला – एक मात्र अभियुक्त द्वारा फाइल की गई यह अपील राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर की खंड न्यायपीठ द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 361 के अधीन दांडिक हत्या निर्देश और इसके साथ 2007 की दांडिक अपील सं. 1 और इसी भांति 2007 की दांडिक अपील सं. 243 में खंड न्यायपीठ के निर्णय और आदेश और इसके साथ दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 374(2) के अधीन 2007 की कारागार अपील सं. 313 जो 2006 की सेशन मामला सं. 2 में अपर सेशन न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक) सं. 1 द्वारा पारित किए गए तारीख 9 मार्च, 2007 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई थी में तारीख 11 जुलाई, 2007 को दिए गए खंड न्यायपीठ के निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है । अपीलार्थी के विरुद्ध दंड संहिता, 1860 की धाराओं 376 और 302 के अधीन आरोपों के लिए कार्रवाई की गई थी ।

2. अभियोजन के अनुसार तारीख 18 जनवरी, 2006 को लालतू मांझी द्वारा भारसाधक अधिकारी, पुलिस थाना, शास्त्री नगर, जोधपुर के समक्ष एक परिवाद (प्रदर्श पी-6) फाइल किया गया था जिसके अधीन यह अभिकथन किया गया था कि उसकी पुत्री भारती (मृतका) अपीलार्थी के घर में एक नौकरानी के रूप में नियोजित थी और परिवाद की तारीख से 25 दिन पूर्व सुदीप डे जिसकी मार्फत उसकी पुत्री अपीलार्थी के पास नियोजन में लगी थी, ने उसे फोन पर यह सूचित किया था कि उसकी पुत्री उससे बातचीत करना चाहती है, जब उसने अपनी पुत्री से बातचीत की तब उसे अपीलार्थी के घर में अपनी पुत्री के साथ की जा रही दुर्दशा

का ज्ञान हुआ । यद्यपि उसकी पुत्री अपीलार्थी के द्वारा किए जा रहे उसके साथ बुरे व्यवहार के संबंध में उसे स्पष्ट बताना चाहती थी, उसे विस्तार से उन्हें अपनी बात बताने से रोका गया था और तारीख 16 जनवरी, 2006 के प्रातःकाल लगभग 5.00 बजे उन्हें सुदीप डे से यह सूचना मिली कि अपीलार्थी ने उसे फोन पर यह सूचित किया था कि उनकी पुत्री चक्कर आने के कारण बेहोश हो गई थी और उसे अस्पताल में भर्ती किया गया है। इस सूचना पर जब मृतका का पिता जोधपुर पहुंचा तब अपीलार्थी ने सुदीप डे की मार्फत उन्हें ये सूचित किया गया था कि उनकी पुत्री मृत थी और उन्होंने तारीख 18 जनवरी, 2006 को एम. जी. अस्पताल के मुर्दाघर में अपने पुत्री के शव को देख सकते हैं जहां उन्होंने मृतका के पूरे शरीर पर क्षतियों की अवेक्षा की । उनके अनुसार जब उन्हें अपीलार्थी के पड़ोसियों के मार्फत सूचना मिली थी कि अपीलार्थी निरंतर रूप से पिछले दो माह के दौरान मृतका को यंत्रणा देता रहा है जिन दो माह के दौरान वह अपीलार्थी के घर में नियोजित थी और इसके अलावा उन्हें अपनी पुत्री के प्रति उसके अनैतिक आचरण के संबंध में भी उन पड़ोसियों से पता चला । इसके आगे यह भी कथन किया गया था कि उसकी पुत्री की अपीलार्थी द्वारा गला घोंटकर हत्या की गई थी ।

3. उपर्युक्त रिपोर्ट के आधार पर मामला, 2006 की अपराध सं. 31 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया था और अन्वेषण के पश्चात् अंतिम रिपोर्ट फाइल की गई थी जिसके अनुसरण में अपीलार्थी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 की धाराओं 302 और 376 के अधीन अपराधों के लिए आरोप विरचित किए गए थे ।

4. विचारण न्यायालय के समक्ष अभियोजन के समर्थन में प्रदर्श पी-1 से पी-2 के अलावा अभियोजन साक्षियों 1 से 17 की परीक्षा की गई थी । दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन प्रश्न पूछे जाने पर अपीलार्थी ने उसके विरुद्ध अभिकथित अपराधों का खंडन किया । उसके अनुसार उसने मृतका से बलात्संग नहीं किया था, मृतका मिरगी की रोगी थी और घटना की तारीख को उसे मिरगी के दौरे आ रहे थे जिसके कारण उसे सांस लेने में कठिनाई हो रही थी और वह बेचैन हो गई थी और तत्पश्चात् जमीन पर गिर गई थी जिसके कारण उसे क्षतियां पहुंची थीं और उसे कृत्रिम श्वांस देने के लिए अपीलार्थी और उसकी पत्नी ने उनके दांत खोलने और उसमें पानी डालने के पश्चात् उसे एक तिपहिया टैक्सी में अस्पताल ले गया था जहां उसे मृत घोषित किया गया था । अपीलार्थी

द्वारा उसके आगे यह कथन किया गया था कि उसने मृतका के माता-पिता को सूचित किया था और परिवाद मिथ्या था और वह निर्दोष था ।

5. प्रारंभ में ही एक पहलू जो अवेक्षा किए जाने के लिए सुसंगत है वह यह है कि शवपरीक्षा रिपोर्ट के अनुसार मृतका के शरीर के सभी अंगों पर कुल मिलाकर 27 क्षतियां पहुंची थीं और विशेष रूप से क्षति सं. 19, 20 और 21 मृतका के गुप्तांगों पर पहुंची थीं । चिकित्सक अर्थात् अभि. सा. 9 जिसने शवपरीक्षा की थी, ने शवपरीक्षा रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया कि 'गले का विच्छेदन किए जाने पर - मृत्युपूर्व त्वचा के नीचे और मुलायम ऊतकों के नीचे गले के दाईं ओर लाल रंग के खून के थक्के विद्यमान थे । इसके आगे परीक्षा किए जाने पर श्वांस नली के ऊपरी भाग पर मुलायम नसों के दोनों ओर और उन पर कंठच्छद (स्वर यंत्रच्छद) के नीचे विषम मृत्युपूर्व गहरे लाल रंग के रक्त के थक्के विद्यमान थे । कंठिका अस्थि, टेटुआ और कार्टिकोड उपास्थियां सही पाई गई थीं, श्वांस नली का श्लेष्म भी ऊपरी आधे भाग में संकुचित था' ।

मत – मृत्यु का कारण, गले पर पहुंची मृत्युपूर्व क्षतियां हैं जो मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हैं ।

6. चिकित्सक की आगे की रिपोर्ट यह थी कि मृतका के कंठ (स्वरयंत्र) के ऊपर दबाव था । प्रदर्श पी-14 और पी-15 के अधीन आगे की रिपोर्टों में यह अवेक्षा की गई थी कि श्वांस प्रणाल के अनेक भाग कटे हुए थे और नसों में कसाव पाया गया था और इसके अतिरिक्त अनेक स्थानों पर रक्तस्राव और प्रदाह विद्यमान था । अभि. सा. 9 ने इसके आगे यह अवेक्षा की कि मृतका के श्वांस प्रणाल की तह पर दबाव था और क्षतियां कारित की गई थीं । अभि. सा. 9 चिकित्सक, जो गांधी अस्पताल, जोधपुर के अधीक्षक द्वारा गठित चिकित्सीय बोर्ड का सदस्य था, ने मृतका की शव की शवपरीक्षा की थी ।

7. अभि. सा. 9 ने अपने साक्ष्य में निम्न कथन किया :–

> "त्वचा और मुलायम ऊतकों के नीचे गले के बाईं ओर मृत्युपूर्व लाल रंग के रक्त के थक्के विद्यमान थे । आगे और परीक्षा किए जाने पर कठच्छद नीचे दोनों ओर विषम मृत्युपूर्व गहरे लाल रंग रक्त के थक्के विद्यमान थे जो वे श्वांस प्रणाल के ऊपरी भाग पर मुलायम नसों पर भी थे । टेटुआ, थायराइड और वलय ठीक पाए गए थे । स्वर यंत्रच्छद भी ऊपरी आधे भाग में संकुचित पाया गया था ।

शव की आंतरिक परीक्षा किए जाने पर यह पाया गया था कि बाएं सामने के क्षेत्र पर गहरे लाल रंग के 2 × 2 सें. मी. के क्षेत्र में सबस्कल्प रक्त के थक्के विद्यमान थे और नीचे की पंक्ति के निकट बाएं अनुकपाल अस्थि क्षेत्र 3 × 2 सें. मी. आकार के गहरे लाल थे । मस्तिष्क, दो फेफड़े, लिवर, तिल्ली और किडनी संकुचित पाए गए थे । उदर की झिल्ली पीली थी और उदर में लगभग 100 मिलिग्राम पीला द्रव्य अंतर्विष्ट था । यौन अंगों की परीक्षा किए जाने पर योनिच्छद में पुरानी ठीक हो गई फटन थी और योनि छिद्र में सुगमता से दो अंगुली प्रविष्ट हो सकती थीं । गर्भाशय आकार में छोटा, स्वस्थ और खाली पाया गया था ।'

8. विचारण न्यायालय ने चिकित्सीय साक्ष्य के आधार पर निम्न कथन किया :–

"यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि मृतका को पहुंची क्षति सं. 14 वक्ष के विपरीत मध्य भाग में और क्षति सं. 14 के ऊपर दाहिनी ओर पहुंची थी और 2 × 2 सें. मी. 4 × 2 सें. मी. के बीच अनेक खरोंचे वहां पर थीं जिनका उल्लेख किया गया है ।

मृतका के वक्ष के निचले भाग में बाएं चूचुक के ऊपर, बांए चूचुक के चारों ओर गोल आकार में वक्ष के किनारे के भाग पर दाहिनी ओर पेट पर एक तिहाई भाग में अनेक खरोंचों के रूप में मृतका को क्रमशः क्षति सं. 15, 19, 20, 21, 25 और 26 पहुंचाई गई थीं ।

उपर्युक्त सभी क्षतियां संभवतया मिरगी के दौरे में असहजता पाने के दौरान पहुंचान संभव नहीं हैं ।

* * * * *

अभि. सा. 9 डा. पी. सी. व्यास के साक्ष्य से यह स्पष्ट रीति में साबित होता है कि मृतका की मृत्यु का कारण वह क्षति थी जो उसके गले के आंतरिक भाग पर और बाह्य दबाव के परिणामस्वरूप उसे पहुंची थी । इसलिए यह स्पष्ट है कि मृतका की मृत्यु, गले पर कारित क्षति और गला घोंटे जाने के कारण हुई थी तथा उक्त क्षति मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थी । अभि. सा. 9 डा. पी. सी. ब्यास के अनुसार गले के आंतरिक भागों के संदर्भ में उपर्युक्त कथन की पुष्टि हिस्टोपैथोलॉजी रिपोर्ट प्रदर्श पी-14 से भी होती है । आंतरिक स्वर नली में और श्वांस प्रणाल भाग पर खरोंचयुक्त घाव

पाए गए हैं ।

इसलिए अभि. सा. 9 डा. पी. सी. ब्यास के एकल साक्ष्य से यह तथ्य संदेह के परे साबित होता है कि मृतका कुमारी भारती की मृत्यु मिरगी के दौरे के परिणामस्वरूप सांस लेने में घुटन के कारण नहीं हुई थी । मृतका को मिरगी के दौरे के दौरान उपर्युक्त 27 क्षतियां, पहुंचने के संबंध में कोई संभावनाएं प्रकट नहीं हो सकी हैं ।"

9. विचारण न्यायालय ने साक्ष्य के विस्तृत विश्लेषण के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी भारतीय दंड संहिता, 1860 की धाराओं 302, 376/511 के अधीन आरोंपो का दोषी था । दंडादेश के प्रश्न पर अपीलार्थी और इसी भांति विद्वान् लोक अभियोजक की सुनवाई करने और मृत्यु दंड अधिरोपित करने के लिए लागू किए जाने वाले सिद्धांतों के संबंध में इस न्यायालय के विभिन्न विनिश्चय को निर्दिष्ट करने के पश्चात् अंततः निम्न अभिनिर्धारित किया गया था :–

"साक्ष्य से यह स्थिति स्पष्ट रूप से साबित होती है कि मृतका कुमारी भारती 14 वर्ष की आयु की अवयस्क लड़की थी और यह भी साक्ष्य से साबित होता है कि लड़की के पिता अभि. सा. 3 लालतू मांझी ने उसे पश्चिम बंगाल से जोधपुर में ब्यास कालोनी स्थित निवास पर घरेलू नौकरानी के रूप में अभियुक्त के घर पर कार्य करने के लिए भेजा था । मृतका का पिता लालतू मांझी अत्यंत ही निर्धन परिवार से संबंधित है और उसने अपनी वित्तीय परिस्थितियों के कारण अभियुक्त पर यह विश्वास करते हुए कि वह उसकी पुत्री को अपने स्वयं की पुत्री के रूप में रखेगा, अपनी पुत्री को पश्चिम बंगाल से राजस्थान में इतनी दूर भेजा था । घटना के समय अभियुक्त कुनाल मजूमदार वायु सेना स्टेशन जोधपुर में कार्य कर रहा था । अभियुक्त के संरक्षण में होने के कारण अभियुक्त ने संरक्षक होते हुए मृतका के साथ अत्यंत घोर अमानवीय कृत्य किया था और मृतका भारती के साथ बलात्संग करने के दौरान उसके शरीर के विभिन्न भागों पर कुल 27 क्षतियां कारित कीं और तत्पश्चात् उसका गला घोंटने के बाद उसकी हत्या कर दी । अभियुक्त ने मृतका के प्राइवेट शारीरिक अंगों पर अर्थात् दोनों स्तनों पर क्षतियां कारित कीं और इसके साथ ही मृतका के स्तनों के निकट भी अनेक शारीरिक क्षतियां कारित कीं । इस प्रकार से अभियुक्त ने अवयस्क लड़की जो कि स्वयं प्रतिरोध करने में असमर्थ थी, के साथ इस प्रकार का अनैतिक

कार्य कारित किया ।"

10. विचारण न्यायालय ने इसलिए दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन साबित पाए गए अपराध के लिए मृत्यु दंड अधिरोपित करने के अलावा पांच हजार रुपए का जुर्माना भी अधिरोपित किया और दंड संहिता की धारा 376/511 के अधीन अपराध के लिए सात वर्ष के कठोर कारावास के दंडादेश के साथ 25,000/- रुपए का जुर्माना अधिरोपित किया और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम किए जाने पर उसे दो अतिरिक्त वर्षों का कारावास भोगना था । चूंकि मृत्यु दंड अधिरोपित किया गया था, इसलिए मामला दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 366(1) के अधीन पुष्टि के लिए उच्च न्यायालय को निर्देश किया गया था और इसके निष्पादन के पूर्व उच्च न्यायालय की पुष्टि के लिए प्रतीक्षा किए जाने का आदेश किया गया था ।

11. हमने अपीलार्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री आर. के. दास और राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल की सुनवाई की है । हमने अपीलार्थी की ओर से फाइल किए गए लिखित कथनों का भी परिशीलन किया है । इसमें यहां कथित कारणों से, हम अपीलार्थी की ओर से उपस्थित हुए विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल की मामले के गुणागुणों पर प्रस्तुत की गई दलीलों पर विचार करने के लिए कोई कारण नहीं पाते हैं । विचारण न्यायालय के निर्णय का परिशीलन करने के पश्चात् जब हम उच्च न्यायालय के निर्णय की परीक्षा करते हैं, तब हमें यह अवेक्षा करते हुए आघात पहुंचता है कि मृत्यु दंड निर्देश की पुष्टि के लिए मामले पर राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर की खंड न्यायपीठ द्वारा अत्यंत ही प्रायिक और अन्य मनस्क रीति में विचार किया गया था और मात्र यह कथन किया गया कि अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने मृत्यु दंड को आजीवन कारावास में लघुकृत करने के लिए सहानुभूतिपूर्वक विचार करने के लिए प्रार्थना की थी और राज्य के विद्वान् लोक अभियोजक से कोई प्रबल समर्थन न मिलने के कारण और मृतका को पहुंची क्षतियों के परिणामस्वरूप हुई मृत्यु, मृतका के साथ बर्बरता और अमानवीय रूप से बलात्संग और हत्या किए जाने के लिए किसी घोर बल के प्रयुक्त किए जाने को नहीं सुझाते थे और इसलिए दंड संहिता की धारा 370 सपठित धारा 511 के अधीन अपराधों के लिए अधिनिर्णीत दंडादेश को मान्य ठहराते हुए धारा 302 के अधीन मृत्यु दंड को आजीवन कारावास में प्रवृत्त किया जा सकता है ।

12. उच्च न्यायालय के उक्त निर्णय के विरुद्ध यह अपील फाइल करते हुए अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य दोषसिद्ध किए जाने के लिए पर्याप्त नहीं है और परिणामस्वरूप अधिरोपित दंडादेश मान्य नहीं ठहराया जा सकता ।

13. हमने उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के निर्णय की शुद्धता के संबंध में राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल को भी सुना है । क्रमिक काउंसेल खंड न्यायपीठ के निर्णय की शुद्धता या उसके अशुद्धता के संबंध में दलील प्रस्तुत करने की स्थिति में नहीं थे क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 366(1) के अधीन निर्देश में अधिरोपित दंडादेश जिस रीति में इस पर विचार किया जाना अपेक्षित था, उस रीति के अनुसार गुणागुणों और खामियों पर पूर्णतया कोई विचार नहीं किया गया था ।

14. यदि अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल की दलीलों पर विस्तार से विचार किया जाना था, तब इनको देखने पर ही यह उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष स्वयं अपीलार्थी के पक्षकथन के विरोध में थी, क्योंकि उच्च न्यायालय में यह अभिलिखित किया गया था कि विद्वान् काउंसेल, जिसने अपीलार्थी का प्रतिनिधित्व किया, उसके द्वारा इस प्रभाव की केवल एक दलील दिए जाने का कथन किया गया है कि न्यायालय अपीलार्थी के मामले पर मृत्यु दंड को आजीवन कारावास में परिवर्तित करने के लिए सहानुभूतिपूर्वक विचार करे और मुख्य अपराध के लिए आजीवन कारावास की प्रार्थना करते समय दंड संहिता, 1860 की धाराओं 376/511 के अधीन अपराध के लिए पारित किए गए दंडादेश को कोई गंभीर महत्व नहीं दिया था । यह मान भी लेते हुए कि अपीलार्थी की ओर से ऐसा कथन किया गया जैसा कि वह प्रथमदृष्ट्या हम यह समझने में असमर्थ हैं कि किस प्रकार विद्वान् लोक अभियोजक यह दलील दे सकते थे कि न्यायालय अपीलार्थी के मामले पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करे, जैसा कि खंड न्यायपीठ द्वारा इसमें यहां आक्षेपित निर्णय में अभिलिखित किया गया है ।

15. उच्च न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 366(1) के अधीन मृत्यु दंड की पुष्टि के लिए विचार करने के मामले में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धाराओं 367 से 371 में अंतर्विष्ट उपबंधों के प्रति विशेष संदर्भ में निर्देश की परीक्षा करने को आबद्ध है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 367 के अधीन जब निर्देश उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तब यदि उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि आगे की जांच की जानी चाहिए या अतिरिक्त साक्ष्य लिया जाना चाहिए । दोषी व्यक्ति की

दोषिता या निर्दोषिता पर प्रभाव डालने वाले किसी बिंदु के संबंध में यह ऐसी जांच कर सकता है या स्वतः ऐसा साक्ष्य ले सकता है या सेशन न्यायालय द्वारा ऐसा किए जाने या साक्ष्य लिए जाने का उसे निर्देश दे सकता है । ऐसी परिस्थितियों में अभियुक्त की उपस्थिति के संबंध में आनुषंगिक शक्तियां दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 367 के उपखंड (2) और (3) के अधीन उपबंधित की गई हैं । धारा 366 के अधीन निर्देश पर विचार करते हुए धारा 368 के अधीन यह अन्य बातों के अलावा दंडादेश की पुष्टि के लिए या विधि के अधीन को अन्य दंडादेश पारित करने या स्वतः दोषसिद्धि रद्द करने और इसके स्थान पर अभियुक्त को किसी अन्य अपराध के लिए दोषसिद्ध करने का उपबंध करती है जिसके लिए सेशन न्यायालय अभियुक्त को दोषसिद्ध कर सकता था या उन्हीं तथ्यों पर नए विचारण के लिए आदेश कर सकता था या आरोप में संशोधन किए जाने के लिए आदेश कर सकता था । यह अभियुक्त को दोषमुक्त भी कर सकेगा । धारा 370 के अधीन जब ऐसा निर्देश न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा सुनवाई किया जाता है और यदि उनके बीच राय के संबंध में विभाजित है, तब मामला धारा 392 के अधीन उपबंधित रीति में विनिश्चय किया जाना चाहिए जिसके अनुसार मामला उक्त न्यायालय के एक अन्य न्यायाधीश के समक्ष रखा जाना चाहिए जो अपनी राय देगा और निर्णय या आदेश उक्त राय का अनुसरण करना चाहिए । यहां पुनः धारा 392 के परंतुक के अधीन, यह उल्लेख किया गया है कि यदि न्यायपीठ में सम्मिलित न्यायाधीशों में से एक न्यायाधीश या जहां अपील एक अन्य न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत की जाती है, उनमें से कोई भी, यदि ऐसा अपेक्षित हो, न्यायाधीशों की वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा विनिश्चय किए जाने के लिए अपील की पुनः सुनवाई किए जाने का निदेश दे सकता है ।

16. जब ऐसा विशेष और प्रमुख दायित्व दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 366(1) के अधीन निर्देश पर विचार करने वाले उच्च न्यायालय पर अधिरोपित किया गया है, तब हमें यह अवेक्षा करते हुए आघात पहुंचता है कि इसमें यहां आक्षेपित आदेश में, खंड न्यायपीठ ने मात्र इस प्रभाव का निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने दंड संहिता, 1860 की धाराओं 376/511 के अधीन अपराध के लिए अधिरोपित दंडादेश को बनाए रखने के लिए प्रार्थना करते हुए दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन आने वाले अपराध के लिए मृत्यु दंड को आजीवन कारावास में लघुकृत करने के लिए सहानुभूति दर्शाने के लिए अभिवाक् किया था और विद्वान् लोक अभियोजक द्वारा कोई प्रतिवाद नहीं किया गया था । खंड न्यायपीठ ने एक मात्र उक्त आधार पर और मात्र यह

कथन करते हुए कि अपीलार्थी के हाथों आहत पर घोर प्रकृति के बल का कोई प्रयोग नहीं किया गया था और हत्या के अपराध का किया जाना जघन्य या अमानवीय अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता और परिणामस्वरूप मृत्यु दंडादेश दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए आजीवन कारावास में परिवर्तित किए जाने के लिए दायी था, उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धाराओं 368 से 370 और 392 के साथ पठित धारा 366(1) के अधीन इसमें निहित अधिकारिता का उसकी भावना और परिप्रेक्ष्य में प्रयोग नहीं किया है और एतद्द्वारा हमारे मत में निर्देश का विनिश्चय करते समय उस रीति जिसमें कि इसे दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन इसका विनिश्चय करना चाहिए था, में विनिश्चय करने के अपने दायित्व को नहीं निभाया है । हम यह महसूस करते हैं कि आक्षेपित निर्णय पारित करते समय धारा 366(1) के अधीन निर्देश पर विचार करते समय खंड न्यायपीठ द्वारा निर्णय उद्घोषित करते समय सरसरी रीति में कार्य किया गया था और इस संबंध में जितना कम कहा जाए उतना बेहतर है ।

17. तथापि, हम यह कथन करने और यह अभिलिखित करने के लिए कर्तव्य आबद्ध हैं कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 366(1) के अधीन किए गए निर्देश में उच्च न्यायालय के लिए सिद्धदोष व्यक्ति की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा या राज्य के विद्वान् काउंसेल की ओर से की गई कोई रियायत पर अवलंब मात्र लेते हुए निर्देश की प्रक्रिया में छोटा मार्ग अपनाने का कोई प्रश्न नहीं उठता । उच्च न्यायालय पर वह रीति जिसमें अपराध कारित किया गया था की प्रकृति, दोषी की आपराधिक मनःस्थिति यदि कोई हो, विचारण न्यायालय द्वारा अवेक्षा की गई आहत की दुर्दशा (दुख) की वह रीति जिसमें कि अभिकथित रूप से अपराध कारित किया गया था, पीड़ित और इसी भांति संपूर्ण समाज पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव, दोषी व्यक्ति के दोषीचित्त और लोकहित पर पड़ने वाले प्रभाव, अपराध के तुरंत पश्चात् दोषसिद्ध व्यक्ति का आचरण और तत्पश्चात् दोषी का पूर्व इतिहास, अपराध की घोरता और पीड़ित के आश्रितों या पीड़ित के संरक्षकों पर पड़ने वाले इसके प्रभाव की प्रकृति की जांच करने का कर्तव्य उच्च न्यायालय पर डाला गया है । निर्देश पर चर्चा करते समय उच्च न्यायालय को अत्यंत व्यापक रूप से यह सुनिश्चित करना चाहिए कि निर्देश का अंतिम परिणाम शांति प्रेमी नागरिकों के चित्त पर विश्वास उत्पन्न करे और अपराधों में लिप्त होने वाले अन्य व्यक्तियों के लिए भयोपरी के रूप में भी कार्य करने के उद्देश्य को हासिल करेगा ।

18. यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि राजस्थान उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने निर्देश पर ऐसे लापरवाहीपूर्ण रीति में निपटारा करते समय उपर्युक्त महत्वपूर्ण पहलुओं की अवेक्षा नहीं की । यह कथन किया जाना होगा कि यदि हमारे समक्ष अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा की गई दलीलों पर यदि गुणागुण के आधार पर विचार किया जाए, तब वे केवल विवाद्यक पर ऐसी रीति में विचार किया जाना अपेक्षित करेंगे जो कि सामान्य अनुक्रम में खंड न्यायपीठ द्वारा धारा 366(1) के अधीन निर्देश पर चर्चा करते समय विचार और परीक्षा की जानी चाहिए थी । चूंकि उक्त प्रक्रिया निर्देश के साथ अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील पर चर्चा करते समय खंड न्यायपीठ द्वारा अपनाई जानी चाहिए थी, खंड न्यायपीठ को मामले को दुरुस्त करने के लिए उक्त प्रक्रिया जिसका पालन करना इस पर आबद्ध है को करने की मंजूरी दी जाती है । निर्देश के ऐसे मामलों में खंड न्यायपीठ पर डाले गए कर्तव्य पर बल देने के लिए हम यह दोहराते हैं कि प्रक्रिया के संबंध में ऐसा छोटा मार्ग अपनाया जाना संबंधित न्यायालय पर अत्यंत बुरा प्रभाव डालेगा ।

19. हम यह मानते हैं कि यह खंड न्यायपीठ पर आबद्धकर कर्तव्य है कि वह ऊपर वर्णन की गई रीति में ऐसी प्रक्रिया का पालन करे और इसलिए हम उक्त कारण से इस अपील में आक्षेपित निर्णय को अपास्त करना उपयुक्त समझते हैं और मामले को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 366 के अधीन मामले का उस रीति में विनिश्चय करने के लिए उच्च न्यायालय को वापस प्रति प्रेषित करते हैं जिस रीति में कि इसका विनिश्चय किया जाना चाहिए । चूंकि अपीलार्थी की दोषसिद्धि और उस पर अधिरोपित दंडादेश विचारण न्यायालय की तारीख 9 मार्च, 2007 के निर्णय द्वारा किया गया था और अभिकथित अपराध तारीख 16 नवंबर, 2006 का था, मामले को वापस उच्च न्यायालय को प्रति प्रेषित करते हुए, हम उच्च न्यायालय को निर्देश के साथ, अपीलों का शीघ्र निपटारा करने का निदेश देते हैं और किसी भी दशा में यह उच्च न्यायालय को वापस अभिलेख भेजे जाने की प्राप्ति की तारीख से तीन माह के भीतर किया जाना चाहिए । उच्च न्यायालय के प्रति उपर्युक्त निर्देशों के साथ अपील का निपटारा किया गया ।

अपील खारिज की गई ।

अनू.

[2012] 4 उम. नि. प. 127

मुस्तफा शाहदल शेख

बनाम

महाराष्ट्र राज्य

14 सितम्बर, 2012

न्यायमूर्ति पी. सदाशिवम् और न्यायमूर्ति रंजन गोगोई

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 304-ख और 498-क – दहेज मृत्यु और क्रूरता – अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा अपनी पत्नी से क्रूरता करना और दहेज की मांग करते हुए तंग करना – विवाह के सात वर्ष के भीतर मृतका पत्नी की विष खाने के कारण मृत्यु होना क्योंकि साक्ष्य से दर्शित होना कि उस समय केवल अपीलार्थी और उसके माता-पिता ही घर में उपस्थिति थे – अपीलार्थी की दोषसिद्धि मान्य ठहराई गई ।

प्रस्तुत मामले में, यह अपील मुम्बई उच्च न्यायालय द्वारा 1990 की दांडिक अपील सं. 891 में तारीख 28 नवम्बर, 2007 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई जिसके अधीन उच्च न्यायालय ने इसमें यहां अपीलार्थी के विरुद्ध चतुर्थ अपर सेशन न्यायाधीश, कोल्हापुर द्वारा पारित तारीख 7 दिसम्बर, 1990 के दोषसिद्धि और दंडादेश के आदेश की पुष्टि की थी । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – दंड संहिता, 1860 की धारा 304-ख के उपबंधों के लागू होने के लिए, अपराध के मुख्य घटकों में से एक घटक जो साबित किए जाने के लिए अपेक्षित हैं, यह है कि "उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व" उसे "दहेज के लिए मांग या उसके संबंध में" क्रूरता या तंग किया गया हो । दंड संहिता की धारा 304-ख और साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113(ख) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व" असंगतता के परीक्षा के विचार से विद्यमान है । वस्तुत अपीलार्थी की ओर से उपस्थित हुए विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि दहेज की अभिकथित मांग और तंग किए जाने के लिए वहां पर कोई आसन्नता नहीं है । उक्त दावे के संबंध में हम अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर विचार करते हुए उसका उल्लेख करेंगे । यद्यपि उपर्युक्त भाषा "उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व" के संबंध में कोई निश्चित अवधि अधिनियमिति की गई है और अभिव्यक्ति "उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व" को दोनों अधिनियमों में परिभाषित

नहीं किया गया है । तदनुसार, "उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व" अभिव्यक्ति के भीतर आने वाली अवधि का अवधारण न्यायालयों द्वारा प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर आधारित होते हुए अवधारित किया जाएगा । तथापि, उक्त अभिव्यक्ति से सामान्य रूप से यह विवादित होगा कि संबंधित क्रूरता या तंग किए जाने के और प्रश्नगत मृत्यु के बीच अंतराल अधिक नहीं होना चाहिए । दूसरे शब्दों में, वहां पर आसन्नता की विद्यमानता होनी चाहिए और दहेज मृत्यु पर आधारित क्रूरता के प्रभाव और संबंधित मृत्यु के बीच एक जीवित कड़ी होनी चाहिए । यदि क्रूरता की अभिकथित घटना दूरस्थ समय की है और इससे संबंधित स्त्री के मानसिक संतुलन में बाधा नहीं पड़ती है, तब इसका कोई परिणाम नहीं होगा । (पैरा 8)

इन सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, हम अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य का विश्लेषण करेंगे । अब्दुल रहीम शेख, अभि. सा 4 जिसकी घटना के समय आयु लगभग 65 वर्ष थी, ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि मृतका – हसीना उसकी धेवती थी । हसीना उसी पुत्री चांदबी की पुत्री थी और उसका पति का नाम दिलावर खान है । उनके अनुसार, तारीख 26 जनवरी, 1989 को उसके विवाह के पश्चात्, वह अपीलार्थी अभियुक्त के उजालावाडी स्थित घर में रहने गई थी । वह वहां पर पांच दिनों तक रुकी थी और उनके घर लौट आई थी और 15 दिनों तक ठहरी थी । तत्पश्चात्, वह पुनः अपने ससुराल चली गई थी । बकरीद के समय, हसीना, उसका पति मुस्तफा (अभियुक्त सं. 1) – अपीलार्थी-अभियुक्त और हसीना का भाई अयूब पणजी गए थे । चार दिनों के पश्चात् अयूब और मुस्तफा पणजी से लौट आए थे और वह वहां पर 15 दिनों तक ठहरी थी । हसीना ने अपनी सभी वेदनाओं के संबंध में अपनी माता चांदबी (अभि. सा. 7) जो अभि. सा. 4 की पुत्री थी को वर्णन किया और यह बताया कि किस प्रकार अभियुक्त उसे पांच हजार रुपए और एक सोने की अंगूठी और चेन की मांग के लिए किस प्रकार यंत्रणा, पिटाई और गाली-गलौज कर रहे थे । जब अपीलार्थी और उसकी माता उसके घर आए तब उसने उन्हें यह बताया कि उन्होंने विवाह पर पहले ही छह हजार रुपए खर्च किए थे और वह अपीलार्थी को नौकरी दिलाने को तैयार था । इसके आगे उसने यह अभिसाक्ष्य दिया कि 5-6 दिनों के पश्चात्, वह अबुबाखार निमशिकारी अभि. सा. 10 – उक्त विवाह के मध्यस्थ के घर गया था और उसे दहेज की मांग पूरी करने के संबंध में मृतका के साथ की जारी क्रूरता और तंग

किए जाने के संबंध में बताया था । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि जब वह मृतका की मृत्यु के लगभग 2-4 दिन पूर्व अभियुक्त के घर पर गया था तब, जब वह उसे एक कमरे में ले गई थी और उससे यह वर्णन किया था कि किस प्रकार अभियुक्त धन और सोने की चेन की उनकी मांग के लिए उसके साथ और अधिक यंत्रणा देना प्रारंभ कर दिया था और उसने (मृतका) उससे यह भी कहा था कि वह इस संबंध में कुछ करे । उसने यह भी स्पष्ट किया कि चार दिनों के तत्पश्चात् हसीना के श्वसुर और सास उनके घर आए थे और उसे यह बताया था कि हसीना ने विष खा लिया था और उसे सी. पी. आर. अस्पताल में भर्ती किया गया था । उन्होंने उसे बोतल भी दिखाई थी । तत्पश्चात्, अभि. सा. 4 और उसकी पत्नी सी. पी. आर. अस्पताल के लिए दौड़े थे । जब वे अस्पताल पहुंचे तब चिकित्सक ने उन्हें यह सूचित किया कि उसे (मृतका) मृत लाया गया था । शव के निकट अभियुक्त के घर का कोई भी व्यक्ति उपस्थित नहीं था । तत्पश्चात्, वह खारवी पुलिस थाना गया था और एक रिपोर्ट दर्ज कराई थी जो प्रदर्श-20 है । वस्तुतः विचारण न्यायाधीश ने उसके साक्ष्य को अभिलिखित करते समय यह अवेक्षा की है कि मृतका का नाना – अभि. सा. 4 तथाकथित भावनात्मक हो गया था और साक्षी कठघरे में रोने लगा था । उसके एक बुजुर्ग व्यक्ति होने और मृतका – हसीना से लगाव होने के कारण उसका साक्ष्य स्पष्ट रूप से एक अपीलार्थी सहित अभियुक्तों के हाथों मृतका हसीना के साथ दहेज की मांग के लिए की गई यंत्रणा तंग किए जाने को स्पष्ट रूप से साबित करता है । (पैरा 9)

अभियोजन की ओर से परीक्षा किया गया अगला साक्षी दिलावर खान अभि. सा. 6 – मृतका का पिता है । अपने साक्ष्य में, उसने भी यह स्पष्ट किया है कि उसकी पुत्री ने यह बताया था कि उसके ससुरालजन उसकी पिटाई करने और उसे भूखा रखने के द्वारा उसे यह यंत्रणा देते रहते थे । उसने तत्पश्चात् यह उल्लेख किया कि तारीख 18 अगस्त, 1989 को, वह स्वयं और उसकी पत्नी अपने श्वसुर अर्थात् अभि. सा. 4 के तम्बालालवाडी स्थित घर गए थे और तत्पश्चात्, वे अभियुक्त के उजालावाडी स्थित घर गए थे । वहां पर भी हसीना ने उसके साथ की जा रही यंत्रणा और तंग किए जाने के संबंध में बताया था । वह रोने लगी थी और उसने अभि. सा. 6 को बताया था कि उसका पति – इसमें यहां अपीलार्थी उसे और अधिक यंत्रणा दे रहा था । अगले दिन, जब अपीलार्थी और उसकी माता उनके घर आए, तब अभि. सा. 6 ने उन्हें यह कहा कि वह अपीलार्थी

अभियुक्त को नौकरी दिलाएगा और वह उसकी पुत्री को तंग न करे । तथापि, उसने उसे नहीं सुना और उसका घर छोड़ कर चला गया । मृतका के पिता अभि. सा. 6 का साक्ष्य भी धन के संदाय के लिए किए जा रहे यंत्रणा और तंग किए जाने को साबित करता है और, वस्तुतः, यह उसकी (मृतका) मृत्यु की तारीख से ठीक पांच दिन पूर्व अर्थात् तारीख 18 अगस्त, 1989 को वर्णन किया गया था । यह अत्यंत स्पष्ट रूप से अभिव्यक्ति "उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व" को संपुष्ट करता है । अभियोजन द्वारा अवलंब लिया गया अगली साक्षी चांदबी की माता अभि. सा. 7 है । उसने भी अभि. सा. 4 और 6 के समान ही वर्णन किया है । उसके साक्ष्य से भी, यह स्पष्ट होता है कि अभियुक्त ने धन के लिए उसकी पुत्री को यंत्रणा और तंग किया था । (पैरा 10 और 11)

अभियोजन द्वारा अवलंब लिया गया अन्य साक्षी अयूब खान (अभि. सा. 9) – मृतका का भाई है । अभियोजन साक्षियों 4, 6 और 7 के समान ही उसने भी यह उल्लेख किया है कि उसकी बहन उसे बताती रहती थी कि उसका पति, ननद, श्वसुर और सास धन के संदाय और सोने के आभूषण के लिए अनेकों अवसर पर यंत्रणा दिए थे । उसके संपूर्ण साक्ष्य का परिशीलन भी अभियोजन साक्षियों 4, 6 और 7 द्वारा किए गए समरूप दावे की संपुष्टि करता है । यद्यपि अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अभियोजन द्वारा अवलंब लिए गए सभी साक्षी निकट संबंधी हैं और उनके पक्षकथन को साबित करने के लिए किसी बाहरी व्यक्ति की परीक्षा नहीं की गई है, हमारा यह मत है कि इस प्रकृति के मामले में अर्थात् वैवाहिक मृत्यु के मामले में, हम बाहरी व्यक्ति से यह प्रत्याशा नहीं कर सकते हैं कि वे सामने आए और मृतका के परिवार में जो कुछ घटित हुए थे, उसके संबंध में अभिसाक्ष्य दिए । हम पहले ही यह उजागर कर चुके हैं कि मृत्यु विवाह की तारीख से सात माह की अवधि के भीतर घटित हुई थी और उसकी अपने ससुराल में हुई थी । अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य में यह भी प्रकट हुए हैं कि मृत्यु की तारीख को अपीलार्थी और उसके माता-पिता घर में अकेले थे । इन परिस्थितियों में हम अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा की गई दलील को नामंजूर करते हैं । (पैरा 12 और 13)

उपर्युक्त साक्षियों के अलावा, डा. रामदास – चिकित्सक जिन्होंने शव परीक्षा की थी, की अभि. सा. 5 के रूप में परीक्षा की गई थी । शवपरीक्षा रिपोर्ट में उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि हसीना की मृत्यु विष दिए जाने

के कारण हुई थी । इसके आगे उन्होंने यह स्पष्ट किया कि विष पेट्रोलियम हाइड्रोकार्बन्स था । उन्होंने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि उक्त विष किसी मानव की मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त था । न्यायालय संतुष्ट है कि अभियोजन ने दंड संहिता, 1860 की धारा 304-ख के अधीन अपराध को स्पष्ट रूप से साबित किया है और विचारण न्यायालय द्वारा यह सही तौर पर स्वीकार किया गया है और उच्च न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि की गई थी । (पैरा 14 और 15)

दंड संहिता, 1860 की धारा 498-क जो पति या पत्नी के नातेदारों द्वारा क्रूरता किए जाने के संबंध में कथन करती है पर अब हम चर्चा करेंगे । उक्त उपबंध का उद्धरण किया जाना उपयोगी होगा । "**498-क किसी स्त्री के पति या पति के नातेदार द्वारा उसके प्रति क्रूरता करना** – जो कोई, किसी स्त्री का पति या पति का नातेदार होते हुए, ऐसी स्त्री के प्रति क्रूरता करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा । स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "क्रूरता" से निम्नलिखित अभिप्रेत है – (क) जानबूझकर किया गया कोई आचरण जो ऐसी प्रकृति का है जिससे कि स्त्री को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करने की या उस स्त्री के जीवन, अंग या स्वयं को (जो चाहे मानसिक हो या शारीरिक) गंभीर क्षति या खतरा कारित करने के लिए उसे करने की संभावना है ; या (ख) किसी स्त्री को तंग करना, जहां उसे या उससे संबंधित किसी व्यक्ति को किसी संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति के लिए किसी विधिविरुद्ध मांग को पूरी करने के लिए प्रपीड़ित करने की दृष्टि से या उसके अथवा उससे संबंधित किसी व्यक्ति के ऐसे मांग पूरी करने के असफल रहने के कारण इस प्रकार तंग किया जा रहा है ।" 1983 की अधिनियम सं. 46 द्वारा उपर्युक्त धारा अंतःस्थापित करने का उद्देश्य जोकि तारीख 25 दिसम्बर, 1983 के प्रभाव से प्रवृत्त हुई थी, का उद्देश्य पति या उसके नातेदारों जो पत्नी को उसे या उसके नातेदारों को दहेज की किसी विधिविरुद्ध मांग को पूरी करने के लिए प्रपीड़ित करने की दृष्टि से तंग करने या यंत्रणा देने के लिए दंडित करने के लिए अंतःस्थापित की गई थी । अभियोजन साक्ष्य जो की हमने पहले ही चर्चा किया है, क्रूरता के घटकों को स्पष्ट रूप से साबित करता है और कोई अतिरिक्त विस्तार से वर्णन किया जाना अपेक्षित नहीं है, दूसरी ओर हम विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष जिसकी उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई, से पूर्णतया सहमत हैं । (पैरा 16)

अंततः, अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा अपीलार्थी-अभियुक्त की आयु अर्थात् घटना के समय उसकी 23 वर्ष की आयु का होने पर विचार करते हुए उसके दंडादेश में कटौती के लिए एक दुर्बल तर्क उपस्थित किया गया था । यह भी अभिवाक् किया गया है कि वह अपने परिवार का एकमात्र जीविकोपार्जन करने वाला व्यक्ति है और दयालुता के लिए प्रार्थना की गई है । इन पहलुओं पर विचारण न्यायालय द्वारा दंड देते समय सम्यक् रूप से विचार किया गया था । इसके अतिरिक्त दंड संहिता, 1860 की धारा 304-ख यह आदेश देती है कि उपधारा (1) के निबंधनानुसार दोषसिद्धि के मामले में कारावास सात वर्ष से कम का नहीं हो सकेगा किन्तु यह आजीवन कारावास तक विस्तृत हो सकेगा । इस तथ्य को देखते हुए अभियोजन ने स्वीकार्य साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए युक्तियुक्त संदेह के परे अपने पक्षकथन को साबित किया है और यह तथ्य की सात वर्ष का न्यूनतम दंडादेश विहित किया गया है, सात वर्ष से कम का दंडादेश अधिनिर्णीत किया जाना संभव नहीं हो सकता । इन पहलुओं पर भी उच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया था । तदनुसार, हम अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा की गई इसी प्रकार की प्रार्थना नामंजूर करते हैं । (पैरा 17)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2004]	(2004) 3 एस. सी. सी. 98 : **यशोदा** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	8
[2003]	ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 3828 : **कालियापेरूमल** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ।	8

दांडिक (अपीली) अधिकारिता : 2008 की दांडिक अपील सं. 1406.

मुम्बई उच्च न्यायालय द्वारा 1990 की दांडिक अपील सं. 891 में तारीख 28 नवम्बर, 2007 को पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	श्री सुधांशु एस. चौधरी
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री सचिन जे. पाटिल और सुश्री आशा गोपालन नायर

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति पी. सदाशिवम् ने दिया ।

न्या. सदाशिवम् – यह अपील मुम्बई उच्च न्यायालय द्वारा 1990 की दांडिक अपील सं. 891 में तारीख 28 नवम्बर, 2007 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई जिसके अधीन उच्च न्यायालय ने इसमें यहां अपीलार्थी के विरुद्ध चतुर्थ अपर सेशन न्यायाधीश, कोल्हापुर द्वारा पारित तारीख 7 दिसम्बर, 1990 के दोषसिद्धि और दंडादेश के आदेश की पुष्टि की थी ।

2. इस अपील को उद्भूत करने वाले तथ्य और परिस्थितियां निम्न हैं :–

(क) तारीख 26 जनवरी, 1989 को मुस्तफा शाहदल शेख (प्रत्यर्थी सं. 1) इसमें यहां अपीलार्थी-अभियुक्त ने हसीना मुस्तफा शेख (मृतका) से तम्बालालवाडी, जिला कोल्हापुर, महाराष्ट्र में विवाह किया था । विवाह के पश्चात् हसीना अपीलार्थी के साथ अपने उजालावाडी तालुक करवीर, जिला कोल्हापुर, महाराष्ट्र में अपने ससुराल में रह रही थी । तारीख 23 अगस्त, 1989 को जबकि वह अपने ससुराल में थी उसने विष खाकर आत्महत्या कर ली । उसे सी. पी. आर. अस्पताल, कोल्हापुर ले जाया गया था जहां चिकित्सक ने उसे मृत लाया घोषित किया । अपीलार्थी और उसके माता-पिता ने उसकी मृत्यु के संबंध में उसके परिवार के सदस्यों को सूचित किया ।

(ख) उसी भांति, अब्दुल रहीम शेख (अभि. सा. 4) मृतका के दादा ने करवीर पुलिस थाना, कोल्हापुर पर एक प्रथम इत्तिला सूचना दर्ज कराई जिसमें उसने यह अभिकथन किया कि मृतका के साथ दहेज की मांग के कारण यंत्रणा और तंग किया जा रहा था । उक्त रिपोर्ट के आधार पर अपीलार्थी और उसके परिवार के सदस्यों के विरुद्ध दंड संहिता, 1860 (जिसे इसमें यहां "आई. पी. सी." निर्दिष्ट किया गया है) की धाराओं 306, 304-ख और धारा 498-क सपठित धारा 34 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए सी. पी. सं. 186/89 (प्रदर्श 20) रजिस्ट्रीकृत की गई थी ।

(ग) मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द किया गया था और उसे 1990 की सेशन मामला सं. 7 के रूप में संख्यांकित किया गया था और अभियुक्त सं. 1 पति, अभियुक्त सं. 2 पिता, अभियुक्त सं. 3 माता, अभियुक्त सं. 4 ननद को अभियुक्त सं. 1 से 4 के रूप में सूचीबद्ध किया गया था । विचारण के दौरान अभियोजन ने 12 साक्षियों की परीक्षा की और

अनेक दस्तावेजों को चिन्हांकित किया । विद्वान् चतुर्थ अपर सेशन न्यायाधीश ने तारीख 7 दिसम्बर, 1990 के आदेश द्वारा इसमें यहां अपीलार्थी की बहन (अभियुक्त सं. 4) को दोषमुक्त करते हुए अपीलार्थी और उसके माता-पिता को दंड संहिता की धारा 498-क और 304-ख सपठित धारा 34 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया और उन्हें क्रमशः एक वर्ष के कठोर कारावास के साथ एक हजार रुपए के जुर्माने से दंडादिष्ट किया और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम किए जाने पर उन्हें छह माह का अतिरिक्त कठोर कारावास भोगना था ।

(घ) इससे व्यथित होकर अपीलार्थी और उसके माता-पिता ने मुम्बई उच्च न्यायालय के समक्ष 1990 की दांडिक अपील सं. 891 फाइल की । उच्च न्यायालय के समक्ष अपील के लंबित रहने के दौरान अपीलार्थी के माता-पिता (अभियुक्त सं. 2 और अभियुक्त सं. 3) की मृत्यु हो गई और उनके संबंध में अपील उपशमित हो गई । उच्च न्यायालय ने तारीख 28 नवम्बर, 2007 के आक्षेपित निर्णय द्वारा अपील खारिज की और अपीलार्थी के विरुद्ध विचारण न्यायालय द्वारा की गई दोषसिद्धि और अधिरोपित दंडादेश की पुष्टि की ।

(ङ) अपीलार्थी ने उक्त निर्णय से व्यथित होकर विशेष अनुमति द्वारा इस न्यायालय के समक्ष यह अपील फाइल की है ।

3. अपीलार्थी-अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री सुधांशु एस. चौधरी और प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री सचिन जे. पाटिल की सुनवाई की गई ।

चर्चा :

4. इस अपील में एकमात्र विचारार्थ मुद्दा यह है कि क्या अभियोजन ने अपीलार्थी के विरुद्ध दंड संहिता, 1860 की धारा 304-ख और 498-क से संबंधित लगाए गए आरोपों के संबंध में मामले को साबित किया है ।

5. उपर्युक्त आरोपों के समर्थन में, अभियोजन ने प्रबलता से परिवाद (प्रदर्श 20), अभियोजन साक्षियों 4, 6, 7 और 9 के साक्ष्य और अन्य सुसंगत परिस्थिति अर्थात् यह कि मृत्यु तारीख 23 अगस्त, 1989 को घटित होने के कारण उनके विवाह की तारीख अर्थात् 26 जनवरी, 1989 से सात माह की अवधि के भीतर घटित हुई थी, पर अवलंब लिया है ।

6. अभियोजन पक्षकथन और इसी भांति प्रतिरक्षा अभिवाक् पर विचार

करने के पूर्व दंड संहिता, 1860 की धारा 304-ख जो दहेज मृत्यु से संबंधित है, के सुसंगत उपबंधों को उद्धृत करना वांछनीय होगा :–

> "304ख – दहेज मृत्यु – (1) जहां किसी स्त्री की मृत्यु किसी दाह या शारीरिक क्षति द्वारा कारित की जाती है या उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हो जाती है और यह दर्शित किया जाता है कि उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके पति ने या उसके पति के किसी नातेदार ने, दहेज की किसी मांग के लिए, या उसके संबंध में, उसके साथ क्रूरता की थी या उसे तंग किया था वहां ऐसी मृत्यु को 'दहेज मृत्यु' कहा जाएगा और ऐसा पति या नातेदार उसकी मृत्यु कारित करने वाला समझा जाएगा ।
>
> स्पष्टीकरण – इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए 'दहेज' का वही अर्थ है जो दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का 28) की धारा 2 में है ।
>
> (2) जो कोई दहेज मृत्यु कारित करेगा वह कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष से कम की नहीं होगी किन्तु जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा ।"

उपर्युक्त उपबंध 1986 की अधिनियम सं. 43 द्वारा अंतःस्थापित किया गया था और तारीख 19 नवम्बर, 1986 के प्रभाव से प्रवृत्त हुआ था । उपर्युक्त उपबंध के लागू होने के संबंध में कोई विवाद नहीं है चूंकि विवाह और मृत्यु 1989 में गठित हुए थे । दंड संहिता, 1860 की धारा 304-ख के अधीन दंडनीय अपराध के लिए किसी अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए निम्नलिखित घटक संतुष्ट किए जाने आवश्यक होते हैं : –

(i) स्त्री की मृत्यु दग्ध क्षतियों या शारीरिक क्षति या सामान्य परिस्थितियों से भिन्न परिस्थितियों में कारित हुई हो ;

(ii) ऐसी मृत्यु उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर घटित हुई हो ;

(iii) उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व, स्त्री के साथ उसके पति या उसके पति के किसी नातेदार द्वारा क्रूरता या तंग किया गया हो ;

(iv) ऐसी क्रूरता या तंग किया जाना दहेज की मांग के संबंध में या उसके लिए किया गया हो ।

जब उपर्युक्त घटक विश्वसनीय स्वीकार साक्ष्य द्वारा साबित किए जाते हैं, तब ऐसी मृत्यु दहेज मृत्यु कहलाएगी और ऐसा पति या उसके नातेदार द्वारा उसकी मृत्यु कारित किया जाना समझा जाएगा । यदि ऊपर वर्णित घटक विशेष उपबंध को देखते हुए आकर्षित होते हैं तब न्यायालय यह उपधारणा करेगा और ऐसे तथ्य क्या साबित होना अभिलिखित करेगा जब तक कि यह अभियुक्त द्वारा खंडन न कर दिए जाएं । तथापि, अभियुक्त को ऐसी अनिवार्य उपधारणा खंडन के लिए ऐसे साक्ष्य को प्रस्तुत करने की होगी क्योंकि बिना किसी त्रुटि के ऐसा करने का भार उसी के ऊपर होता है और वह ऐसे भार का निर्वहन अभियोजन साक्षियों की प्रतिपरीक्षा के द्वारा उत्तर पाते हुए या प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से साक्ष्य प्रस्तुत करने के द्वारा ऐसे भार का उन्मोचन कर सकता है ।

7. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113(ख) दहेज मृत्यु के संबंध में उपधारणा की बाबत निम्न कथन करती है :–

> "**धारा 113ख – दहेज मृत्यु के बारे में उपधारणा** – जब प्रश्न यह है कि किसी व्यक्ति ने किसी स्त्री की दहेज मृत्यु की है और यह दर्शित किया जाता है कि मृत्यु के कुछ पूर्व ऐसे व्यक्ति ने दहेज की किसी मांग के लिए या उसके संबंध में, उस स्त्री के साथ क्रूरता की थी या उसे तंग किया था तो न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि ऐसे व्यक्ति ने दहेज मृत्यु कारित की थी ।
>
> स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "दहेज मृत्यु" का वही अर्थ है जो भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 304ख में है ।"

जैसाकि पूर्वतर कथन किया गया है, दंड संहिता, 1860 की धारा 304ख के अधीन अभियोजन इस सबूत के भार से नहीं बच सकता कि तंग किया जाना या क्रूरता दहेज के लिए मांग से संबंधित थी और यह "उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व" कारित की गई थी । उक्त धारा के स्पष्टीकरण को देखते हुए, शब्द "दहेज" को दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 2 में यथापरिभाषित अनुसार समझा जाना चाहिए जो निम्न प्रकार है :–

> "धारा 2. "दहेज" की परिभाषा – इस अधिनियम में, "दहेज" से कोई ऐसी संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति अभिप्रेत है जो विवाह के समय या उसके पूर्व [या पश्चात् किसी समय –

(क) विवाह, के एक पक्षकार द्वारा विवाह के दूसरे पक्षकार को ; या

(ख) विवाह के किसी भी पक्षकार के माता-पिता द्वारा या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा विवाह के किसी भी पक्षकार को या किसी अन्य व्यक्ति को,

"उक्त पक्षकारों के विवाह के संबंध में] या तो प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः दी गई है या दी जाने के लिए करार की गई है, किन्तु उन व्यक्तियों के संबंध में जिन्हें मुस्लिम स्वीय विधि (शरियत) लागू होती है, मेहर इसके अन्तर्गत नहीं है ।"

8. दंड संहिता, 1860 की धारा 304ख के उपबंधों के लागू होने के लिए, अपराध के मुख्य घटकों में से एक घटक जो साबित किए जाने के लिए अपेक्षित हैं, यह है कि "उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व" उसे "दहेज के लिए मांग या उसके संबंध में" क्रूरता या तंग किया गया हो" । दंड संहिता की धारा 304ख और साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113(ख) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व" असंगतता के परीक्षा के विचार से विद्यमान है । वस्तुतः अपीलार्थी की ओर उपस्थित हुए विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि दहेज की अभिकथित मांग और तंग किए जाने के लिए वहां पर कोई आसन्नता नहीं है । उक्त दावे के संबंध में हम अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर विचार करते हुए उसका उल्लेख करेंगे । यद्यपि उपर्युक्त भाषा "उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व" के संबंध में कोई निश्चित अवधि अधिनियमिति नहीं की गई है और अभिव्यक्ति "उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व" को दोनों अधिनियमों में परिभाषित नहीं किया गया है । तदनुसार, "उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व" अभिव्यक्ति के भीतर आने वाली अवधि का अवधारण न्यायालयों द्वारा प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर आधारित होते हुए अवधारित किया जाएगा । तथापि, उक्त अभिव्यक्ति से सामान्य रूप से यह विवक्षित होगा कि संबंधित क्रूरता या तंग किए जाने के और प्रश्नगत मृत्यु के बीच अंतराल अधिक नहीं होना चाहिए । दूसरे शब्दों में, वहां पर आसन्नता की विद्यमानता होनी चाहिए और दहेज मृत्यु पर आधारित क्रूरता के प्रभाव और संबंधित मृत्यु के बीच एक जीवित कड़ी होनी चाहिए । यदि क्रूरता की अभिकथित घटना दूरस्थ समय की है और इससे संबंधित स्त्री के मानसिक संतुलन में बाधा नहीं पड़ती है, तब इसका कोई परिणाम नहीं होगा । ये सिद्धांत **कालियापेरूमल**

बनाम **तमिलनाडु राज्य**[1] और **यशोदा** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में दोहराए गए हैं ।

9. इन सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, हम अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य का विश्लेषण करेंगे । अब्दुल रहीम शेख, अभि. सा 4 जिसकी घटना के समय आयु लगभग 65 वर्ष थी, ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि मृतका – हसीना उसकी धेवती थी । हसीना उसकी पुत्री चांदबी की पुत्री थी और उसका पति का नाम दिलावर खान है । उनके अनुसार, तारीख 26 जनवरी, 1989 को उसके विवाह के पश्चात्, वह अपीलार्थी अभियुक्त के उजालावाडी स्थित घर में रहने गई थी । वह वहां पर पांच दिनों तक रुकी थी और उनके घर लौट आई थी और 15 दिनों तक ठहरी थी । तत्पश्चात्, वह पुनः अपने ससुराल चली गई थी । बकरीद के समय, हसीना, उसका पति मुस्तफा (अभियुक्त सं. 1) – अपीलार्थी-अभियुक्त और हसीना का भाई अयूब पणजी गए थे । चार दिनों के पश्चात् अयूब और मुस्तफा पणजी से लौट आए थे और वह वहां पर 15 दिनों तक ठहरी थी । हसीना ने अपनी सभी वेदनाओं के संबंध में अपनी माता चांदबी (अभि. सा. 7) जो अभि. सा. 4 की पुत्री थी को वर्णन किया और यह बताया कि किस प्रकार अभियुक्त उसे पांच हजार रुपए और एक सोने की अंगूठी और चेन की मांग के लिए किसी प्रकार यंत्रणा, पिटाई और गाली-गलौज कर रहे थे । जब अपीलार्थी और उसकी माता उसके घर आए तब उसने उन्हें यह बताया कि उन्होंने विवाह पर पहले ही छह हजार रुपए खर्च किए थे और वह अपीलार्थी को नौकरी दिलाने को तैयार था । इसके आगे उसने यह अभिसाक्ष्य दिया कि 5-6 दिनों के पश्चात्, वह अबुबाखार निमशिकारी अभि. सा. 10 – उक्त विवाह के मध्यस्थ के घर गया था और उसे दहेज की मांग पूरी करने के संबंध में मृतका के साथ की जारी क्रूरता और तंग किए जाने के संबंध में बताया था । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि जब वह मृतका की मृत्यु के लगभग 2-4 दिन पूर्व अभियुक्त के घर पर गया था तब, जब वह उसे एक कमरे में ले गई थी और उसे यह वर्णन किया था कि किस प्रकार अभियुक्त धन और सोने की चेन की उनकी मांग के लिए उसके साथ और अधिक यंत्रणा देना प्रारंभ कर दिया था और उसने (मृतका) उससे यह भी कहा था कि वह इस संबंध में कुछ करे । उसने यह भी स्पष्ट किया कि चार दिनों के तत्पश्चात् हसीना के श्वसुर और

---

[1] ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 3828.

[2] (2004) 3 एस. सी. सी. 98.

सास उनके घर आए थे और उसे यह बताया था कि हसीना ने विष खा लिया था और उसे सी. पी. आर. अस्पताल में भर्ती किया गया था । उन्होंने उसे बोतल भी दिखाई थी । तत्पश्चात्, अभि. सा. 4 और उसकी पत्नी सी. पी. आर. अस्पताल के लिए दौड़े थे । जब वे अस्पताल पहुंचे तब चिकित्सक ने उन्हें यह सूचित किया कि उसे (मृतक) मृत लाया गया था । शव के निकट अभियुक्त के घर का कोई भी व्यक्ति उपस्थित नहीं था । तत्पश्चात्, वह खारवी पुलिस थाना गया था और एक रिपोर्ट दर्ज कराई थी जो प्रदर्श-20 है । वस्तुतः विचारण न्यायाधीश ने उसके साक्ष्य को अभिलिखित करते समय यह अवेक्षा की है कि मृतका का नाना – अभि. सा. 4 तथाकथित भावनात्मक हो गया था और साक्षी कटघरे में रोने लगा था । उसके एक बुजुर्ग व्यक्ति होने और मृतका – हसीना से लगाव होने के कारण उसका साक्ष्य स्पष्ट रूप से एक अपीलार्थी सहित अभियुक्तों के हाथों मृतका हसीना के साथ दहेज की मांग के लिए की गई यंत्रणा तंग किए जाने को स्पष्ट रूप से साबित करता है ।

10. अभियोजन की ओर से परीक्षा किया गया अगला साक्षी दिलावर खान अभि. सा. 6 – मृतका का पिता है । अपने साक्ष्य में, उसने भी यह स्पष्ट किया है कि उसकी पुत्री ने यह बताया था कि उसके ससुरालजन उसकी पिटाई करने और उसे भूखा रखने के द्वारा उसे यह यंत्रणा देते रहते थे । उसने तत्पश्चात् यह उल्लेख किया कि तारीख 18 अगस्त, 1989 को, वह स्वयं और उसकी पत्नी अपने श्वसुर अर्थात् अभि. सा. 4 के टेमबालवाडी स्थित घर गए थे और तत्पश्चात्, वे अभियुक्त के उजालावाडी स्थित घर गए थे । वहां पर भी हसीना ने उसके साथ की जा रही यंत्रणा और तंग किए जाने के संबंध में बताया था । वह रोने लगी थी और उसने अभि. सा. 6 को बताया था कि उसका पति – इसमें यहां अपीलार्थी उसे और अधिक यंत्रणा दे रहा था । अगले दिन, जब अपीलार्थी और उसकी माता उनके घर आए, तब अभि. सा. 6 ने उन्हें यह कहा कि वह अपीलार्थी अभियुक्त को नौकरी दिलाएगा और वह उसके पुत्री को तंग न करे । तथापि, उसने उसे नहीं सुना और उसका घर छोड़ कर चला गया । मृतका के पिता अभि. सा. 6 का साक्ष्य भी धन के संदाय के लिए किए जा रहे यंत्रणा और तंग किए जाने को साबित करता है और, वस्तुतः, यह उसकी (मृतका) मृत्यु की तारीख से ठीक पांच दिन पूर्व अर्थात् तारीख 18 अगस्त, 1989 को वर्णन किया गया था । यह अत्यंत स्पष्ट रूप से अभिव्यक्ति "उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व" को संतुष्ट करता है ।

11. अभियोजन द्वारा अवलंब लिया गया अगली साक्षी चांदबी की माता अभि. सा. 7 है । उसने भी अभि. सा. 4 और 6 के समान ही वर्णन किया है । उसके साक्ष्य से भी, यह स्पष्ट होता है कि अभियुक्त ने धन के लिए उसकी पुत्री को यंत्रणा और तंग किया था ।

12. अभियोजन द्वारा अवलंब लिया गया अन्य साक्षी अयूब खान (अभि. सा. 9) – मृतका का भाई है । अभियोजन साक्षियों 4, 6 और 7 के समान ही उसने भी यह उल्लेख किया है कि उसकी बहन उसे बताती रहती थी कि उसका पति, ननद, श्वसुर और सास धन के संदाय और सोने के आभूषण के लिए अनेकों अवसर पर यंत्रणा दिए थे । उसके संपूर्ण साक्ष्य का परिशीलन भी अभियोजन साक्षियों 4, 6 और 7 द्वारा किए गए समरूप दावे की संपुष्टि करता है ।

13. यद्यपि अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अभियोजन द्वारा अवलंब लिए गए सभी साक्षी निकट संबंधी हैं और उनके पक्षकथन को साबित करने के लिए किसी बाहरी व्यक्ति की परीक्षा नहीं की गई है, हमारा यह मत है कि इस प्रकृति के मामले में अर्थात् वैवाहिक मृत्यु के मामले में, हम बाहरी व्यक्ति से यह प्रत्याशा नहीं कर सकते हैं कि वे सामने आएं और मृतका के परिवार में जो कुछ घटित हुए थे, उसके संबंध में अभिसाक्ष्य दिए । हम पहले ही यह उजागर कर चुके हैं कि मृत्यु विवाह की तारीख से सात माह की अवधि के भीतर घटित हुई थी और उसकी अपने ससुराल में हुई थी । अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य में यह भी प्रकट हुए हैं कि मृत्यु की तारीख को अपीलार्थी और उसके माता-पिता घर में अकेले थे । इन परिस्थितियों में हम अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा की गई दलील को नामंजूर करते हैं ।

14. उपर्युक्त साक्षियों के अलावा, डा. रामदास – चिकित्सक जिन्होंने शवपरीक्षा की थी कि अभि. सा. 5 के रूप में परीक्षा की गई थी । शवपरीक्षा रिपोर्ट में उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि हसीना की मृत्यु विष दिए जाने के कारण हुई थी । इसके आगे उन्होंने यह स्पष्ट किया कि विष पेट्रोलियम हाइड्रोकार्बन्स था । उन्होंने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि उक्त विष किसी मानव की मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त था ।

15. इन सामग्रियों के आधार पर, हम संतुष्ट हैं कि अभियोजन ने दंड संहिता, 1860 की धारा 304-ख के अधीन अपराध को स्पष्ट रूप से साबित किया है और विचारण न्यायालय द्वारा यह सही तौर पर स्वीकार किया गया है और उच्च न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि की गई थी ।

16. दंड संहिता, 1860 की धारा 498-क जो पति या पत्नी के नातेदारों द्वारा क्रूरता किए जाने के संबंध में कथन करती है पर अब हम चर्चा करेंगे । उक्त उपबंध का उद्धरण किया जाना उपयोगी होगा ।

> "**498-क किसी स्त्री के पति या पति के नातेदार द्वारा उसके प्रति क्रूरता करना** – जो कोई, किसी स्त्री का पति या पति का नातेदार होते हुए, ऐसी स्त्री के प्रति क्रूरता करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।
>
> स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "क्रूरता" से निम्नलिखित अभिप्रेत है –
>
> (क) जानबूझकर किया गया कोई आचरण जो ऐसी प्रकृति का है जिससे कि स्त्री को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करने की या उस स्त्री के जीवन, अंग या स्वयं को (जो चाहे मानसिक हो या शारीरिक) गंभीर क्षति या खतरा कारित करने के लिए उसे करने की संभावना है ; या
>
> (ख) किसी स्त्री को तंग करना, जहां उसे या उससे संबंधित किसी व्यक्ति को किसी संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति के लिए किसी विधि-विरुद्ध मांग को पूरी करने के लिए प्रपीड़ित करने की दृष्टि से या उसके अथवा उससे संबंधित किसी व्यक्ति के ऐसे मांग पूरी करने के असफल रहने के कारण इस प्रकार तंग किया जा रहा है ।"

1983 की अधिनियम सं. 46 द्वारा उपर्युक्त धारा अंतःस्थापित करने का उद्देश्य जोकि तारीख 25 दिसम्बर, 1983 के प्रभाव से प्रवृत्त हुई थी, का उद्देश्य पति या उसके नातेदारों जो पत्नी को उसे या उसके नातेदारों को दहेज की किसी विधि-विरुद्ध मांग को पूरी करने के लिए प्रपीड़ित करने की दृष्टि से तंग करने या यंत्रणा देने के लिए दंडित करने के लिए अंतःस्थापित की गई थी । अभियोजन साक्ष्य की जो हमने पहले ही चर्चा किया है, क्रूरता के घटकों को स्पष्ट रूप से साबित करता है और कोई अतिरिक्त विस्तार से वर्णन किया जाना अपेक्षित नहीं है, दूसरी ओर हम विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष जिसकी उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई, से पूर्णतया सहमत हैं ।

17. अंततः, अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा अपीलार्थी-अभियुक्त की आयु अर्थात् घटना के समय उसकी 23 वर्ष की आयु का होने पर विचार करते हुए उसके दंडादेश में कटौती के लिए एक दुर्बल तर्क उपस्थित किया गया था । यह भी अभिवाक् किया गया है कि वह अपने परिवार का एकमात्र जीविकोपार्जन करने वाला व्यक्ति है और दयालुता के लिए प्रार्थना की गई है । इन पहलुओं पर विचारण न्यायालय द्वारा दंड देते समय सम्यक् रूप से विचार किया गया था । इसके अतिरिक्त दंड संहिता, 1860 की धारा 304(ख) यह आदेश देती है कि उपधारा (1) के निबंधनानुसार दोषसिद्धि के मामले में कारावास सात वर्ष से कम का नहीं हो सकेगा किन्तु यह आजीवन कारावास तक विस्तृत हो सकेगा । इस तथ्य को देखते हुए अभियोजन ने स्वीकार्य साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए युक्तियुक्त संदेह के परे अपने पक्षकथन को साबित किया है और यह तथ्य कि सात वर्ष का न्यूनतम दंडादेश विहित किया गया है, सात वर्ष से कम का दंडादेश अधिनिर्णीत किया जाना संभव नहीं हो सकता । इन पहलुओं पर भी उच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया था । तदनुसार, हम अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा की गई इसी प्रकार की प्रार्थना नामंजूर करते हैं ।

18. ऊपर जो कुछ कथन किया गया है उसको देखते हुए, हम विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से पूर्णतया सहमति व्यक्त करते हैं । परिणामस्वरूप अपील विफल होती है और तदनुसार खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

अनू.

[2012] 4 उम. नि. प. 143

सुनील क्लीफोर्ड डेनियल

बनाम

पंजाब राज्य

14 सितम्बर, 2012

न्यायमूर्ति (डा.) बी. एस. चौहान और न्यायमूर्ति फकीर मोहम्मद इब्राहिम कलीफुल्ला

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 और 201 – हत्या – अपीलार्थी-पति द्वारा अपनी पत्नी से तनावपूर्ण संबंध होने के कारण उसकी हत्या किया जाना – अपीलार्थी के प्रकटन कथन के आधार पर मृतका की रक्त से सनी चूड़ियां, डम्बेल, टाई इत्यादि की बरामदगी होना – अपीलार्थी की दोषिता संदेह के परे साबित होने पर निचले न्यायालयों द्वारा की गई उसकी दोषसिद्धि मान्य ठहराई गई ।

प्रस्तुत मामले में, यह अपील पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ द्वारा 2000 की दांडिक अपील सं. 399-खंड न्यायपीठ में तारीख 1 अप्रैल, 2009 को पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई, जिसके द्वारा इसने विद्वान् सेशन न्यायाधीश, लुधियाना द्वारा 1996 की सेशन मामला सं. 28 में पारित किए गए तारीख 21 अगस्त, 2000 के निर्णय और आदेश की पुष्टि की थी जिसके अधीन अपीलार्थी को दंड संहिता, 1860 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "आई. पी. सी." निर्दिष्ट किया गया है) की धाराओं 302 और 201 के अधीन दोषसिद्ध करते हुए उसे आजीवन कारावास भोगने के लिए और 2000/- रुपए के जुर्माने के संदाय करने के लिए दंडादिष्ट किया गया था और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम किए जाने पर उसे तीन माह की अवधि का अतिरिक्त कठोर कारावास भोगना था । अपीलार्थी को इसके अतिरिक्त दंड संहिता की धारा 201 के अधीन दो वर्ष का कठोर कारावास भोगना और एक हजार रुपए के जुर्माने का संदाय करने और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर दो माह की अवधि का अतिरिक्त कठोर कारावास भोगने के लिए भी दंडादिष्ट किया गया है । इसके अतिरिक्त यह निर्देश किया गया कि दंडादेश साथ-साथ चलेंगे । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन परीक्षा किए जाने के समय अभियुक्त पर यह आबद्धकर है कि वह उससे सहयुक्त अपराध में आलिप्त करने वाली परिस्थितियों के संबंध में कुछ स्पष्टीकरण प्रस्तुत करे और न्यायालय को इसका विनिश्चय करते समय कि क्या परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण है या नहीं, पारिस्थितिक साक्ष्य के मामले में भी ऐसे स्पष्टीकरण की अवेक्षा करनी चाहिए । (पैरा 37)

संपूर्ण साक्ष्य और अभिलेख पर कि सामग्री का संयुक्त रूप से पठन करने पर निम्न बातें स्पष्ट होती हैं – (i) मृतका लोयला शगुफता ने जगाधरी में रहने वाली अपनी माता को तारीख 6 मार्च, 1996 को यह कहा था कि वह वहां पर तारीख 7 मार्च, 1996 को पहुंचेगी । तथापि, वह वहां नहीं पहुंची थी । इसलिए, विक्टोरिया रानी (अभि. सा. 2) जो कि मृतका की माता है अपनी पुत्री की तलाश में तारीख 10 मार्च, 1996 को लुधियाना पहुंची थी । (ii) तारीख 9 मार्च, 1996 को अपीलार्थी ने डा. बी. पवार (अभि. सा. 1) चिकित्सा अधीक्षक को यह कथन करते हुए कुछ रक्त से सने वस्त्र सौंपे थे कि उसने उन वस्त्रों को जब वह अस्पताल से वापस लौटा था अपने कमरे में पाया था । डा. बी. पवार (अभि. सा. 1) ने उक्त घटना के संबंध में उसी दिन पुलिस को सूचित किया था । (iii) तारीख 10 मार्च, 1996 को विक्टोरिया रानी (अभि. सा. 2) ने घटना के संबंध में एक परिवाद फाइल किया और एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई थी । अन्वेषक अधिकारी अपीलार्थी और इसी भांति मृतका के क्रमिक हॉस्टलों में उनके कमरे में गया था किन्तु कमरे बाहर से ताला बंद पाए गए थे । तब उन्होंने अपीलार्थी उसके रिश्तेदार श्री राणा के निवार पर और अन्य ढाबों और होटलों में भी तलाश करने का एक प्रयास किया था, किन्तु उनके इन प्रयासों के बावजूद वह अपीलार्थी का पता लगाने में असमर्थ रहा था । (iv) तारीख 11 मार्च, 1996 को डा. नम्रता शरण ने डा. बी. पवार (अभि. सा. 1) को सूचित किया कि मृतका हॉस्टल से तारीख 9 मार्च, 1996 से लापता थी । उसी दिन वीर राजिन्दर पाल (अभि. सा. 14) थाना भारसाधक अधिकारी को लालटन कलां पुलिस चौकी से एक वायरलैस संदेश प्राप्त हुआ कि एक महिला का शव निकट के एक आम रास्ते के क्षेत्र के निकट झाड़ियों में पड़ा हुआ पाया गया था । वह तब विक्टोरिया रानी (अभि. सा. 2) के साथ घटनास्थल पर पहुंचे और मृतका का शव बरामद किया और पंचनामा इत्यादि तैयार किया । अपीलार्थी के कमरे की तलाशी ली गई थी, किन्तु कमरे से कोई बरामदगी नहीं की गई थी । (v) अन्वेषक के

अनुक्रम के दौरान वीर राजिन्दर पाल (अभि. सा. 14) थाना भारसाधक अधिकारी ने यह महसूस किया कि अपीलार्थी ने डा. पॉली (न्यायालय साक्षी सं. 2) की कार उधार ली थी । इस प्रकार उक्त कार जो कि उसी कंपाउंड में खड़ी की गई थी, को पुलिस द्वारा कब्जे में लिया गया था और इसमें से रक्त से सनी एक मैट बरामद और मुहरबंद की गई थी । (vi) तारीख 12 मार्च, 1996 को विशेषज्ञ बुलाए गए थे और अपीलार्थी के कमरे की तलाशी ली गई थी । फर्श पर रक्त के धब्बे पाए गए थे जो कि साफ कर दिए गए थे और उनके साथ ही वी आकृति की हवाई चप्पलों की एक जोड़ी जिस पर भी रक्त के धब्बे थे बरामद किए गए थे । उक्त वस्तुएं मुहरबंद की गई थीं । (vii) अपीलार्थी को तारीख 11 मार्च, 1996 को गिरफ्तार किया गया था । उसे जागिन्दर सिंह (अभि. सा. 12) द्वारा प्रस्तुत किया गया था और पुलिस अधिकारियों और एक पंच साक्षी रणधीन सिंह की उपस्थिति में एक प्रकटन कथन किया गया था और पंचनामा तैयार किया गया था और इसमें उसने यह कथन किया था कि वह मृतका की हत्या कारित करते समय प्रयुक्त की गई वस्तुओं की बरामदगी कराने में सहायता करेगा । उक्त प्रकटन कथन के आधार पर वह पुलिस दल को पुराने लुधियाना कारागार ले गया था और एक बोरी डम्बेल और एक टाई की बरामदगियां कराने में सहायता की थी, क्योंकि वे सभी कूड़ा-करकट के नीचे छिपाए हुए थे । वे सम्यक् रूप से बरामद किए गए थे और पंचनामा तैयार किया गया था । इस प्रकार बरामद की गई सभी सामग्रियां तत्पश्चात् न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला/सीरम विज्ञानी रिपोर्ट के लिए भेजी गई थीं और प्राप्त की गई रिपोर्ट में यह कथन किया गया था कि उन सभी वस्तुओं पर मानव रक्त इत्यादि लगा हुआ था सिवाय कुछ वस्तुओं के जिन पर रक्त विघटित हो गया था और इसके परिणामस्वरूप कोई रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की जा सकी थी । (viii) तारीख 11 मार्च, 1996 को मृतका का शव डा. यू. एस. सूच (अभि. सा. 11) सहित चिकित्सकों के एक बोर्ड द्वारा शव परीक्षा किए जाने के लिए भेजा गया था और मृतका की निकट वस्तुएं जिनमें उसकी चूड़ियां इत्यादि भी सम्मिलित थीं को पुलिस द्वारा कब्जे में लिया गया था । (ix) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अपने कथन में अपीलार्थी ने अपना वर्णन जो कि उसने डा. बी. पवार (अभि. सा. 1) को दिया था को यह कथन करते हुए बदल दिया कि उसके द्वारा सौंपे गए रक्त से सने वस्त्र विभिन्न कमरों को जोड़ने वाली बालकनी में पाए गए थे और यह उसके मूल कथन से अलग था जिसमें उसने यह प्रकट किया था कि उसने उन्हें अपने कमरे में पाया था । वह इस संबंध में

कोई स्पष्टीकरण नहीं दे सका कि किस प्रकार से रक्त से सने वस्त्र उसके कमरे में पाए गए थे । (x) किरपाल देव सिंह (अभि. सा. 8) टैक्सी चालक यद्यपि उसने न्यायालय में अपीलार्थी की शनाख्त नहीं की थी तब भी उसे अभियोजन द्वारा पक्षद्रोही घोषित नहीं किया गया था, उसने यह अभिसाक्ष्य दिया कि कैंटीन ठेकेदार जोशी द्वारा कहे जाने पर वह अपीलार्थी से मिलने तारीख 9 मार्च, 1996 को गया था जिसने उसे यह बताया था कि वह जगाधरी जाना चाहता था । उस समय उसे बाद में आने को कहा गया था क्योंकि अपीलार्थी की पत्नी तात्पर्यित रूप से लालटन कलां से अपना वेतन लेने गई थी । स्वीकृततः अपीलार्थी और उसकी पत्नी मृतका पृथक् रूप से रह रही थी और उनके आपस में सौहार्दपूर्ण संबंध नहीं थे । ऐसी तथ्यपरक स्थिति में, अपीलार्थी जगाधरी जाने के लिए टैक्सी भाड़े पर नहीं लेता । इसके अतिरिक्त यदि मृतका पृथक् रूप से रह रही थी तब अपीलार्थी के लिए यह कहना संभव नहीं था कि उसकी पत्नी अपना वेतन लेने के लिए लालटन कलां गई थी । डा. पॉली (न्यायालय साक्षी सं. 2) का साक्ष्य यह स्पष्ट करता है कि अपीलार्थी वस्तुतः उनकी कार ले गया था, उसका डेढ़ घंटे के लिए उपयोग किया था और तब उसे वापस लाया था और हॉस्टल कंपाउंड में खड़ा किया था जिसके पश्चात् उसने उसकी चाबियां डा. पॉली (न्यायालय साक्षी सं. 2) को सौंप दी थी । (xi) शवपरीक्षा रिपोर्ट में वर्णन की गई क्षतियों की प्रकृति यह अत्यंत स्पष्ट करती है कि मृतका की गला घोंटे जाने के कारण अथात् श्वासावरोध से मृत्यु हुई थी, उसके सिर पर भी अनेक क्षतियां थीं, जो कि डम्बेल से कारित की जा सकती थी जो कि बरामद की गई वस्तुओं में एक थी और उस पर रक्त के धब्बे पाए गए थे । (xii) क्योंकि अपीलार्थी के अपनी पत्नी से तनावपूर्ण संबंध थे । वह निस्संदेह उससे अपना पीछा छुड़ाना चाहता था । यद्यपि उसने यह दावा किया है कि पारस्परिक सम्मति से विवाह-विच्छेद के लिए अर्जियां न्यायालय के समक्ष लंबित थीं, उसने इसके संबंध में न्यायालय के समक्ष कोई दस्तावेज कभी भी प्रस्तुत नहीं किए थे । इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अपीलार्थी वस्तुतः अपनी पत्नी से पीछा छुड़ाना चाहता था । (xiii) क्योंकि रक्त से सनी चूड़ी, डम्बेल, टाई इत्यादि की बरामदगियां स्वयं अपीलार्थी के प्रकटन कथन के आधार पर की गई थी, इसलिए परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण है । उपर्युक्त को देखते हुए हम निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने के लिए कोई कारण नहीं पाते हैं । (पैरा 39 और 40)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2011]	ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 2283 : **एस के यूसुफ** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** ;	19
[2011]	(2011) 3 एस. सी. सी. 109 : **राज्य (केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के माध्यम से)** बनाम **महेन्दर सिंह दहिया** ;	19
[2010]	(2010) 14 एस. सी. सी. 129 : **जॉन पांडियन** बनाम **तमिलनाडु राज्य (जिसका प्रतिनिधित्व पुलिस निरीक्षक द्वारा किया गया)** ;	32
[2010]	(2010) 2 एस. सी. सी. 748 : **मुशीर खान** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	37
[2008]	ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 1184 : **सत्तातिया** उर्फ **सतीश रजन्ना करतल्ला** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	30
[2003]	ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 2846 : **गोलाकोंडा वेंकेटेश्वर राव** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ;	26
[2001]	(2001) 1 एस. सी. सी. 652 : **राज्य, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली की सरकार** बनाम **सुनील और एक अन्य** ;	35
[2001]	ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 330 : **गुरा सिंह** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	29
[2001]	2001 की दांडिक अपील सं. 67 जिसका विनिश्चय तारीख 20 जुलाई, 2012 को किया गया : **जगरूप सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ;	31
[2000]	(2000) 1 एस. सी. सी. 471 : **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **सुरेश** ;	38
[1999]	ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 1776 : **राजस्थान राज्य** बनाम **तेजा राम** ;	25, 29

[1995] ए. आई. आर. 1995 एस. सी. 2345 :
जैककरण सिंह बनाम **पंजाब राज्य** ; 24, 26

[1994] ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 2420 :
सुरेश चंद्र बाहरी बनाम **बिहार राज्य** ; 22

[1989] ए. आई. आर. 1989 एस. सी. 733 :
सूबेदार तिवारी बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** ; 21

[1984] ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1622 :
शरद बिरधीचंद शारदा बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 17

[1983] ए. आई. आर. 1983 एस. सी. 1225 :
परिवहन आयुक्त, आंध्र प्रदेश, हैदराबाद और एक अन्य बनाम **एस. सरदार अली और अन्य** ; 37

[1971] ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 1050 :
मतरू बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 19

[1963] ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 74 :
राघव प्रपन्ना त्रिपाठी बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 29

[1956] ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 51 :
प्रभू बाबाजी नेवई बनाम **बाम्बे राज्य** । 29

दांडिक (अपीली) अधिकारिता : 2010 की दांडिक अपील सं. 2001.

पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ द्वारा 2000 की दांडिक अपील सं. 399-खंड न्यायपीठ में तारीख 1 अप्रैल, 2009 को दिए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्रीमती कंचन कौर धोड़ी

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री जयंत के. सूद, अपर महाधिवक्ता, विशाल दाबस, (सुश्री) प्रिया शाहदेव, कुलदीप सिंह और मोहित मुदगील

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (डा.) बी. एस. चौहान ने दिया ।

न्या. (डा.) चौहान – यह अपील पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ द्वारा 2000 की दांडिक अपील सं. 399-खंड न्यायपीठ में तारीख 1 अप्रैल, 2009 को पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश

के विरुद्ध फाइल की गई, जिसके द्वारा उसने विद्वान् सेशन न्यायाधीश, लुधियाना द्वारा 1996 की सेशन मामला सं. 28 में पारित किए गए तारीख 21 अगस्त, 2000 के निर्णय और आदेश की पुष्टि की थी जिसके अधीन अपीलार्थी को दंड संहिता, 1860 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "आई. पी. सी." निर्दिष्ट किया गया है) की धाराओं 302 और 201 के अधीन दोषसिद्ध करते हुए उसे आजीवन कारावास भोगने के लिए और 2000/- रुपए के जुर्माने के संदाय करने के लिए दंडादिष्ट किया गया था और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम किए जाने पर उसे तीन माह की अवधि का अतिरिक्त कठोर कारावास भोगना था । अपीलार्थी को इसके अतिरिक्त दंड संहिता की धारा 201 के अधीन दो वर्ष का कठोर कारावास भोगना और एक हजार रुपए के जुर्माने का संदाय करने और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर दो माह की अवधि का अतिरिक्त कठोर कारावास भोगने के लिए भी दंडादिष्ट किया गया है । इसके अतिरिक्त यह निर्देश किया गया कि दंडादेश साथ-साथ चलेंगे ।

2. इस अपील को उद्भूत करने वाले तथ्य और परिस्थितियां निम्न हैं :–

(क) अपीलार्थी का तारीख 29 अक्तूबर, 1993 को डा. लोयला शगुफ्ता, मृतका से विवाह हुआ था । दोनों के अर्हक चिकित्सक होने के कारण, वे क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज अस्पताल लुधियाना, जिसे इसमें इसके पश्चात् "सी. एम. सी." निर्दिष्ट किया गया है में कार्य करे रहे थे । पति और पत्नी के बीच संबंध तनावपूर्ण हो गए थे और वे जून 1994 से पृथक् रूप से रह रहे हैं ।

(ख) अपीलार्थी के अनुसार पारस्परिक सम्मति से विवाह-विच्छेद के लिए एक अर्जी विशेष विवाह अधिनियम, 1984 की धारा 28 के अधीन जिला न्यायाधीश, लुधियाना के न्यायालय में तारीख 20 फरवरी, 1996 को फाइल की गई थी और उसमें दोनों पक्षकार जिला न्यायाधीश, लुधियाना के समक्ष मामले के प्रथम बार प्रस्तुत होने पर उपस्थित हुए थे । तथापि, उन्हें दूसरी और तारीख तक प्रतीक्षा करने के लिए कहा गया था ।

(ग) तारीख 9 मार्च, 1996 को अपीलार्थी ने डा. बी. पवार, चिकित्सा अधीक्षक (अभि. सा. 1) को यह कथन करते हुए रक्त से सने वस्त्रों का एक बंडल सुपुर्द किया था कि जब वह उस दिन अपने कमरे पर पहुंचा तब उसने उन्हें वहां पर पाया था । डा. बी. पवार

(अभि. सा. 1) ने उसी दिन उक्त घटना के संबंध में पुलिस को सूचित किया था ।

(घ) डा. लोयला शगुफ्ता, अपीलार्थी की पत्नी ने अपनी माता श्रीमती विक्टोरिया रानी (अभि. सा. 2) जो जगाधरी जिला यमुनानगर में रह रही थी, को तारीख 6 मार्च, 1996 को टेलीफोन करते हुए यह सूचित किया था कि वह उनके पास तारीख 8 मार्च, 1996 को उनके पास पहुंचेगी । तथापि, वह तारीख 8 मार्च, 1996 को जगाधरी में पहुंची थी । विक्टोरिया रानी (अभि. सा. 2) जब तारीख 10 मार्च, 1996 को लुधियाना पहुंची और यह पाया कि उसकी पुत्री लापता थी । श्रीमती विक्टोरिया रानी (अभि. सा. 2) ने तारीख 10 मार्च, 1996 को अपराह्न 9.40 पर 1996 की प्रथम इत्तिला सूचना सं. 16 दर्ज कराई थी, जिसमें उन्होंने परिवारी होते हुए यह आशंका अभिव्यक्त की कि इसमें यहां अपीलार्थी ने उनकी पुत्री की हत्या करने के आशय से उसका व्यपहरण किया था ।

(ङ) इसी दौरान डा. नम्रता शरन के हॉस्टल की निवासी जिसमें कि मृतका रहती थी, ने भी डा. बी. पवार (अभि. सा. 1), चिकित्सा अधीक्षक को सूचित किया था कि मृतका वस्तुतः तारीख 9 मार्च, 1996 से हॉस्टल से लापता थी । जांच के पश्चात् यह प्रकट हुआ कि मृतका तारीख 9 मार्च, 1996 से 16 मार्च, 1996 तक छुट्टी पर थी ।

(च) पायरा सिंह, सहायक पुलिस अधीक्षक (अभि. सा. 13) ने मामले का अन्वेषण किया और अपीलार्थी के हॉस्टल गया, तथा उसका कमरा सं. 2010 ताला बंद पाया था । एक पुलिस दल अपीलार्थी की तलाश में गया और अनेक अन्य स्थानों पर उसकी तलाश करते हुए उसके एक नातेदार श्री राणा के घर पहुंचा किन्तु उसका कोई पता नहीं लगा और वह कहीं पर भी नहीं पाया गया । डा. पी. पवार (अभि. सा. 1) ने अपीलार्थी द्वारा उसे दिए गए रक्त सने वस्त्रों को अन्वेषक अधिकारी को सौंप दिया ।

(छ) तारीख 11 मार्च, 1996 को वीर राजेन्द्र पाल (अभि. सा. 14), थाना भारसाधक अधिकारी पुलिस थाना लुधियाना, लालटन कलां स्थित पुलिस चौकी जो मुख्य शहर से लगभग 20 किलोमीटर दूर है से पूर्वाह्न 9.00 बजे एक वायरलेस संदेश मिला जिसमें उसे यह सूचित किया गया था कि एक स्त्री का शव मुख्य सड़क के निकट झाड़ियों पर

पड़ा हुआ पाया गया था । अन्वेषक अधिकारी विक्टोरिया रानी (अभि. सा. 2) को अपने साथ लेकर अन्य पुलिसकर्मियों के साथ वहां पहुंचा और उक्त स्थान से मृतका का शव बरामद किया ।

(ज) शव की बरामदगी के तुरंत पश्चात् वीर राजेन्द्र पाल (अभि. सा. 14) हॉस्टल में अपीलार्थी के कमरे पर गए और उन्होंने कमरे की डा. बी. पवार (अभि. सा. 1), चिकित्सा अधीक्षक की पुत्री में कमरे की पूरी तलाशी ली ।

(झ) डा. यू. एस. सूच (अभि. सा. 11) सहित तीन चिकित्सकों से गठित चिकित्सा बोर्ड द्वारा तारीख 11 मार्च, 1996 को मृतका की शवपरीक्षा की गई थी । उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि मृतका की गला दबाए जाने के कारण मृत्यु हुई थी और उसके गले पर बंधन चिन्ह था । उसके सिर पर भी अनेक घोर क्षतियां पहुंची थीं ।

(ञ) तारीख 11 मार्च, 1996 को अन्वेषक अधिकारी को पूछताछ के अनुक्रम के दौरान यह जानकारी मिली कि अपीलार्थी ने डा. पॉली (न्यायालय साक्षी सं. 2) की कार का उपयोग किया था और उक्त कार की डिक्की में एक रक्त से सना मैट पड़ा पाया गया था । इसलिए पुलिस ने उक्त कार का और मैट का कब्जा लिया और न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट तैयार किए जाने के लिए मैट को भेजा ।

(ट) अपीलार्थी को तारीख 11 मार्च, 1996 को गिरफ्तार किया गया था और हॉस्टल में उसका कमरा न्यायालयिक विभाग के हैड कांस्टेबल अशोक कुमार द्वारा पुनः तलाशी लिया गया जिन्होंने कमरे के फर्शों से रक्त से सनी मिट्टी खरोंच कर कब्जे में ली । उन्होंने वहां पर रक्त से सनी वी-आकार की हवाई चप्पलों का एक जोड़ा भी पाया । उक्त कमरे के फोटो भी खींचे गए थे । पूछताछ के दौरान, अपीलार्थी ने तारीख 13 मार्च, 1996 को इस प्रभाव का एक प्रकटन कथन किया कि वह उस स्थान से कुछ सुसंगत सामग्री की बरामदगी कराने में सहायक होगा जहां कि उसने इसे छुपाया हुआ था । इसके पश्चात् अपीलार्थी पुलिस दल को पुराना कारागार, लुधियाना के पीछे एक स्थान पर ले गया । वहां से कुछ कूड़ा-कचरा इत्यादि हटाने के पश्चात् रक्त से सना एक बोरी, रक्त से सना एक डम्बेल और रक्त से सनी एक टाई बरामद की गई थी ।

(ठ) उक्त बरामद वस्तुओं के साथ शव के समय मृतका के शरीर पर पाए गए वस्त्र और अपीलार्थी द्वारा डा. बी. पवार (अभि.

सा. 1) को दिए गए रक्त से सने वस्त्र जो अन्वेषक अधिकारी को तत्पश्चात् सौंपे गए थे और न्यायालियक विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट के लिए भेजे गए ।

(ड) न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला और सीरम विज्ञानी रिपोर्ट प्राप्त की गई थी और इनसे यह प्रकट हुआ कि अन्वेषण के दौरान पुलिस द्वारा बरामद की गई सभी वस्तुएं जिनमें उसके कमरे के रक्त से सने फर्श की खुरेच कर ली गई मिट्टी हवाई चप्पल की जोड़ी, और बरामद की गई टाई पर मानवरक्त विद्यमान था अथवा कार की डिक्की में पाए गए मैट पर मानव रक्त नहीं था । इस पर से रक्त के धब्बे विलुप्त हो गए थे इसलिए यह अभिनिश्चित करना संभव नहीं था कि क्या उस पर भी मानव रक्त था ।

(ढ) पुलिस ने मामले का अन्वेषण पूरा किया और अपीलार्थी के विरुद्ध आरोपपत्र प्रस्तुत किया । मामले को दंड संहिता की धारा 364 से धाराओं 302 और 201 के अधीन परिवर्तित किया गया था । इस प्रकार अपीलार्थी को आरोपित किया गया था, किन्तु क्योंकि उसने दोषी न होने का अभिवाक् किया था । उसने विचारण किए जाने का दावा किया । अभियोजन ने 15 साक्षियों की और दो न्यायालय साक्षियों की भी दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 311 के अधीन परीक्षा की गई थी ।

(ण) विचारण के पूरा होने के पश्चात् और साक्ष्य का पूर्णतया अवलोकन करते हुए विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने तारीख 21 अगस्त, 2000 के निर्णय और आदेश द्वारा अपीलार्थी को दोनों धाराओं पर दोषी पाया और इसलिए उसे उपर्युक्त उल्लिखित दंड अधिनिर्णीत किए ।

(त) इससे व्यथित होकर अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष 2000 की दांडिक अपील सं. 399-खंड न्यायपीठ फाइल की जो कि तारीख 1 अप्रैल, 2009 के आक्षेपित निर्णय और आदेश के द्वारा खारिज की गई थी ।

इसलिए यह अपील फाइल की गई है ।

3. श्रीमती कंचन धोड़ी अपीलार्थी की ओर से उपस्थित हुए विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अन्वेषण ऋजुतापूर्वक नहीं किया गया था । उन्होंने यह कथन किया कि इसमें यहां अपीलार्थी का अपनी पत्नी की

हत्या करने का कोई हेतुक जो कोई भी हो नहीं था और वे बहुत जल्द अलग होने जा रहे थे क्योंकि दोनों ही पक्षकारों ने पारस्परिक सम्मति से विवाह-विच्छेद की ईप्सा करते हुए एक आवेदन फाइल किया था । इसके अतिरिक्त हॉस्टल में अपीलार्थी के कमरे से कोई बरामदगी नहीं की गई थी, बल्कि बरामद की गई वस्तुएं वहां पर रखी गई थीं । अपीलार्थी ने कोई प्रकटन कथन नहीं किया था । इस प्रकार पुराना कारागार के क्षेत्र के अत्यंत निकट स्थान से बरामदगी भी विधि के अनुसार नहीं की गई थी क्योंकि उक्त बरामदगी के संबंध में वहां पर कोई स्वयं साक्षी नहीं था और बरामदगी में ज्ञापन भी अपीलार्थी द्वारा कभी भी हस्ताक्षर नहीं किया गया था । इसलिए यह एक पारिस्थितिक साक्ष्य का मामला है । निचले न्यायालय यह अवलोकन करने में विफल रहे थे कि परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण नहीं है । इसलिए अपील मंजूर किए जाने को दायी हैं ।

4. इसके विपरीत श्री जयंत के. सूद पंजाब राज्य की ओर से उपस्थित हुए अपर महाधिवक्ता ने यह दलील देते हुए अपील का विरोध किया कि वर्तमान मामले में परिस्थितियां बिना किसी अपवाद के अपीलार्थी की दोषिता की ओर इंगित करती है । मृतका की निश्चित रूप से अपीलार्थी के कमरे में हत्या की गई थी । बरामदगियां अपीलार्थी द्वारा किए गए प्रकटन कथन को देखते हुए स्पष्ट रूप से की गई थी । विधि अभियुक्त द्वारा बरामदगी ज्ञापन पर हस्ताक्षर किया जाना अपेक्षित नही करती । उन्होंने यह भी कथन किया कि अपीलार्थी उक्त घटना के तुरंत पश्चात् लापता हो गया था और दो दिनों के पश्चात् ही केवल गिरफ्तार किया जा सका था । यह अकेला अपीलार्थी है जो उस प्रयोजन के निकटवर्ती परिस्थितियों को स्पष्ट कर सकता है जिसके लिए उसने डा. पॉली (न्यायालय साक्षी सं. 2) की कार उधार ली थी, और वह जगाधरी जाने के लिए एक टैक्सी भाड़े पर क्यों लेना चाहता था, जैसाकि स्वीकार किया गया है, अपनी पत्नी के साथ उसके संबंध अत्यंत तनावपूर्ण थे । अपील स्पष्ट रूप से गुणता रहित है और इसलिए खारिज किए जाने को दायी हैं ।

5. हमने पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेलों द्वारा की गई विरोधी दलीलों पर विचार किया है और अभिलेखों का परिशीलन किया है ।

6. डा. यू. एस. सूच (अभि. सा. 11) चिकित्सकों की उस बोर्ड का सदस्य था और उन्होंने मृतका के शव की तारीख 11 मार्च, 1996 को अपराह्न 5.00 बजे शवपरीक्षा की थी और उसके शरीर पर निम्नलिखित

क्षतियां पाई थीं :–

"1. गले के सामने की ओर और दोनों पार्श्विक भागों के समानांतर गले के बीच में 9 इंच x 3.4 इंच का सुस्थापित बंधन चिन्ह जो दाहिने कान की पल्लिका के नीचे तक पहुंचता हुए गले के दाहिनी ओर था । बंधन के अन्वेषण पर अधस्त्वचीय उत्तक पर मांसपेशी के नीचे विदीर्ण था और कण्ठिकास्थि पर अस्थिभंग था । कण्ठिका और श्वासनली संकुचित था ।

2. ठोड़ी की नोक पर 1/2 इंच x 1/2 आकार की एक खरोंच थी ।

3. बाएं जबड़े के कान के 1 इंच नीचे और 3/4 इंच x 1/2 इंच आकार की खरोंच ।

4. दाहिने पार्श्विक क्षेत्र के सामने की ओर शारीरिक रूप से 2 1/2 इंच x 1 इंच x अस्थि तक गहरा विदीर्ण घाव और जो बीच की लाइन के निकट केशिका के 1 इंच भीतर था ।

5. दाहिने पश्च कपाल क्षेत्र पर बीच की रेखा के आर-पार 3 इंच x 2 इंच आकार की तनाव कम हुई सूजन ।"

इसलिए ऊपर वर्णन क्षतियों और चिकित्सा रिपोर्ट से यह स्पष्ट है कि मृतका लोयला शगुफता की बिना किसी संदेह के मानववधात्मक मृत्यु हुई थी ।

7. डा. बी. पवार (अभि. सा. 1) चिकित्सा अधीक्षक ने यह अभिसाक्ष्य दिया कि मृतका तारीख 9 मार्च, 1996 से 16 मार्च, 1996 तक मृतका को छुट्टी पर रहना प्रस्तावित था और उक्त घटना की तारीख को वह अपने हास्पिटल में उपस्थित नहीं थी । इसके अतिरिक्त अपीलार्थी ने उन्हें सूचित किया था कि जब वह कमरे में वापस आया था उसने तद्धीन कुछ रक्त से सने वस्त्र पाए थे । तत्पश्चात् वस्त्र एक थैले में एकत्रित किए गए थे और डा. बी. पवार (अभि. सा. 1) के कार्यालय में रखे गए थे और उनका कब्जा तत्पश्चात् पुलिस को सौंपा गया था ।

8. श्रीमती विक्टोरिया रानी (अभि. सा. 2) मृतका की माता ने अभियोजन पक्षकथन का समर्थन किया । उन्होंने अभिसाक्ष्य दिया कि उनकी पुत्री का अपीलार्थी के साथ विवाह नितांत तनावपूर्ण रहा था, चूंकि विवाह के परिणामस्वरूप उनके कोई बच्चा नहीं हुआ था और इसलिए

उन्होंने पृथक् रूप से रहना प्रारंभ कर दिया था । उनकी पुत्री ने उन्हें टेलीफोन पर सूचना दी थी कि वह तारीख 7 मार्च, 1996 को जगाधरी आएगी किन्तु वह कभी नहीं आई । इसलिए परिवादी, विक्टोरिया रानी (अभि. सा. 2), अपनी पुत्री की तलाश में लुधियाना आई थी किन्तु वह लापता पाई गई थी । इस प्रकार उन्होंने पुलिस को एक परिवाद दर्ज कराया, जिसके आधार पर प्रथम इत्तिला सूचना दर्ज की गई थी, जिसमें उन्होंने अपीलार्थी के आशय के संबंध में अपने संदेहों को अभिव्यक्त किया था, क्योंकि उनकी राय में वह उनकी पुत्री से पीछा छुड़ाना चाह रहा था और इसलिए उसने उसकी हत्या करने के प्रयोजन के लिए और अपने प्रयोजन को पूरा करने के लिए उसका व्यपहरण किया होगा ।

9. कुछ साक्षियों विशेष रूप से सरबजीत सिंह (अभि. सा. 7), अस्पताल का सुरक्षागार्ड, अनिल कुमार (अभि. सा. 9), जूनियर डाक्टर्स हास्टल के कैंटीन में कार्य करने वाला एक रसोइया और जोगिन्दर सिंह (अभि. सा. 12) ने अभियोजन पक्षकथन का समर्थन नहीं किया था और पक्षद्रोही हो गई थी । तथापि, किरपाल देव सिंह (अभि. सा. 8) का साक्ष्य अत्यंत सुसंगत है । उन्होंने न्यायालय में यह अभिसाक्ष्य दिया कि वह टैक्सी की सेवाएं उपलब्ध करा रहा था और उसे सी. एम. सी. अस्पताल, लुधियाना के परिसर में पार्किंग में खड़ा करता था । तारीख 8 मार्च, 1996 को कैंटीन के ठेकेदार जोशी ने उससे सी. एम. सी. के डा. सुनील से बात करने को कहा था, जो जगाधरी जाने के लिए उसकी टैक्सी भाड़े पर लेना चाहते थे । तदनुसार वह अपीलार्थी से बात करने गया और उसे इस तथ्य की जानकारी हुई कि अपीलार्थी तारीख 9 मार्च, 1996 को जगाधरी जाना चाहता था । तब वह अपनी टैक्सी के साथ तारीख 9 मार्च,1996 को अपीलार्थी के हास्टल गया था किन्तु उसे यह बताया गया था कि उनकी पत्नी उस समय लालटन कलां से अपना वेतन लेने गई थी और इसलिए उसे पुनः चिकित्सक के स्थान पर पुनः 10.00 बजे पूर्वाह्न गया था किन्तु उसे पुनः बाद में अपने को अर्थात् पूर्वाह्न 11.30 बजे आने को कहा गया था । उस समय उक्त साक्षी ने चिकित्सक को यह बताया कि वह जगाधरी नहीं जाना चाहता और वह इस प्रयोजन के लिए किसी अन्य टैक्सी वाले से संपर्क कर ले ।

10. पियारा सिंह, सहायक पुलिस उपनिरीक्षक (अभि. सा. 13), ने यह अभिसाक्ष्य दिया कि उसे उक्त घटना के संबंध में जानकारी मिली थी और इसलिए वह सी. एम. सी. अस्पताल लुधियाना तारीख 10 मार्च,

1996 को गया था जब उसे विक्टोरिया रानी (अभि. सा. 2) से परिवाद प्राप्त हुआ था । तथापि, उसने उक्त हास्टल के कमरा सं. 2010 जो कि अपीलार्थी का था उसे अन्दर से बंद पाया । तब वह पुलिस दल के साथ मृतका के कमरे पर गया था किन्तु पाया कि वह कमरा भी बाहर से ताला बंद था । उक्त साक्षी ने तब अपीलार्थी की तलाश करने का प्रयास किया और इस प्रयोजन से वह अपीलार्थी के एक नातेदार श्री राणा जो लुधियाना में अस्पताल के अत्यंत निकट रह रहे थे के घर पर गया था, किन्तु अपीलार्थी वहां पर नहीं मिला था । उन्होंने हास्टल सहित विभिन्न अन्य स्थानों पर भी अपनी तलाश जारी रखी किन्तु वह अभियुक्त को पाने में विफल रहे ।

तारीख 11 मार्च, 1996 को उन्होंने यह कथन किया कि वह वीर राजेन्द्र पाल (अभि. सा. 14) के साथ गए थे और इसलिए लालटन कलां से मृतका डा. लोयला शगुफता की शव की बरामदगी में भी भाग लिया था । इसके आगे उन्होंने यह अभिसाक्ष्य दिया कि तारीख 13 मार्च, 1996 को एक बोरी एक लोहे की डम्बेल और एक टाई पंच साक्षी रणधीर की उपस्थिति में बरामद किए गए थे । अपीलार्थी द्वारा उनकी उपस्थिति में इस प्रभाव का भी एक प्रकटन कथन किया गया था कि यह वस्तुएं मृतका की हत्या से संबंधित थीं और उसने उन्हें बरामद कराने में सहायता देने का प्रस्ताव किया था ।

11. अभियोजन द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य को अभिलिखित किए जाने के पश्चात्, अपीलार्थी का कथन दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अभिलिखित किया गया था । अपीलार्थी ने अभियोजन द्वारा किए गए सभी अभिकथनों का खंडन किया और निर्दोष होने का अभिवाक् किया । उन्होंने यह कथन किया कि रक्त से सने वस्त्र उसके कमरे के बालकनी में छूट गए थे जब वह वहां पर उपस्थित नहीं था और उसने प्रथम इत्तिला सूचना दर्ज कराने के पूर्व डा. बी. पवार (अभि. सा. 1) चिकित्सा अधीक्षक के समक्ष उक्त वस्त्रों को प्रस्तुत किया था ।

12. वीर राजेन्द्र पाल (अभि. सा. 14) ने अभियोजन पक्षकथन का पूर्ण रूप से समर्थन किया, घटना के प्रारंभ से ही सम्पूर्ण विवरण दिए क्योंकि वह पुलिस थाना, लुधियाना पर तारीख 10 मार्च, 1996 को थाना भारसाधक अधिकारी के रूप में तैनात था । उन्होंने अभियुक्त के कमरे की जांच करने और अभिग्रहण ज्ञापन भी तैयार करने के पश्चात् वहां की गई बरामदगियों के संबंध में अभिसाक्ष्य दिया था । सी. एस. सी. अस्पताल के

परिसर में पार्किंग में खड़ी कार की चाबियां, रक्त से सना एक मैट, पंच साक्षियों द्वारा सम्यक् रूप से सत्यापित किए गए थे, और उक्त कार के रजिस्ट्रेशन प्रमाणपत्र के एक फोटोकापी कब्जे में ली गई थी और रक्त से सने वस्त्र जो कि डा. बी. पवार (अभि. सा. 1) ने उन्हें सौंपे थे, को भी कब्जे में लिया था । इसके आगे उन्होंने इस संबंध में यह अभिसाक्ष्य दिया कि किस प्रकार से अपीलार्थी गिरफ्तार किया गया था और उन वस्तुओं के संबंध में भी अभिसाक्ष्य दिया जो कि उसके शरीर से बरामद की गई थीं, अपीलार्थी के कमरे से रक्त से सने फर्श से खरोंची गई मिट्टी और वी-आकार की हवाई चप्पलों की एक बोरी भी बरामद की थीं, उसके संबंध में भी अभिसाक्ष्य दिया । वस्तुएं मुहरबंद की गई थीं और न्यायलयिक विज्ञान प्रयोगशाला भेजी गई थीं । उन्होंने अंततः उस रीति के संबंध में अभिसाक्ष्य दिया जिसमें कि शव बरामद किया गया था, किस प्रकार बरामदगी पंचनामा तैयार किए गए थे, और वह रीति भी जिसमें कि शव परीक्षा की गई थी ।

13. डा. पॉली (न्यायालय साक्षी सं. 2) ने यह अभिसाक्ष्य दिया कि तारीख 9 मार्च, 1996 को उनसे अपीलार्थी ने अपराह्न 6.00 बजे सम्पर्क किया था और उसने उन्हें यह बताया था कि उसकी पत्नी लापता थी जिसके कारण अपीलार्थी को उनकी कार की आवश्यकता थी । इसलिए डा. पॉली (न्यायालय साक्षी सं. 2) ने अपनी कार जिसकी रजिष्ट्रेशन सं. सी. एच. 01 – 5653 थी, अपीलार्थी को दी थी । अपीलार्थी डेढ़ घंटे की अवधि के पश्चात् वापस लौटा, कार को हास्टल के बाहर पार्किंग में खड़ा किया और चाबी उक्त साक्षी को दे दी थी । उक्त कार का कब्जा पुलिस ने तारीख 11 मार्च, 1996 को लिया और रक्त से सना रबड़ का मैट कार की डिक्की से बरामद किया गया था । उक्त मैट मुहरबंद किया गया और अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 14) द्वारा ले जाया गया था ।

14. विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले :–

> "तथापि, ऊपर चर्चा किए गए विभिन्न पारिस्थितिक साक्ष्य अर्थात् अभियुक्त के कब्जे में हास्टल के कमरे के फर्श से खरोंच कर लिया गया रक्त, अभियुक्त द्वारा अस्पताल के चिकित्सा अधीक्षक के समक्ष प्रस्तुत किए गए विभिन्न रक्त से सने वस्त्र और अभियुक्त द्वारा किए गए प्रकटन कथन के आधार पर रक्त से सनी गले की टाई और डम्बेल की बरामदगी और कार से बरामद किए गए रक्त से सने मैट, मामले में इस संबंध में किसी भी प्रकार का कोई संदेह नहीं

छोड़ता कि डा. श्रीमती लोयला शगुफता की अभियुक्त के कब्जे में हास्टल के कमरा सं. 2010 में उसका गला दबाने के द्वारा और उसे अनेक क्षतियां कारित करते हुए अभियुक्त द्वारा हत्या की गई थी और तत्पश्चात् अभियुक्त अपने विरुद्ध साक्ष्य की कड़ियों को दूर करने के लिए डा. पॉली न्यायालय साक्षी सं. 2 के समक्ष उपस्थित हो गया और वह मृतका डा. श्रीमती लोयला शगुफता की हत्या करने के लिए और इसी भांति साक्ष्य को विलुप्त करने के लिए दायी था ।

डा. लोयला शगुफता वस्तुतः अभियुक्त के कब्जे वाले हास्टल के कमरे में हत्या की गई प्रतीत होता है । उक्त कमरे से बरामद किए गए विभिन्न रक्त के धब्बे स्पष्ट रूप से इस तथ्य को इंगित करते हैं कि उसकी उस कमरे में हत्या की गई थी । उक्त कमरे में अभियुक्त की जानकारी और सम्मति के सिवाय कोई भी अपराध कारित नहीं कर सकता जब अकेले अभियुक्त के पास उक्त कमरे का कब्जा था और उक्त कमरे में कारित किए गए अपराध के लिए वह दायी था । अभियुक्त द्वारा अस्पताल के चिकित्सा अधीक्षक के समक्ष प्रस्तुत किए गए विभिन्न रक्त से सने वस्त्र भी यह दर्शित करते हैं कि वह अपराध में पूर्णतया अन्तर्वलित था । घटना वाले दिन के सायंकाल भी उसने डा. पॉली न्यायालय साक्षी सं. 2 से कार उधार ली थी जो कि उसने अपराधस्थल से शव को हटाने के लिए प्रयुक्त की थी और उक्त कार से रक्त से सने मैट की बरामदगी भी यह दर्शित करती है कि वस्तुतः उसने उक्त कार से शव को हटाया था । यह सभी दर्शित करता है कि वस्तुतः उसने अपनी पत्नी डा. श्रीमती लोयला शगुफता की हत्या की थी और बाद में उसके शव को विलुप्त करने के लिए और इसी भांति अपने विरुद्ध साक्ष्य को विलुप्त करने के लिए शव को हटा दिया था ।"

जहां तक हेतुक का संबंध है न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि मृतका की हत्या करने में पर्याप्त हेतुक था क्योंकि अपीलार्थी अब मृतका से पीछा छुड़ाना चाहता था । इसके अतिरिक्त अपीलार्थी यह स्पष्ट नहीं कर सका कि किस प्रकार से मृतका की उसके कमरे में मृत्यु हुई थी । न्यायालय ने यह अवेक्षा की कि यद्यपि वर्णन में गैस-विसंगतियां थीं, यह अभियोजन पक्षकथन के लिए घातक नहीं थी और यह जोड़ा कि अभियोजन पक्षकथन न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट से पूर्णतया समर्थित था और इसलिए ऐसे आधारों पर अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया ।

15. उच्च न्यायालय ने निम्न मत व्यक्त करते हुए विचारण न्यायालय के निष्कर्ष से सहमति व्यक्त की :–

> "विवाह-विच्छेद अर्जी की प्रतिलिपि प्रस्तुत न किया जाना यह दर्शित करता है कि अपीलार्थी-अभियुक्त का मृतका की हत्या करने का हेतुक था । अपीलार्थी-अभियुक्त की डा. बी. पवार के समक्ष स्वीकारोक्ति कि रक्त से सने वस्त्र उसके कमरे में पड़े पाए गए थे और बाद में उसने जब उसकी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन परीक्षा की गई तो उसने अपना आधार परिवर्तन किया कि रक्त से सने वस्त्र जूनियर डाक्टर्स हास्टल की बालकनी में पड़े हुए थे, यह दर्शित करता है कि अभियोजन पक्षकथन विश्वास किए जाने को प्रेरित करता है । प्रथमतया डा. शगुफता की हत्या की गई थी । रक्त से सने वस्त्र कमरे से बरामद किए गए थे और डा पॉली की कार की व्यवस्था करते हुए शव को ग्राम लालटन कलां के क्षेत्र में फेंक दिया गया था । शव सड़क के निकट पड़ा हुआ था और यह सुझाता है कि अपीलार्थी-अभियुक्त शव को हटाने की जल्दी में था, इसी कारण से कार की चाबी डेढ़ घंटे पश्चात् डा. पॉली को वापस कर दी गई थी । टाई, डम्बेल और बोरी प्रकटन कथन के अनुसार बरामद किए गए थे और बरामद वस्तुएं रक्त से सनी पाई गई थीं । तारीख 9 मार्च, 1996 को डा. योगेश ने सरबजीत सिंह सुरक्षागार्ड के माध्यम से अपीलार्थी-अभियुक्त को आपरेशन थियेटर में बुलाया, किन्तु फाइल पर ऐसा कुछ भी नहीं है कि अपीलार्थी-अभियुक्त ने डा. योगेश की सहायता करने के लिए आपरेशन थियेटर गया था । अभि. सा. 7 सरबजीत सिंह अपीलार्थी-अभियुक्त के कमरे में इस अनुरोध के साथ गया था कि अपीलार्थी-अभियुक्त की सेवाएं आपरेशन थियेटर में आवश्यक है । सरबजीत मृतका से संबंधित नहीं है । इसलिए, उस पर अविश्वास करने का कोई विचार नहीं था ।
>
> शव परीक्षा के अनुसार, मृत्यु गला घोंटे जाने और इसी भांति विभिन्न क्षतियां पहुचाएं जाने से कारित हुई थी । अपीलार्थी-अभियुक्त के द्वारा किए गए प्रकटन कथन के अनुसार बरामद की गई गले की टाई रक्त से सनी पाई गई थी ।"

16. वर्तमान मामला पूर्व नियोजित हत्या का मामला है और यह पूर्णतया पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है क्योंकि उक्त घटना का कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है ।

17. **शरद बिरधीचंद शारदा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यह साबित करने का भार अभियोजन पर है कि श्रृंखला पूरी है और अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत की गई मिथ्या या प्रतिरक्षा की अस्वीकार्यता अभियोजन पक्षकथन में कोई गंभीर दुर्बलता या कमी को अनदेखा करने के लिए आधार नहीं बनाई जा सकती । इसके पश्चात्, न्यायालय ने उन शर्तों को उल्लिखित किया जो कि पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि किए जाने के पूर्व पूर्णतया साबित होने चाहिए । वे निम्न हैं :–

> "(1) वे परिस्थितियां जिनके आधार पर दोषिता का निष्कर्ष निकाला जाना है पूर्णतया साबित होने चाहिए । संबंधित परिस्थितियां साबित हों या साबित होने चाहिए न कि साबित हो सकेगी ;
>
> (2) इस प्रकार साबित तथ्य केवल अभियुक्त की दोषिता की संकल्पना से संगत होने चाहिए, अर्थात् वे किसी अन्य संकल्पना से स्पष्ट नहीं होने चाहिए सिवाय यह कि अभियुक्त दोषी है ;
>
> (3) परिस्थितियां निश्चायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए ;
>
> (4) उन परिस्थितियों से उस प्रत्येक संभव संकल्पना का अपवर्जन होना चाहिए सिवाय साबित किए जाने वाली ; और
>
> (5) साक्ष्य की श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की निर्दोषिता से संगत निष्कर्ष निकाले जाने के लिए कोई युक्तियुक्त आधार न बचे और उनसे यह दर्शित होना चाहिए कि समस्त मानवीय संभावतया में कृत्य अभियुक्त द्वारा ही किया गया है ।"

इस प्रकार पारिस्थितिक साक्ष्य के मामले में अभियोजन को विश्वसनीय और भरोसेमंद साक्ष्य द्वारा अपराध में आलिप्त करने वाली प्रत्येक परिस्थिति को साबित करना चाहिए, और इस प्रकार साबित परिस्थितियों से घटनाओं की एक पूर्ण श्रृंखला बननी चाहिए जिसके आधार पर अभियुक्त की दोषिता से भिन्न और कोई निष्कर्ष न निकाला जा सके । निस्संदेह, संदेह कितना भी घोर क्यों न हो यह सबूत का स्थान नहीं ले सकता । पारिस्थितिक साक्ष्य के मामले पर चर्चा करते समय, न्यायालय को किसी अभियुक्त को इसके समक्ष साबित की गई परिस्थितियों के आधार पर ही केवल दोषी पाने पर

---

[1] ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1622.

अत्यंत सावधानी बरतनी चाहिए ।

18. स्वीकृततः, अपीलार्थी रक्त से सने वस्त्र डा. बी. पवार (अभि. सा. 1) को तारीख 9 मार्च, 1996 को सौंपने के पश्चात् लापता हो गया था जिसके परिणामस्वरूप वह तारीख 11 मार्च, 1996 को अपराह्न 6.00 बजे गिरफ्तार किया जा सका था । यद्यपि यह परिस्थिति निचले न्यायालयों द्वारा विचार में नहीं ली गई थी, राज्य की ओर से उपस्थित हुए विद्वान् स्थाई काउंसेल ने हमारे समक्ष वास्तव में इस पर अत्यंत प्रबलता से अवलंब लिया है ।

19. इस न्यायालय ने इस मुद्दे पर समय-समय पर विचार किया है और यह अभिनिर्धारित किया है कि मात्र अभियुक्त का फरार होने का कृत्य अकेला अभियुक्त की दोषिता के संबंध में अंतिम निष्कर्ष आवश्यक रूप से नहीं निकाला जा सकता, क्योंकि कोई निर्दोष व्यक्ति भी डर सकता है और गिरफ्तारी से बचने का प्रयत्न करेगा, जब वह एक घोर अपराध कारित किए जाने के लिए त्रुटिपूर्वक संदेह किया गया हो ; यह स्वयं के बचाव की एक भावना होती है (देखिए **मतरू** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] ; **राज्य (केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के माध्यम से)** बनाम **महेन्दर सिंह दहिया**[2] और **एस के यूसुफ** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[3] वाले मामले में) ।

उपर्युक्त को देखते हुए, हम राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा प्रस्तुत की गई दलीलों में कोई बल नहीं पाते हैं ।

20. पारिस्थितिक साक्ष्य के मामले में, हेतुक अत्यंत महत्वपूर्ण और महत्ता इस कारण से धारण कर लेता है कि हेतुक का अभाव न्यायालय को सतर्क बनाता है और इसे प्रत्येक साक्ष्य को अत्यंत सूक्ष्मता से यह निश्चित करने के लिए संवीक्षा करने के लिए प्रतिबद्ध करता है कि संदेह, अन्तर्भावना या परिकल्पना सबूत का स्थान नहीं ले सकते हैं ।

21. **सूबेदार तिवारी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[4] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्न मत व्यक्त किया :–

> "हेतुक जो किसी हत्यारे के चित्त में परिवर्तनशील होता है कि

---

[1] ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 1050.
[2] (2011) 3 एस. सी. सी. 109.
[3] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 2283.
[4] ए. आई. आर. 1989 एस. सी. 733.

विधिमान्यता के संबंध में साक्ष्य प्रायः अन्यों की पहुंच के भीतर नहीं होता । हेतुक अपराध के पीड़ित को भी ज्ञात नहीं हो सकता । हेतुक हत्यारे को ज्ञात हो सकेगा और कोई अन्य व्यक्ति यह नहीं जान सकता कि हत्यारे के चित्त में उक्त बुरे विचार को जन्म किस बात से दिया ।"

22. इसी भांति, **सुरेश चंद्र बाहरी** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्न अभिनिर्धारित किया :–

"पारिस्थतिक साक्ष्य के मामले में अभियुक्त की दोषिता पर प्रभाव डालने वाला साक्ष्य होते हुए भी अविश्वसनीय और अभरोसेमंद इस कारण से बन जाता है कि अधिकतर प्रायः यह केवल अपराध का कर्ता होता है जो कि यह जानता है कि किन परिस्थितियों से उसे अपराध कारित करने के लिए कतिपय कार्य या कार्रवाई करने को प्रेरित किया था । इसलिए यदि अब अभिलेख पर का साक्ष्य किसी अपराध को कारित करने के लिए पर्याप्त/आवश्यक हेतुक सुझाता है तब यह माना जाएगा कि अभियुक्त ने इसे कारित किया था ।"

23. इस प्रकार, यदि उपर्युक्त सुस्थापित हेतुक प्रतिपादना की रोशनी में विवाद्यक की परीक्षा की जाती है तब हम उक्त पहलू पर निचले न्यायालयों के मत से सहमति व्यक्त कर सकेंगे ।

24. **जैककरण सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्न मत व्यक्त किया :–

"साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन अभिलिखित किए गए प्रकटन कथन पर किसी अभियुक्त के हस्ताक्षरों या अंगूठा छाप का अभाव प्रकटन कथन की प्रमाणिकता और विश्वसनीयता से तात्विक रूप से विमुख करता है ।"

25. तथापि, **राजस्थान राज्य** बनाम **तेजा राम**[3] वाले मामले में इस न्यायालय ने उक्त मुद्दे पर विस्तार से जांच की और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162(1) के उपबंधों पर विचार किया तथा धारा 162(1) निम्न कथन करती है :– किसी व्यक्ति द्वारा किसी पुलिस अधिकारी को अन्वेषण के

---

[1] ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 2420.
[2] ए. आई. आर. 1995 एस. सी. 2345.
[3] ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 1776.

दौरान किए गए कोई कथन यदि लेखबद्ध किया जाता है तो कथन करने वाले व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित नहीं किया जाएगा । इसलिए, उपर्युक्त प्रावधान से यह स्पष्ट है कि सुस्थापित शब्दों में यह भी प्रतिषेध है और विधि यह अपेक्षा करती है कि अन्वेषक अधिकारी के समक्ष किया गया कोई कथन साक्षी द्वारा हस्ताक्षर नहीं किया जाएगा । यह इस कारण से आवश्यक समझा गया था कि कोई साक्षी तब न्यायालय में किसी बात को सत्यापित कर सकता है और पुलिस द्वारा उससे कुछ उगलवाए जाने का दावा किए जाने से भी अप्रभावित रहेगा । किसी पुलिस अधिकारी के उपर्युक्त कानूनी अपेक्षा से अनभिज्ञ रहने की स्थिति में किसी साक्षी से उसके कथन पर हस्ताक्षर किए जाने पर वह दूषित नहीं हो जाएगा । अधिक से अधिक न्यायालय साक्षी को यह सूचित करेगा कि वह पुलिस के समक्ष कथन करने के लिए आबद्ध नहीं है । तथापि, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 162(1) में अन्तर्विष्ट प्रतिषेध भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "साक्ष्य अधिनियम" कहा गया है) की धारा 27 के अधीन किसी कथनों पर लेखबद्ध नहीं होगा जैसाकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162(2) के अधीन उपबंध द्वारा स्पष्ट किया गया है । न्यायालय ने निम्न निष्कर्ष निकला :–

> "पारिणामिक स्थिति यह है कि अन्वेषक अधिकारी साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन आने वाले किसी वस्तु की बरामदगी के लिए अभिग्रहण ज्ञापन तैयार करते समय उसे अभियुक्त द्वारा दिए गए किसी कथन पर उसके हस्ताक्षर लेने के लिए आबद्ध नहीं है । किन्तु यदि कोई हस्ताक्षर अन्वेषक अधिकारी द्वारा लिया गया है, तब इसमें कुछ भी गलत या इसके संबंध में कुछ भी अवैध नहीं है ।"

26. **गोलाकोंडा वेंकेटेश्वर राव** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने पुनः संपूर्ण विवाद्यक पर पुनर्विचार किया और यह अभिनिर्धारित किया कि मात्र यह कारण कि बरामदगी ज्ञापन अभियुक्त द्वारा हस्ताक्षर नहीं किया गया था यह बरामदगी को स्वतः दूषित नहीं कर सकेगा क्योंकि प्रत्येक मामला इसके स्वयं के तथ्यों के आधार पर विनिश्चय किया जाता है । उस दिशा में जब बरामदगियां अभियुक्त के प्रकटन कथन के अनुसरण में की जाती है तब इस तथ्य के बावजूद कि

---

[1] ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 2846.

कथन उसके द्वारा हस्ताक्षर नहीं किया गया है, निश्चित रूप से उसमें कुछ सत्यता होती है जो कि उसने कहा था इस कारण से कि उसके कथन के आधार पर तात्विक वस्तुओं की बरामदगी की गई थी । न्यायालय ने इसके आगे इस पहलू पर और स्पष्ट किया और इसके **जैककरण सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में अपने पूर्वतर निर्णय में यह स्पष्ट किया है क्योंकि इस मामले में रिवाल्वर और तद्धीन बरामद कारतूस के स्वामित्व के संबंध में विवाद था । अभियोजन यह दर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य देने में विफल रहा कि अपराध का हस्ताक्षर उक्त अपीलार्थी से संबंधित था और उक्त संदर्भ में इस न्यायालय द्वारा मत व्यक्त किया गया था । न्यायालय ने निम्न मत व्यक्त किया :–

> "यह तथ्य कि बरामदगी दी गई सूचना के परिणामस्वरूप की गई है, मृतका के पहने हुए वस्त्रों और उसके शव के अवशेषों की बरामदगी से प्रबल और पुष्टि होती है जिनके आधार पर यह विश्वास होता है कि सूचना और कथन मिथ्या नहीं हो सकते हैं ।"

27. उपर्युक्त को देखते हुए वर्तमान मामला उपर्युक्त निर्णयों के निर्णयानुसार के अधीन पूर्णतया आता है और इसलिए इस संबंध में दी गई दलील स्वीकार नहीं है ।

28. बरामद की गई अधिकतर वस्तुओं जो न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला के लिए भेजी गई थीं और सीरम विज्ञानी रिपोर्टों में मानव रक्त अन्तर्विष्ट था । तथापि, डा. पॉली (न्यायालय साक्षी सं. 2) की कार से बरामद रबड़ मैट और एक अन्य वस्तु पर इसके संबंध में कोई सकारात्मक रिपोर्ट नहीं है क्योंकि उक्त वस्तुओं पर रक्त विघटित हो गया था । अभियुक्त की कमीज और दो टी-शर्ट, दो तौलिया, एक ट्रैकशूट, एक पैंट, मृतका की ब्रेसियर, मृतका की चूड़ियां, मृतका के निचले वस्त्रों, दो टॉप्स, डम्बेल, बोरी, टाई इत्यादि समेत अन्य सभी तात्विक वस्तुओं पर रक्त विघटित पाया गया था ।

29. **गुरा सिंह** बनाम **राजस्थान राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा समरूप विवाद्यक पर विचार किया गया था और उसमें न्यायालय ने इस न्यायालय द्वारा दिए गए पूर्वतर निर्णयों पर अवलंब लेते हुए विशेष रूप से **प्रभू बाबाजी नेवई** बनाम **बाम्बे राज्य**[2], **राघव प्रपन्ना त्रिपाठी** बनाम **उत्तर**

---

[1] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 330.

[2] ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 51.

प्रदेश राज्य[1] और **तेजा राम** वाले (उपर्युक्त) मामले में दिए गए निर्णयों पर अवलंब लेते हुए यह मत व्यक्त किया कि सीरम विज्ञानी द्वारा सीरम के विघटित हो जाने के कारण रक्त की उत्पत्ति का पता लगाने में विफलता से यह अभिप्रेत नहीं होता कि कुल्हाड़ी पर लगा रक्त पूर्णतया मानव रक्त नहीं रहा होगा । कभी-कभी या तो धब्बे के अत्यंत ही अपर्याप्त होने के कारण या रुधिर विज्ञानी परिवर्तनों और प्लाज्मी जमाव के कारण यह संभव होता है कि सीरम विज्ञानी रक्त की उत्पत्ति का पता लगाने में विफल हो जाता है । तथापि, ऐसे मामले में जब तक संदेह युक्तियुक्त स्वरूप का न हो जो कि न्यायिक रूप से सतर्कचित कुछ वस्तुपरक रूप से समझ न ले, इस संबंध में अभियुक्त द्वारा किसी फायदा का दावा नहीं किया जा सकता ।

30. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने **सत्तातिया** उर्फ **सतीश रजन्ना करतल्ला** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर अत्यंत प्रबलता से अवलंब लिया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यदि न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट/सीरम विज्ञानी रिपोर्ट के आधार पर कोई मामला नहीं बनता है कि बरामद किए गए हथियार/वस्त्रों पर पाया गया रक्त मृतका के रक्त समूह का ही है, तब उसे अभियोजन पक्षकथन में एक गंभीर कमी माना जाना चाहिए ।

अपीलार्थी को उक्त निर्णय में ऐसी किसी मताभिव्यक्ति का फायदा लेने को इस कारण से मंजूर नहीं किया जा सकता कि उपर्युक्त मामले में स्वतः बरामदगी संदिग्ध थी और इसके अतिरिक्त रक्त समूहों का मिलान न होना एक कमी माना गया था और न कि मामले का विनिश्चय करने के लिए स्वतंत्र पहलू ।

31. इस न्यायालय द्वारा **जगरूप सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[3] वाले मामले में इस न्यायालय के एक हाल ही के निर्णय में समान मत दोहराया गया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि एक बार अभियुक्त द्वारा किए गए प्रकटन कथन के अनुसरण में बरामदगी किए जाने पर, रक्त

---

[1] ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 74.

[2] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 1184.

[3] 2001 की दांडिक अपील सं. 67 जिसका विनिश्चय तारीख 20 जुलाई, 2012 को किया गया ।

समूहों का मिलान होना या उनमें मिलान न होना महत्व खो देता है ।

32. **जॉन पांडियन** बनाम **तमिलनाडु राज्य (जिसका प्रतिनिधित्व पुलिस निरीक्षक द्वारा किया गया)**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्न अभिनिर्धारित किया :–

"..... बरामदगी विश्वसनीय प्रतीत होती है । इसका निचले न्यायालयों द्वारा यह स्वीकार की गई है और हम इसे त्यक्त करने के लिए कोई कारण नहीं पाते है । यह इस तथ्य के अलावा है कि यह हथियार न्यायालयिक विज्ञानी प्रयोगशाला भेजा गया और इसे मानव रक्त से सना पाया गया है । यद्यपि रक्त समूह अभिनिश्चित नहीं किया जा सका क्योंकि परिणाम निश्चायक नहीं थे, अभियुक्त को इस संबंध में कुछ स्पष्टीकरण देना था कि किस प्रकार इस हथियार पर मानव रक्त आया था । उसने कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया था । यह बरामदगी अत्यंत सकारात्मक रूप से अभियोजन पक्षकथन को बल देती है ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया)

33. उपर्युक्त को देखते हुए, न्यायालय इस दलील को स्वीकार करना असंभव पाता है कि रक्त की उत्पत्ति के संबंध में रिपोर्ट के अभाव में इस संप्रेक्षण के आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है कि क्योंकि समय के व्यतीत होने के कारण ही रक्त का वर्गीकरण अवधारित नहीं किया जा सका था । इसलिए अभियुक्त को कोई लाभ प्रदत्त नहीं किया जा सकता जिससे कि वह किसी फायदे का दावा करने के लिए समर्थ हो सके और रक्त इत्यादि की विछिन्न रिपोर्ट एक लापता कड़ी नहीं कही जा सकती जिसके आधार पर परिस्थितियों की श्रृंखला टूटी हुई उपधारित की जा सके ।

34. जब इसमें यहां अपीलार्थी ने प्रकटन कथन किया था, एक पंचनामा तैयार किया गया था और बरामदगी पंचनामा भी तैयार किए गए थे । अभिलेख पर का साक्ष्य यह प्रकट करता है कि वे दो पुलिस अधिकारियों और एक स्वतंत्र पंचसाक्षी यथा रणधीर सिंह जाट जिसकी स्वीकृततः परीक्षा नहीं की गई थी द्वारा सम्यक् रूप से हस्ताक्षर किए गए थे । इसलिए उक्त पंचसाक्षी की परीक्षा न किए जाने के प्रभाव और केवल दो पुलिस अधिकारियों द्वारा की गई बरामदगी के संबंध में साक्ष्य की शुद्धता

---

[1] (2010) 14 एस. सी. सी. 129.

के संबंध में भी एक प्रश्न उठता है ।

35. इस विवाद्यक पर इस न्यायालय द्वारा **राज्य, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली की सरकार** बनाम **सुनील और एक अन्य**[1] वाले मामले में विस्तार से विचार किया गया था जिसमें इस न्यायालय ने निम्न अभिनिर्धारित किया :–

> "..... किन्तु यदि कोई साक्षी उपस्थित नहीं था या यदि कोई व्यक्ति दस्तावेज पर अपने हस्ताक्षर करने के लिए सहमत नहीं था तब विधि की प्रतिपादना स्वरूप यह अधिकथिति करना कठिन है कि पुलिस अधिकारी द्वारा इस प्रकार तैयार किया गया दस्तावेज को संदेह की दृष्टि से देखा जाए और बरामदगी साक्ष्य अविश्वसनीय माना जाए । न्यायालय को अन्वेषक अधिकारी के साक्ष्य पर विचार करना चाहिए जिसने अभियुक्त से लिए गए कथन के महत्व को समझते हुए उसके आधार पर की गई बरामदगी के तथ्य के संबंध में अभिसाक्ष्य दिया था ।
>
> हम यह महसूस करते हैं कि यह एक अराजकतावादी सिद्धांत है कि पुलिस अधिकारी की कार्रवाइयों पर प्रारंभ में अविश्वास किया जाए ....। किसी भी दशा में न्यायालय इस उपधारणा के साथ अग्रसर नहीं हो सकता कि पुलिस अभिलेख भरोसेमंद नहीं हैं । विधि की प्रतिपादना के रूप में उपधारणा दूसरे प्रकार की होनी चाहिए । यह कि पुलिस के अधिकारीकृत्य नियमित रूप से किए गए हैं । यह उपधारणा का उचित सिद्धांत है और विधायिका द्वारा भी मान्यता दिया गया है । इसलिए जब कोई पुलिस अधिकारी न्यायालय में साक्ष्य दिया है कि अभियुक्त द्वारा किए गए कथन के आधार पर उसके द्वारा कोई कतिपय वस्तु बरामद की गई, तब न्यायालय को उस कथन के सही होने के संबंध में विश्वास करने की स्वतंत्रता है यदि यह अन्यथा अविश्वसनीय नहीं दर्शाया जाता है । साक्ष्यों की प्रतिपरीक्षा या किन्हीं सामग्रियों के माध्यम से यह दर्शित करना अभियुक्त के लिए है कि पुलिस अधिकारी का साक्ष्य या तो अविश्वसनीय है या किसी विशिष्ट मामले में उसके आधार पर कार्रवाई करना कम से कम असुरक्षित है । यदि न्यायालय को पुलिस के ऐसे अभिलेखों की सत्यता के संबंध में संदेह करने के लिए कोई अच्छा कारण है तब न्यायालय निश्चित

---

[1] (2001) 1 एस. सी. सी. 652.

रूप से इस तथ्य को विचार में ले सकता है कि बरामदगी के समय कोई अन्य स्वतंत्र व्यक्ति उपस्थिति नहीं था । किन्तु यह विधिक रूप से अनुमत प्रक्रिया नहीं है कि प्रारंभ में ही पुलिस कार्रवाई को अविश्वसनीय उपधारित किया जाए और न ही ऐसी कार्रवाई को मात्र इस कारण से त्यक्त किया जाना चाहिए कि पुलिस ने ऐसी कार्रवाईयों के समसामयिक रूप से बनाए गए दस्तावेजों में स्वतंत्र व्यक्तियों के हस्ताक्षर नहीं लिए थे ।"

36. रणधीर सिंह जाट प्रकटथन पंचनामा और बरामदगी पंचनामा का पंच साक्षी था । उसकी अभियोजन द्वारा परीक्षा नहीं की गई है । अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 14) से उसकी प्रतिपरीक्षा में इस संबंध में कोई प्रश्न नहीं पूछा गया था कि अभियोजन ने उक्त साक्षी को क्यों विधारित किया था । अन्वेषक अधिकारी प्रश्न का उत्तर देने के लिए अकेला सक्षम व्यक्ति था । यह नितांत संभव है कि साक्षी जीवित नहीं था या उसका पता नहीं चला था ।

37. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन परीक्षा किए जाने के समय अभियुक्त पर यह आबद्धकर है कि वह उससे सहयुक्त अपराध में आलिप्त करने वाली परिस्थितियों के संबंध में कुछ स्पष्टीकरण प्रस्तुत करे और न्यायालय को इसका विनिश्चय करते समय कि क्या परिस्थितियों की श्रृंखलापूर्ण है या नहीं, पारिस्थितिक साक्ष्य के मामले में भी ऐसे स्पष्टीकरण की अवेक्षा करनी चाहिए । उपर्युक्त निर्णय **मुशीर खान** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में अनुमोदित और अनुसरण किया गया है । [देखिए : **परिवहन आयुक्त, आंध्र प्रदेश, हैदराबाद और एक अन्य** बनाम **एस. सरदार अली और अन्य**[2] वाला मामला]

38. इस न्यायालय ने **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **सुरेश**[3] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि जब अभियुक्त का ध्यान ऐसी परिस्थितियों के प्रति खींचा जाता है जो उसे अपराध के कारित किए जाने के संबंध में आलिप्त करती है और वह उनके संबंध में कोई यथोचित स्पष्टीकरण प्रदान करने में विफल रहता है या गलत उत्तर देता है, तब उक्त कृत्य परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण करने में एक लापता कड़ी के रूप में मानी

---

[1] (2010) 2 एस. सी. सी. 748.

[2] ए. आई. आर. 1983 एस. सी. 1225.

[3] (2000) 1 एस. सी. सी. 471.

जाएगी । यहां हम यह जोड़ना चाहेंगे कि हमने उक्त विनिश्चय को केवल यह तथ्य उजागर करने के लिए निर्दिष्ट किया है कि अभियुक्त ने उससे दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन पूछी गई अपराध में आलिप्त करने वाली परिस्थितियों के संबंध में कोई स्पष्टीकरण जो कोई भी हो नहीं दिया है ।

39. उपर्युक्त को देखते हुए संपूर्ण साक्ष्य और अभिलेख पर की सामग्री का संयुक्त रूप से पठन करने पर निम्न बातें स्पष्ट होती हैं :–

(i) मृतका लोयला शगुफता ने जगाधारी में रहने वाली अपनी माता को तारीख 6 मार्च, 1996 को यह कहा था कि वह वहां पर तारीख 7 मार्च, 1996 को पहुंचेगी । तथापि, वह वहां नहीं पहुंची थी । इसलिए, विक्टोरिया रानी (अभि. सा. 2) जो कि मृतका की माता है अपनी पुत्री की तलाश में तारीख 10 मार्च, 1996 को लुधियाना पहुंची थी ।

(ii) तारीख 9 मार्च, 1996 को अपीलार्थी ने डा. बी. पवार (अभि. सा. 1) चिकित्सा अधीक्षक को यह कथन करते हुए कुछ रक्त से सने वस्त्र सौंपे थे कि उसने उन वस्त्रों को जब वह अस्पताल से वापस लौटा था अपने कमरे में पाया था । डा. बी. पवार (अभि. सा. 1) ने उक्त घटना के संबंध में उसी दिन पुलिस को सूचित किया था ।

(iii) तारीख 10 मार्च, 1996 को विक्टोरिया रानी (अभि. सा. 2) ने घटना के संबंध में एक परिवाद फाइल किया और एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई थी । अन्वेषक अधिकारी अपीलार्थी और इसी भांति मृतका के क्रमिक हास्टलों में उनके कमरे में गया था किन्तु कमरे बाहर से ताला बंद पाए गए थे । तब उन्होंने अपीलार्थी उसके रिश्तेदार श्री राणा के निवास पर और अन्य ढाबों और होटलों में भी तलाश करने का एक प्रयास किया था, किन्तु उनके इन प्रयासों के बावजूद वह अपीलार्थी का पता लगाने में असमर्थ रहा था ।

(iv) तारीख 11 मार्च, 1996 को डा. नम्रता शरण ने डा. बी. पवार (अभि. सा. 1) को सूचित किया कि मृतका हास्टल से तारीख 9 मार्च, 1996 से लापता थी ।

उसी दिन वीर राजेन्द्र पाल (अभि. सा. 14) थाना भारसाधक अधिकारी को लालटन कलां पुलिस चौकी से एक वायरलैस संदेश

प्राप्त हुआ कि एक महिला का शव निकट के एक आम रास्ते के क्षेत्र के निकट झाड़ियों में पड़ा हुआ पाया गया था । वह तब विक्टोरिया रानी (अभि. सा. 2) के साथ घटनास्थल पर पहुंचे और मृतका का शव बरामद किया और पंचनामा इत्यादि तैयार किया । अपीलार्थी के कमरे की तलाशी ली गई थी, किन्तु कमरे से कोई बरामदगी नहीं की गई थी ।

(v) अन्वेषण के अनुक्रम के दौरान वीर राजेन्द्र पाल (अभि. सा. 14) थाना भारसाधक अधिकारी ने यह महसूस किया कि अपीलार्थी ने डा. पॉली (न्यायालय साक्षी सं. 2) की कार उधार ली थी । इस प्रकार उक्त कार जो कि उसी कंपाउंड में खड़ी की गई थी, को पुलिस द्वारा कब्जे में लिया गया था और इसमें से रक्त से सनी एक मैट बरामद और मुहरबंद की गई थी ।

(vi) तारीख 12 मार्च, 1996 को विशेषज्ञ बुलाए गए थे और अपीलार्थी के कमरे की तलाशी ली गई थी । फर्श पर रक्त के धब्बे पाए गए थे जो कि साफ कर दिए गए थे और उनके साथ ही वी आकृति की हवाई चप्पलों की एक जोड़ी जिस पर भी रक्त के धब्बे थे बरामद किए गए थे । उक्त वस्तुएं मुहरबंद की गई थीं ।

(vii) अपीलार्थी को तारीख 11 मार्च, 1996 को गिरफ्तार किया गया था । उसे जागिन्दर सिंह (अभि. सा. 12) द्वारा प्रस्तुत किया गया था और पुलिस अधिकारियों और एक पंच साक्षी रणधीर सिंह की उपस्थिति में एक प्रकटन कथन किया गया था और पंचनामा तैयार किया गया था और इसमें उसने यह कथन किया था कि वह मृतका की हत्या कारित करते समय प्रयुक्त की गई वस्तुओं की बरामदगी कराने में सहायता करेगा । उक्त प्रकटन कथन के आधार पर वह पुलिस दल को पुराने लुधियाना कारागार ले गया था और एक बोरी डम्बेल और एक टाई की बरामदगियां कराने में सहायता की थी, क्योंकि वे सभी कूड़ा-करकट के नीचे छिपाए हुए थे । वे सम्यक् रूप से बरामद किए गए थे और पंचनामा तैयार किया गया था । इस प्रकार बरामद की गई सभी सामग्रियां तत्पश्चात् न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला/सीरम विज्ञानी रिपोर्ट के लिए भेजी गई थीं और प्राप्त की गई रिपोर्ट में यह कथन किया गया था कि उन सभी वस्तुओं पर मानव रक्त इत्यादि लगा हुआ था सिवाय कुछ वस्तुओं के जिन पर रक्त विघटित हो गया था और इसके परिणामस्वरूप कोई रिपोर्ट

प्रस्तुत नहीं की जा सकी थी ।

(viii) तारीख 11 मार्च, 1996 को मृतका का शव डा. यू. एस. सूच (अभि. सा. 11) सहित चिकित्सकों के एक बोर्ड द्वारा शव परीक्षा किए जाने के लिए भेजा गया था और मृतका की निकट वस्तुएं जिनमें उसकी चूड़ियां इत्यादि भी सम्मिलित थीं को पुलिस द्वारा कब्जे में लिया गया था ।

(ix) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अपने कथन में अपीलार्थी ने अपना वर्णन जो कि उसने डा. बी. पवार (अभि. सा. 1) को दिया था को यह कथन करते हुए बदल दिया कि उसके द्वारा सौंपे गए रक्त से सने वस्त्र विभिन्न कमरों को जोड़ने वाली बालकनी में पाए गए थे और यह उसके मूल कथन से अलग था जिसमें उसने यह प्रकट किया था कि उसने उन्हें अपने कमरे में पाया था । वह इस संबंध में कोई स्पष्टीकरण नहीं दे सका कि किस प्रकार से रक्त से सने वस्त्र उसके कमरे में पाए गए थे ।

(x) किरपाल देव सिंह (अभि. सा. 8) टैक्सी चालक यद्यपि उसने न्यायालय में अपीलार्थी की शनाख्त नहीं की थी तब भी उसे अभियोजन द्वारा पक्षद्रोही घोषित नहीं किया गया था, उसने यह अभिसाक्ष्य दिया कि कैंटीन ठेकेदार जोशी द्वारा कहे जाने पर वह अपीलार्थी से मिलने तारीख 9 मार्च, 1996 को गया था जिसने उसे यह बताया था कि वह जगाधारी जाना चाहता था । उस समय उसे बाद में आने को कहा गया था क्योंकि अपीलार्थी की पत्नी तात्पर्यित रूप से लालटन कलां से अपना वेतन लेने गई थी । स्वीकृततः अपीलार्थी और उसकी पत्नी मृतका पृथक् रूप से रह रही थी और उनके आपस में सौहार्दपूर्ण संबंध नहीं थे । ऐसी तथ्यपरक स्थिति में, अपीलार्थी जगाधरी जाने के लिए टैक्सी भाड़े पर नहीं लेता । इसके अतिरिक्त यदि मृतका पृथक् रूप से रही रही थी तब अपीलार्थी के लिए यह कहना संभव नहीं था कि उसकी पत्नी अपना वेतन लेने के लिए लालटन कलां गई थी । डा. पॉली (न्यायालय साक्षी सं. 2) का साक्ष्य यह स्पष्ट करता है कि अपीलार्थी वस्तुतः उनकी कार ले गया था, उसका डेढ़ घंटे के लिए उपयोग किया था और तब उसे वापस लाया था और हास्टल कंपाउंड में खड़ा किया था जिसके पश्चात् उसने उसकी चाबियां डा. पॉली (न्यायालय साक्षी सं. 2) को सौंप दी थी ।

(xi) शव परीक्षा रिपोर्ट में वर्णन की गई क्षतियों की प्रकृति यह अत्यंत स्पष्ट करती है कि मृतका की गला घोंटे जाने के कारण अर्थात् श्वासावरोध से मृत्यु हुई थी, उसके सिर पर भी अनेक क्षतियां थीं, जो कि डम्बेल से कारित की जा सकती थीं जो कि बरामद की गई वस्तुओं में एक थी और उस पर रक्त के धब्बे पाए गए थे ।

(xii) क्योंकि अपीलार्थी के अपनी पत्नी से तनावपूर्ण संबंध थे । वह निस्संदेह उससे अपना पीछा छुड़ाना चाहता था । यद्यपि उसने यह दावा किया है कि पारस्परिक सम्मति से विवाह-विच्छेद के लिए अर्जियां न्यायालय के समक्ष लंबित थी, उसने इसके संबंध में न्यायालय के समक्ष कोई दस्तावेज कभी भी प्रस्तुत नहीं किए थे । इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अपीलाथी वस्तुतः अपनी पत्नी से पीछा छुड़ाना चाहता था ।

(xiii) क्योंकि रक्त से सनी चूड़ी, डम्बेल, टाई इत्यादि की बरामदगियां स्वयं अपीलार्थी के प्रकटन कथन के आधार पर की गई थीं, इसलिए परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण है ।

40. उपर्युक्त को देखते हुए हम निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने के लिए कोई कारण नहीं पाते हैं । अपील गुणता रहित है और इसलिए तदनुसार खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

अनू.

संसद् के अधिनियम

राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990

(1990 का अधिनियम संख्यांक 20)

[30 अगस्त, 1990]

राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन करने और उससे संसक्त या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के इक्तालीसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख* को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे ।

2. परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "आयोग" से धारा 3 के अधीन गठित राष्ट्रीय महिला आयोग अभिप्रेत है ;

(ख) "सदस्य" से आयोग का सदस्य अभिप्रेत है और उसके अंतर्गत* सदस्य-सचिव भी है ;

(ग) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ।

---

* 31-1-1992, देखिए अधिसूचना सं. का.आ. 99(अ), दिनांक 31-1-1992, भारत का राजपत्र, भाग 2, अनुभाग 3(ii), पृ.1.

अध्याय 2

राष्ट्रीय महिला आयोग

3. राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन – (1) केन्द्रीय सरकार राष्ट्रीय महिला आयोग के नाम से ज्ञात एक निकाय का गठन करेगी जो इस अधिनियम के अधीन उसे प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग और समनुदिष्ट कृत्यों का पालन करेगा ।

(2) यह आयोग निम्नलिखित से मिलकर बनेगा –

(क) केन्द्रीय सरकार द्वारा नामनिर्देशित एक अध्यक्ष, जो महिलाओं के हित के लिए समर्पित हो ;

(ख) केन्द्रीय सरकार द्वारा ऐसे योग्य, सत्यनिष्ठ और प्रतिष्ठित व्यक्तियों में से नामनिर्देशित पांच सदस्य जिन्हें विधि या विधायन, व्यवसाय संघ आंदोलन, महिलाओं की नियोजन संभाव्यताओं की वृद्धि के लिए समर्पित उद्योग या संगठन के प्रबंध, स्वैच्छिक महिला संगठन (जिनके अंतर्गत महिला कार्यकर्ती भी हैं), प्रशासन, आर्थिक विकास, स्वास्थ्य, शिक्षा या सामाजिक कल्याण का अनुभव है :

परंतु उनमें अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों में से प्रत्येक का कम से कम एक सदस्य होगा ;

(ग) केन्द्रीय सरकार द्वारा नामनिर्दिष्ट एक सदस्य-सचिव जो –

(i) प्रबंध, संगठनात्मक संरचना या सामाजिक आंदोलन के क्षेत्र में विशेषज्ञ है, या

(ii) ऐसा अधिकारी है जो संघ की सिविल सेवा का या अखिल भारतीय सेवा का सदस्य है अथवा संघ के अधीन कोई सिविल पद धारण करता है और जिसके पास समुचित अनुभव है ।

4. अध्यक्ष और सदस्यों की पदावधि और सेवा की शर्तें – (1) अध्यक्ष और प्रत्येक सदस्य तीन वर्ष से अनधिक ऐसी अवधि के लिए पद धारण करेगा जो केन्द्रीय सरकार इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे ।

(2) अध्यक्ष या कोई सदस्य (ऐसे सदस्य-सचिव से भिन्न जो संघ की सिविल सेवा का या अखिल भारतीय सेवा का सदस्य है अथवा संघ के अधीन कोई सिविल पद धारण करता है) केन्द्रीय सरकार को संबोधित लेख द्वारा किसी भी समय, यथास्थिति, अध्यक्ष या सदस्य का पद त्याग सकेगा ।

(3) केन्द्रीय सरकार, किसी व्यक्ति को, उपधारा (2) में निर्दिष्ट अध्यक्ष या सदस्य के पद से हटा देगी यदि वह व्यक्ति –

(क) अनुन्मोचित दिवालिया हो जाता है ;

(ख) ऐसे किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया और कारावास* से दंडादिष्ट किया जाता है जिसमें केन्द्रीय सरकार की राय में नैतिक अधमता अंतर्ग्रस्त है ;

(ग) विकृत्तचित्त का हो जाता है और सक्षम न्यायालय की ऐसी घोषणा विद्यमान है ;

(घ) कार्य करने से इनकार करता है या कार्य करने में असमर्थ हो जाता है ;

(ङ) आयोग से अनुपस्थित रहने की इजाजत लिए बिना आयोग के लगातार तीन अधिवेशनों से अनुपस्थित रहता है ; या

(च) केन्द्रीय सरकार की राय में, उसने अध्यक्ष या सदस्य के पद का इस प्रकार दुरुपयोग किया है कि ऐसे व्यक्ति का पद पर बना रहना लोकहित के लिए अहितकर है :

परन्तु इस खंड के अधीन किसी व्यक्ति को तब तक नहीं हटाया जाएगा जब तक कि उस व्यक्ति को इस विषय में सुनवाई का उचित अवसर नहीं दे दिया गया है ।

(4) उपधारा (2) के अधीन या अन्यथा होने वाली रिक्ति नए नामनिर्देशन द्वारा भरी जाएगी ।

(5) अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते, और उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी जो विहित की जाएं ।

5. आयोग के अधिकारी और अन्य कर्मचारी – (1) केन्द्रीय सरकार आयोग के लिए ऐसे अधिकारियों और कर्मचारियों की व्यवस्था करेगी जो इस अधिनियम के अधीन आयोग के कृत्यों का दक्षतापूर्ण पालन करने के लिए आवश्यक हों ।

(2) आयोग के प्रयोजनों के लिए नियुक्त अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते और उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी जो विहित की जाएं ।

6. वेतन और भत्तों का अनुदान में से संदत्त किया जाना – अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते तथा प्रशासनिक व्यय, जिनके अंतर्गत धारा 5 में निर्दिष्ट अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन, भत्ते और पेंशन भी हैं, धारा 11 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट अनुदानों में से संदत्त किए जाएंगे ।

7. रिक्तियों आदि से आयोग की कार्यवाहियों का अविधिमान्य न होना – आयोग का कोई भी कार्य या कार्यवाही आयोग में कोई रिक्ति विद्यमान होने या उसके गठन में त्रुटि होने के आधार पर ही प्रश्नगत या अविधिमान्य नहीं होगी ।

8. आयोग की समितियां – (1) आयोग ऐसी समितियां नियुक्त कर सकेगा जो ऐसे विशेष प्रश्नों पर विचार करने के लिए आवश्यक हों जो आयोग द्वारा समय-समय पर उठाए जाएं ।

(2) आयोग को उपधारा (1) के अधीन नियुक्त किसी समिति के सदस्यों के रूप में, ऐसे व्यक्तियों में से जो आयोग के सदस्य नहीं हैं, उतने व्यक्ति सहयोजित करने की शक्ति होगी जितने वह उचित समझे और इस प्रकार सहयोजित व्यक्तियों को समिति के अधिवेशनों में उपस्थित रहने तथा उसकी कार्यवाहियों में भाग लेने का अधिकार होगा किन्तु उन्हें मतदान का अधिकार नहीं होगा ।

(3) इस प्रकार सहयोजित व्यक्ति समिति के अधिवेशनों में उपस्थित होने के लिए ऐसे भत्ते प्राप्त करने के हकदार होंगे जो विहित किए जाएं ।

9. प्रक्रिया का आयोग द्वारा विनियमित किया जाना – (1) आयोग या उसकी समिति का अधिवेशन जब भी आवश्यक हो किया जाएगा और वह ऐसे समय और स्थान पर किया जाएगा जो अध्यक्ष ठीक समझे ।

(2) आयोग अपनी प्रक्रिया तथा अपनी समितियों की प्रक्रिया स्वयं विनियमित करेगा ।

(3) आयोग के सभी आदेश और विनिश्चय सदस्य-सचिव द्वारा या इस निमित्त सदस्य-सचिव द्वारा सम्यक् रूप से प्राधिकृत आयोग के किसी अन्य अधिकारी द्वारा अधिप्रमाणित किए जाएंगे ।

अध्याय 3

आयोग के कृत्य

10. आयोग के कृत्य – (1) आयोग निम्नलिखित सभी या किन्हीं कृत्यों का पालन करेगा, अर्थात् :–

(क) महिलाओं के लिए संविधान और अन्य विधियों के अधीन उपबंधित रक्षोपायों से संबंधित सभी विषयों का अन्वेषण और परीक्षा करना ;

(ख) उन रक्षोपायों के कार्यकरण के बारे में प्रति वर्ष, और ऐसे अन्य समयों पर जो आयोग ठीक समझे, केन्द्रीय सरकार को रिपोर्ट देना ;

(ग) ऐसी रिपोर्टों में महिलाओं की दशा सुधारने के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा उन रक्षोपायों के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सिफारिशें करना ;

(घ) संविधान और अन्य विधियों के महिलाओं को प्रभावित करने वाले विद्यमान उपबंधों का समय-समय पर पुनर्विलोकन करना और उनके संशोधनों की सिफारिश करना जिससे कि ऐसे विधानों में किसी कमी, अपर्याप्तता या त्रुटियों को दूर करने के लिए उपचारी विधायी उपायों का सुझाव दिया जा सके ;

(ङ) संविधान और अन्य विधियों के उपबंधों के महिलाओं से संबंधित अतिक्रमण के मामलों को समुचित प्राधिकारियों के समक्ष उठाना ;

(च) निम्नलिखित से संबंधित विषयों पर शिकायतों की जांच करना और स्वप्रेरणा से ध्यान देना –

(i) महिलाओं के अधिकारों का वंचन ;

(ii) महिलाओं को संरक्षण प्रदान करने के लिए और समता तथा विकास का उद्देश्य प्राप्त करने के लिए भी अधिनियमित विधियों का अक्रियान्वयन ;

(iii) महिलाओं की कठिनाइयों को कम करने और उनका कल्याण सुनिश्चित करने तथा उनको अनुतोष उपलब्ध कराने

के प्रयोजनार्थ नीतिगत विनिश्चयों, मार्गदर्शक सिद्धांतों या अनुदेशों का अननुपालन,

और ऐसे विषयों से उद्‌भूत प्रश्नों को समुचित प्राधिकारियों के समक्ष उठाना ;

(छ) महिलाओं के विरुद्ध विभेद और अत्याचारों से उद्‌भूत विनिर्दिष्ट समस्याओं या स्थितियों का विशेष अध्ययन या अन्वेषण कराना और बाधाओं का पता लगाना जिससे कि उनको दूर करने की कार्य योजनाओं की सिफारिश की जा सके ;

(ज) संवर्धन और शिक्षा संबंधी अनुसंधान करना जिससे कि महिलाओं का सभी क्षेत्रों में सम्यक् प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के उपायों का सुझाव दिया जा सके और उनकी उन्नति में अड़चन डालने के लिए उत्तरदायी कारणों का पता लगाना जैसे कि आवास और बुनियादी सेवाओं की प्राप्ति में कमी उबाऊपन और उपजीविकाजन्य स्वास्थ्य परिसंकटों को कम करने के लिए और महिलाओं की उत्पादकता की वृद्धि के लिए सहायक सेवाओं और प्रौद्योगिकी की अपर्याप्तता ;

(झ) महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक विकास की योजना प्रक्रिया में भाग लेना और उन पर सलाह देना ;

(ञ) संघ और किसी राज्य के अधीन महिलाओं के विकास की प्रगति का मूल्यांकन करना ;

(ट) किसी जेल, सुधार गृह, महिलाओं की संस्था या अभिरक्षा के अन्य स्थान का, जहां महिलाओं को बंदी के रूप में या अन्यथा रखा जाता है, निरीक्षण करना या करवाना और उपचारी कार्रवाई के लिए, यदि आवश्यक हो, संबंधित प्राधिकारियों से बातचीत करना ;

(ठ) बहुसंख्यक महिलाओं को प्रभावित करने वाले प्रश्नों से संबंधित मुकदमों के लिए धन उपलब्ध कराना ;

(ड) महिलाओं से संबंधित किसी बात के, और विशिष्टतया उन विभिन्न कठिनाइयों के बारे में जिनके अधीन महिलाएं कार्य करती हैं, सरकार को समय-समय पर रिपोर्ट देना ;

(ढ) कोई अन्य विषय जिसे केन्द्रीय सरकार उसे निर्दिष्ट करे ।

(2) केन्द्रीय सरकार, उपधारा (1) के खण्ड (ख) में निर्दिष्ट सभी

रिपोर्टों को संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगी और उसके साथ संघ से संबंधित सिफारिशों पर की गई या की जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई तथा यदि कोई ऐसी सिफारिशें अस्वीकृत की गई हैं तो अस्वीकृति के कारणों को स्पष्ट करने वाला ज्ञापन भी होगा ।

(3) जहां कोई ऐसी रिपोर्ट या उसका कोई भाग किसी ऐसे विषय से संबंधित है जिसका किसी राज्य सरकार से संबंध है वहां आयोग ऐसी रिपोर्ट या उसके भाग की एक प्रति उस राज्य सरकार को भेजेगा जो उसे राज्य के विधान-मंडल के समक्ष रखवाएगी और उसके साथ राज्य से संबंधित सिफारिशों पर की गई या की जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई तथा यदि कोई ऐसी सिफारिशें अस्वीकृत की गई हैं तो अस्वीकृति के कारणों को स्पष्ट करने वाला ज्ञापन भी होगा ।

(4) आयोग को उपधारा (1) के खंड (क) या खंड (च) के उपखंड (i) में निर्दिष्ट किसी विषय का अन्वेषण करते समय और विशिष्टतया निम्नलिखित विषयों के संबंध में वे सभी शक्तियां होंगी जो वाद का विचारण करने वाले सिविल न्यायालय की हैं, अर्थात् :–

(क) भारत के किसी भी भाग से किसी व्यक्ति को समन करना और हाजिर कराना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना ;

(ख) किसी दस्तावेज को प्रकट और पेश करने की अपेक्षा करना ;

(ग) शपथपत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना ;

(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रतिलिपि की अपेक्षा करना ;

(ङ) साक्षियों और दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन निकालना ; और

(च) कोई अन्य विषय जो विहित किया जाए ।

अध्याय 4

वित्त, लेखे और लेखापरीक्षा

11. केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुदान – (1) केन्द्रीय सरकार, संसद् द्वारा इस निमित्त विधि द्वारा किए गए सम्यक् विनियोग के पश्चात्, आयोग को अनुदानों के रूप में ऐसी धनराशि का संदाय करेगी जो केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उपयोग किए जाने के लिए ठीक समझे ।

(2) आयोग इस अधिनियम के अधीन कृत्यों का पालन करने के लिए उतनी धनराशि खर्च कर सकेगा जितनी वह ठीक समझे और वह धनराशि उपधारा (1) में निर्दिष्ट अनुदानों में से संदेय व्यय माना जाएगा ।

12. लेखे और संपरीक्षा – (1) आयोग, समुचित लेखा और अन्य सुसंगत अभिलेख रखेगा और लेखाओं का वार्षिक विवरण ऐसे प्ररूप में तैयार करेगा जो केन्द्रीय सरकार भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से परामर्श करके विहित करे ।

(2) आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा नियंत्रक-महालेखापरीक्षक ऐसे अंतरालों पर करेगा जो उसके द्वारा विनिर्दिष्ट किए जाएं और उस संपरीक्षा के संबंध में उपगत कोई व्यय आयोग द्वारा नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को संदेय होगा ।

(3) नियंत्रक-महालेखापरीक्षक और इस अधिनियम के अधीन आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति को उस संपरीक्षा के संबंध में वही अधिकार और विशेषाधिकार तथा प्राधिकार होंगे जो नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को सरकारी लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में साधारणतया होते हैं और उसे विशिष्टतया बहियां, लेखा, संबंधित वाउचर और अन्य दस्तावेज और कागज-पत्र पेश किए जाने की मांग करने और आयोग के किसी भी कार्यालय का निरीक्षण करने का अधिकार होगा ।

(4) नियंत्रक-महालेखापरीक्षक या उसके द्वारा इस निमित्त नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा यथाप्रमाणित आयोग का लेखा और साथ ही उस पर संपरीक्षा रिपोर्ट आयोग द्वारा केन्द्रीय सरकार को प्रति वर्ष भेजी जाएगी ।

13. वार्षिक रिपोर्ट – आयोग, प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिए अपनी वार्षिक रिपोर्ट, जिसमें पूर्ववर्ती वित्तीय वर्ष के दौरान उसके क्रियाकलापों का पूर्ण विवरण होगा, ऐसे प्ररूप में और ऐसे समय पर, जो विहित किया जाए तैयार करेगा और उसकी एक प्रति केन्द्रीय सरकार को भेजेगा ।

14. वार्षिक रिपोर्ट और संपरीक्षा रिपोर्ट का संसद् के समक्ष रखा जाना – केन्द्रीय सरकार वार्षिक रिपोर्ट, रिपोर्ट की प्राप्ति के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगी जिसके साथ उसमें अंतर्विष्ट सिफारिशों पर, जहां तक उनका संबंध केन्द्रीय सरकार से है, की गई कार्रवाई और यदि कोई ऐसी सिफारिशें अस्वीकृत की गई हैं तो अस्वीकृति के कारण का ज्ञापन और संपरीक्षा रिपोर्ट होगी ।

अध्याय 5

प्रकीर्ण

15. आयोग के अध्यक्ष, सदस्यों और कर्मचारिवृंद का लोक सेवक होना – आयोग का अध्यक्ष, उसके सदस्य, अधिकारी और अन्य कर्मचारी भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थ में लोक सेवक समझे जाएंगे ।

16. केन्द्रीय सरकार आयोग से परामर्श करेगी – केन्द्रीय सरकार, महिलाओं को प्रभावित करने वाले सभी प्रमुख नीति विषयक मामलों पर आयोग से परामर्श करेगी ।

17. नियम बनाने की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों को क्रियान्वित करने के लिए नियम राजपत्र में अधिसूचना द्वारा बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) धारा 4 की उपधारा (5) के अधीन अध्यक्ष और सदस्यों को और धारा 5 की उपधारा (2) के अधीन अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें ;

(ख) धारा 8 की उपधारा (3) के अधीन सहयोजित व्यक्तियों द्वारा समिति के अधिवेशनों में उपस्थित होने के लिए भत्ते ;

(ग) धारा 10 की उपधारा (4) के खंड (च) के अधीन अन्य विषय ;

(घ) वह प्ररूप जिसमें लेखाओं का वार्षिक विवरण धारा 12 की उपधारा (1) के अधीन रखा जाएगा ;

(ङ) वह प्ररूप जिसमें और वह समय जब वार्षिक रिपोर्ट धारा 13 के अधीन तैयार की जाएगी ;

(च) कोई अन्य विषय जिसे विहित किया जाना अपेक्षित है या किया जाए ।

(3) इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

———————